Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

LIMITED, NEW DELHI

DEBIT

.... 20.......

r. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.	TOTAL P.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C). Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला १६१

॥ श्रीः ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(AN ENCYCLOPAEDIA OF INDIAN BOTANYS & HERBS)

४ था (~~पहला~~ भाग)

लेखक—
श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी-१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

श्री शंकर दाजी शास्त्री पदे स्मारक पुस्तकालय

धन्वन्तरी-भवन, नई दिल्ली-२६

१. क्रमांक

२. ग्रन्थनाम वनौषधि - चन्द्रोदय (चौथा भाग)

३. लेखक/सम्पादक श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

४. प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

५. क्रय तिथि

६. मूल्य

(AN E ... BS)

(चौथा भाग)

[संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक—

श्री चन्द्रराज भण्डारी 'विशारद'

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वारारागसी-१

१९६८

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : चतुर्थ, वि० सं० २०२४
मूल्य : सम्पूर्ण १–१० भाग रु० ४०–००
प्रत्येक भाग रु० ५–००

Vaidyaraj Zandu Bhatji
National Ayurvedic Library
Punjabi Bagh, New Delhi
Call No. LX N68·4
Book No. 000003
Acc No.

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office
P. O. Chowkhamba, Post Box 8,
Varanasi-1 (INDIA)
1963
Phone : 3145

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी–१
फोन : ३०७६

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

INDEX (5)

(Latin Names)

Name	Page
Abes Webbiana	30
Argentum	11
Achras Sapota	35
Aleurites Moluceana	51
Alhagi Mawrorum	81
Allamanda Catharetica	83
Alstonia Scholaris	49
Alternanthera Sessiles	79
Ameranthus Tenifolius	70
Amorphophallus Sylvericus	54
Amorphophallus Campanlatus	66
Anagallis Arvenasis	100
Anisoneles Malabarica	70
Aristolochia Longa	68
Aristolochia Rotunda	68
Aqua	72
Acalypha Fruticosa	28
Artemisia Sacro rum	37
Bassia Butyracea	20
Bauhinia Recemosa	111
Barleria cristata	112
Butea Frondosa	118
Buxus Samper virens	20
Beta Vulgaris	35
Buchanania Latifolia	29
Bryophillum calycinum	52
Camellia Theifera	14
Casearia Esculenta	30
Capparis Heyneane	37
Calophillum Apetelum	38
Calamus Travancoricus	38
Carbonate of Lime	41
Cocculus Villosus	46
Cycas circinalis	56
Croton Tiglium	64
Cumminom Cyminum	101
Carum Carui	102
Cimicifuga Felida	103
Cantoreum	106
Corchores capsularis	107
Crotalaria Verrucosa	113
Dillenia Indica	18
Delphinium Denudetum	59
Dendrobium Maecraei	104
Digitalis purpurla	117
Ehretia Aspera	4
Exacum Bicolor	27
Elaeodendron Glaucum	63
Erigeron Canadensis	69
Eugenia Jambolana	85
Eruca Sativa	115
Gynocardia odorata	16
Gracilaria Lichenoides	31
Guaiacum officinalis	46
Gingibar Cassumunar	55
Gardenia Gummifera	116
Holoptelea Integrifolia	32
Holostemma Rhededii	48
Hordeum Vulgare	95
Holeus Sorghum	104
Hyssopus Officinalis	108
Ipomea Tridentata	111
Indigofera pausifolia	112
Jasminum officinale	44
Jasminum Arborescens	6
Jasminum Grandiflorum	5
Jetropha Glandulifera	53
Jasminum Auriculatum	109
Kalanchoe Spathulata	115
Lagerstroemia Flosreginae	69
Lippia Nodiflora	79
Lemnea Grandis	99
Leea Macrophilla	122
Leptidenia Reticulata	118
Michelia Champaca	1
Michelia Nilagirica	3
Myrsine Africana	13
Melilotus Alba	36
Myristica Malabarica	55
Myristica Fragrans	90
Mollugo oppoositifolia	100
Molugo Stricta	106
Nardostachys Jatamansi	56
Olea Europea	94
Opopanax chiranium	92
Ochna Pumila	4
Oxalis corniculata	10
Oryza sativa	18
Oldenlandia Umbellata	28
Osbeckia crinita	37
Pistia stratiotes	78
Premna Tomentosa	4
Putranjiva Roxburghii	97
Piper chaba	9
Pimenta Acris	9
Plumbago Zeylanica	21
Pisonia Morindaifolia	24
Platanus Orientalis	25
Physelis Indica	25
Pinus Longifolia	32
Panicum Miliare	34
Prosopies spicigera	47
Parmelia perforata	71
Polyporus officinalis	72
Physalis Peruviana	113
Passifflora Foetida	116
Polyalthia simiaram	117

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

Name	Page
Rhododendron campanulatum	28
Rheum Novile	37
Ranunculus Avensis	37
Rhamnus Dahuricus	38
Rauwolfia serpentina	50
Sagittaria Sagittifolia	52
Sterculia Foetida	53
Sesbania Egyptiena	67
Sarcostemma Breistigma	103
Scirpus Articulatus	20
Serpant Stone	84
Senicio Densiflorus	24
Swertia Chirata	26
Swertia Augustifolia	27
Schima Wallichii	31
Sonneratia caseolaris	4
Smilax china	38
Trichosanthes Auguunia	8
Triumfetta Rotundifolia	28
Tricodesma Zeyanicum	80
Teverniera Nummularia	93
Tamarix Gallica	110
Tomatto	114
Veteria Indica	7
Vigna catiang	9
Veleriana Wallichi	122
Xylia Dolabriformis	89
Zornia Diphylla	113
Zanonia Indica	25
Zanthoxylum Budrunga	80
Zincum	82
Ziziphus Nummularia	109

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

॥ श्री ॥

वनौषधि-चन्द्रोदय

(चौथा भाग)

चम्पा

नाम—संस्कृत–चंपक, कंचना, नागपुष्पा, पीतपुष्पा, राजचंपक, उग्रगन्धा, वनमालिका। हिन्दी–चंपा, नाग चम्पा, चम्पा, चम्पक, चम्पका, सोनचम्पा। गुजराती—चम्पो, रायचम्पो, सोनचम्पा, केसरी चम्पा। बम्बई–चंपा। काठियावाड़–पीलो चम्पो। मराठी–कड़चम्पा, पित्रलचम्पा, सोनचम्पा। बङ्गाल–चम्पक। तामिल–प्रम-रियम। तेलगू–चम्पक। लेटिन–Michelia Champaca (मिचेलिया चम्पक)।

वर्णन—चम्पे के वृक्ष बहुत बड़े और सुन्दर होते हैं। इसकी शाखाएँ खड़ी, फैलती हुईं और पास-पास होती हैं, जिससे इसकी छाया सघन बनी रहती है। इसके फूल अत्यन्त सुगन्धित और पीले रंग के होते हैं। ये प्रायः वैशाख के महीने में लगते हैं। इनकी लम्बाई २.३ इंच के करीब होती है। फूल के अन्दर बारीक-बारीक केशर होती है। सम्राट जहाँगीर ने इसके लिए लिखा है कि चम्पे का फूल निहायत खुशबूदार और खूबसूरत होता है। इसके पत्ते और शाखाएँ खूब होती है। मौसिम के समय में एक ही वृक्ष सारे बगीचे को सुगन्धित रखता है। इसके बीज छोटे और मटर के दाने के बराबर होते हैं। इसके बीजों में से एक प्रकार का गाढ़ा तेल निकलता है। इसके फूलों में से रंग निकाला जाता है और इनमें से एक प्रकार का उड़नशील तेल भी प्राप्त होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी छाल कड़वी, कसैली और चरपरी होती है। यह विष को नष्ट करती है। कृमियों को निकाल देती है। वीर्यवर्द्धक है। इसके सेवन से हृदय को बल मिलता है और मूत्र अधिक होता है। कफ, वात और पित्त के विकारों को यह दूर करती है। इसके फूल कड़वे, अग्निवर्द्धक, मूत्र निस्सारक, पित्त विकारों को मिटाने वाले तथा कोढ़, चर्मरोग और व्रण में लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फूलों की खुशबू बहुत उत्तेजक होती है। इससे दिमाग की शक्ति बढ़ती है। हृदय को ताकत मिलती है। इसके फूल खाने से कफ निस्सारक प्रभाव बतलाते हैं। चम्पे के फूलों के रस को कुनकुना करके कानों में टपकाने से कान का दर्द मिटता है। इसके वृक्ष को काट कर ३-४ हाथ तना बाकी रहने पर उस पर बहुत-सा कपड़ा लपेट कर जलाने का तेल उस पर डाल दें और उसमें आग लगा दें। जब तना जल जाय तो उसकी जड़ को खोदकर निकाल लें। इस जड़ को लगाने और खाने से निराश अवस्था के विष विकारों पर भी लाभ पहुँचता है।

इसकी छाल का लेप करने से गठिया के दर्द में लाभ होता है। इसकी जड़ और फूल बकरी के दूध के साथ पीने से मसाने की पथरी निकल जाती है। इसकी जड़ को पानी में पीसकर पीने से नारू की बीमारी में लाभ होता है। अगर नारू अन्दर भी टूट जाय, तब भी यह फायदा पहुँचाती है। इसके फूलों को तिल के तेल में डाल कर दिन भर धूप में रखना चाहिये। उसके बाद उस तेल को छान लेना चाहिये। इस तेल की मालिश करने से कामेन्द्रिय की शक्ति बढ़ती है और गठिया में लाभ होता है। चम्पे के फूल की फली को पानी में पीसकर लगाने से मुँह की भाई बिलकुल मिट जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

डॉक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार इसके फूल उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और पेट का आफरा दूर करने वाले होते हैं। इसकी छाल में ज्वर नाशक शक्ति रहती है। इसलिए भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्वरों में इसका उपयोग करने से बड़ा चमत्कारिक असर होता है। इसको उपयोग में लेने का तरीका इस प्रकार है।

चम्पे की २॥ तोला छाल को लेकर १०० तोला पानी में औटाना चाहिये। जब ५० तोला पानी शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये। ज्वर आने के पहले इसमें से ५ से लेकर ७ तोला तक पानी दो-दो घण्टे के अन्तर से पीना चाहिये।

डाक्टर नॉड करनी लिखते हैं कि चम्पे की जड़ की छाल की चाय बनाकर पीने से मासिक धर्म साफ होता है और दस्त भी लगते हैं। यह वस्तु गोयाकम (Guaiacum) नामक विदेशी दवा की एक उत्तम प्रतिनिधि है। इसलिए संधिवात, गठिया वगैरह जिन-जिन रोगों में गोयाकम दिया जाता है उन रोगों पर इसका भी उत्तम उपयोग हो सकता है। इसके पत्तों के रस में कृमियों को नष्ट करने की शक्ति है। इन पत्तों को शहद के साथ मिलाकर देने से उदरशूल नष्ट होता है। इसके कोमल पत्तों को पीसकर, उनको पानी में छानकर उस पानी को आँख में टपकाने से आंख की छाया दूर होती है। इसके बीजों का तेल निकाल कर उसकी पेटपर मालिश करने से पेट की वायु दूर होती है।

इसकी एक सफेद जाति होती है, जिसकी डालियों को तोड़ने से दूध निकलता है। इस चम्पे की फलियाँ सर्प विष के ऊपर एक महौषधि मानी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि इनको पानी के साथ घिसकर देने से सर्प-विष फौरन उतर जाता है। मगर ये फलियाँ बहुत ही कम मिलती हैं। इसलिए ये अगर कहीं मिल जायँ तो उनको दूध में औटाकर रखने से बहुत दिन तक नहीं बिगड़ती हैं।

ज्वर नाशक गुण की तरह ही चम्पे में वीर्यवर्द्धक और कामोत्तेजक गुण भी बहुत रहता है। इसके २१ फूलों को लेकर खौलते हुए पानी में धोकर सिल पर बारीक पीस लेना चाहिये। फिर उनको दो सेर गाय के दूध में डालकर उस दूध का खोवा बना लेना चाहिये। इसके बाद कौंच के बीज, बादाम, चिरौंजी, दाख, पिस्ता ये सब दो-दो तोले और तमाल पत्र, छोटी पीपर, जावित्री, इलायची, मालती, गोखरु, रूमी मस्तगी और लौंग ये सब एक-एक तोला लेकर सब चीजों को बारीक पीस कर उस खोए में मिला देना चाहिये। उसके बाद एक सेर भर शक्कर की चासनी बनाकर उसमें उस खोये को मिलाकर ५ तोला घी और एक तोला अफीम का चूर्ण मिलाकर खूब घोटना चाहिये। फिर नीचे उतार कर उसमें ३ माशे कस्तूरी, ८ रत्ती भीमसेनी कपूर, ६ माशे केशर और ५ तोले पंजाबी सालम का चूर्ण मिला कर तीन-तीन माशे की गोलियाँ बना लेना चाहिए।

जंगलनी जड़ी बूटी नामक ग्रंथ के कर्त्ता लिखते हैं कि प्रतिदिन सबेरे-शाम अपने बल के अनुसार इन गोलियों को खाने से और ऊपर गायका धारोष्ण दूध पीने से बहुत तेजी के साथ मनुष्य की काम-शक्ति में वृद्धि होती हैं, शरीर पुष्ट होता है और चाहे जितना परिश्रम करने पर भी थकावट मालूम नहीं होती।

सुश्रुत के मतानुसार इसके फल और इसका फूल अन्य औषधियों के साथ सर्प के विष में उपयोगी होता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार सर्प-विष पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता।

उपयोग—प्रसूत रोग—इसके पत्तों को घी में चुपड़ कर उन पर जीरे का चूर्ण भुरभुराकर स्त्री के सिर पर बाँधने से प्रसूतिका उन्माद और प्रलाप मिटता है।

मूत्रकृच्छ्र—इसके फूलों को पीसकर ठंडाई की तरह पिलाने से मूत्रवृद्धि होकर मूत्रकृच्छ्र और गुर्दे के रोग मिटते हैं।

फोड़ा—इसकी सूखी जड़ और जड़ की छाल को दही में मिलाकर पीवयुक्त फोड़े पर बाँधने से वह फोड़ा बैठ जाता है या पक जाता है।

सिरदर्द—इसके फूलों से तैयार किये हुए तेल को सिर में लगाने से सिर दर्द मिटता है।

सन्धिवात—छोटे जोड़ों की सूजन पर इसके तेल की मालिश करने से और ऊपर पत्ते बाँधने से लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

नेत्र-रोग—इसके कोमल पत्तों को जल में छानकर उस जल को आँख में टपकाने से आँख की ज्योति निर्मल होती है।

उदर-शूल—इसके पत्तों के रस में शहद मिला कर पीने से उदर-शूल मिटता है।

ज्वर—इसकी छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर छूटता है।

सूखी खाँसी—इसकी छाल के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से सूखी खाँसी मिटती है।

अतिसार—इसकी छाल और अतीस के चूर्ण की फक्की देने से अतिसार में लाभ होता है।

पैर की बिवाई—इसके बीज और फल का लेप करने से पैर की बिवाई मिटती है।

बायंठे—इसके फूलों का तेल बनाकर मालिश करने से बायंठे मिटते हैं।

आमाशय की शूल—इसके फूलों का काढ़ा बनाकर पिलाने से आमाशय की शूल मिटती है।

कृमि रोग इसके ताजा पत्तों के दो तोले रस में शहद मिलाकर पीने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

पित्तोन्माद—इसके ताजा ४ फूलों को दो तोले शहद के साथ चटाने से पित्तोन्माद मिटता है।

झाईं—इसके फूलों को नीबू के रस में पीसकर मलने से मुँह की झाईं मिटती है।

बनावटें—ज्वरनाशक चूर्ण—चम्पे की छाल, गिलोय, अतीस, सूँठ चिरायता, कालमेघ, नागरमोथा, लींडी-पीपल, जौ खार और हीराकसी इन सब चीजों को समान भाग लेकर, बारीक चूर्ण करके एक माशे से दो माशे तक की मात्रा में ३ बार पानी के साथ लेने से यकृत और तिल्ली की वृद्धि, पांडुरोग, जठराग्नि की कमजोरी, अरुचि और मलेरिया ज्वर दूर होते हैं। कालमेघ के न मिलने पर उसके बदले में हरा चिरायता लेना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार चम्पा ज्वरनिवारक, ऋतुस्राव नियामक और बिच्छू के विष पर उपयोगी है। इसकी जड़ कड़वी और शान्तिदायक होती है। इसके फूल उत्तेजक पेट के आफरे को दूर करने वाले और विरेचक होते हैं। इनमें उड़नशील तेल रहता है।

मात्रा—इसकी छाल की मात्रा ५ रत्ती से लेकर १५ रत्ती तक और काढ़े की मात्रा ५ तोले से ७ तोले तक की है।

चम्पा पीला

नाम—हिन्दी—पीला चम्पा। मराठी—पीला चम्पा। कनाड़ी-संपना। सिंहालीज—बलसापू। तामिल-कट्टु चम्पगम। लेटिन—Michelia Nilagirica (माइचेलिया नीलिगिरीका)

वर्णन—यह वनस्पति नीलगिरी पहाड़ों पर ५००० फीट की ऊँचाई तक होती है। इसका तना सफेद रहता है। शाखाएँ सीधी तथा पत्ते चमकीले और सख्त रहते हैं। इसकी फलियाँ लम्बी और रेशमी तथा फूल सफेद और फीके रंग के होते हैं। इसके बीज-कोष में लाल बीज रहते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर निवारक होता है। इसमें उड़नशील तेल और कटुतत्व रहते हैं।

चम्पा सफेद

नाम--संस्कृत—श्वेतचम्पक। हिन्दी—सफेदचम्पा, खुरचम्पा। गुजराती—धोलो चांपो। मराठी—पांढ़ाराचांपा।

वर्णन—सफेद चम्पे को हिन्दी में खुरचम्पा कहते हैं। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इस वृक्ष के पत्ते लम्बे और फूल सफेद होते हैं। यह वृक्ष काफी ऊंचा होता है। इसका रस बहुत दाहक होता है। शरीर के किसी भाग पर इसे लगाते ही जलन होने लगती है। चम्पे के किसी-किसी पुराने वृक्ष पर फलियाँ भी लगती हैं। यह सर्पदंश पर महौषधि मानी जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—सफेद चम्पा कडवा, मारक, तीखा, उष्ण वीर्य और कुष्ठ, कण्डू, व्रण, शूल, कफ, वायु और आफरे को नष्ट करने वाला होता है। बादी की वजह से अगर शरीर के किसी अंग में सुन्नता पैदा हो जाय तो इसके पिंड का रस या दूध लगाने से और उसके पत्तों को गरम करके बांधने से लाभ होता है। सर्प के विष पर इसकी फली को औटाकर पिलाने से जहर उतर जाता है। अगर गीली फली न मिले तो दूध में उबाली हुई पुरानी फली भी काम दे सकती है। मलेरिया ज्वर पर इसकी फली को डण्ठल समेत पान में रखकर ज्वर आने से पहले एक-दो घण्टे के अन्तर से तीन मात्रा लेने पर बुखार रुक जाता है।

चम्पाबहा

नाम—संथाली—चम्पाबहा। लेटिन—Ochna Pumila [ओछना पूमिला]

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय की तलहटी में कुमाऊँ से सिक्किम तक तथा बिहार और छोटा नागपुर में पैदा होती है। यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा पौधा है। इसके फल लम्बे और हरे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—बंगाल की संथाल जाति के लोग इस वनस्पति को सर्प-विष नाशक मानते हैं और सांप के काटने पर इसका उपयोग करते हैं। मासिक धर्म की शिकायत तथा क्षय और दमें के रोग में भी वे लोग इसका उपयोग करते हैं।

चम्बा

नाम—संस्कृत—बहुगंधा, बालपुष्पी, बालपुष्पिका, गणिका, युवतिका। हिन्दी—चम्बा। काश्मीर—चम्बाकिरी। पंजाब—बनसू, जेईशिग। लेटिन—Gasminum officinale [जेसमिनम आफिसिनेल]

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा पराश्रयी बेल होती है। इसकी पत्तियां ३ से लगातार सात-सात के गुच्छों में लगती हैं। इसका बीजकोष लम्बा होता है। इसका फूल खुशबूदार होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फूल, कड़वा, कसैला, मीठा, सुगन्धित, शीतल और कृमि नाशक होता है। यह हृदय रोग, मधुमेह, पित्त, जलन, प्यास, चर्म रोग, मुँह, दाँत तथा आंख की बीमारी में उपयोगी है। यह कफ और वात को पैदा करता है।

हनिग्बरगर के मतानुसार इसकी जड़ दाद पर उपयोगी पाई गई है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति स्नायुमण्डल को शान्ति देने वाली होती है। इसका फल निद्रा-जनक है। इसमें जेसमीन नामक उपक्षार और उड़नशील तेल पाया जाता है।

चम्बारा

नाम—मराठी—चम्बारा। कनाड़ी—इचु, इति। तामिल—पिनारी, कोड़ गनरी। तेलगू—नगुरू। लेटिन—Premna Tomentosa [प्रेम्नाटोमेंटोसा]

वर्णन—यह वनस्पति मध्य प्रदेश, दक्षिण, कर्नाटक और ट्रावनकोर के जंगलों में पैदा होती है। इसकी छाल पीली और तन्तुदार तथा फल लम्बगोल और गुठलीदार होता है। एक फल में प्रायः ४ गुठलियां निकलती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह जलोदर के रोग में उपयोग में ली जाती है।

चमरोर

नाम—पंजाब—चमरोर। बलूचिस्तान—कनेरो मानक। मराठी—दात्रगीं, कुपता। मेरवाड़ा—तम्बोलिया। सिन्ध—चम्बाल। लेटिन—Ehretia aspera, [इरेशिया एसपेरा]।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—यह वनस्पति पंजाब, सिन्धु, बलूचिस्तान, राजपूताना, डेक्कन, कर्नाटक, ब्रह्मा, अफगानिस्तान और अबीसीनिया में होती है। यह एक झाड़ी है। इसके पत्ते लम्बगोल रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसका फल दबा हुआ चपटा होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ कुप्रसंगज व्याधियों में उपयोगी है।

चमेली

नाम—संस्कृत—चमेली, राजपुत्री, प्रियम्बदा, मालती, सुवर्ण जातिका, तेल मालिनी, वर्षपुष्पा। हिन्दी—चमेली, चम्बेली, चंपेली। बंगाल—जाति। गुजराती—चमेली। बम्बई—चमेली। तामिल—कोंडि मलिकई। तेलगू—जेजी। उर्दू—चमेली। फारसी—हशिम। अरबी—पसमयन। लेटिन—Jasminum Grandifloram [जेसमिनम ग्रेन्डीफ्लोरम]।

वर्णन—चमेली सारे भारत वर्ष में पैदा होती है। और इसके फूल को सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की जरूरत नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चमेली का फूल कसैला, कड़वा और तीखा होता है। यह गरम, वमन कारक, विष नाशक और घाव पूरक है। इसके पत्ते मुख शोथ, मुखक्षत, दांतों की पीड़ा, कान का दर्द, रक्त विकार, कोढ़, व्रण और पित्त में लाभ पहुँचाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से चमेली दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। इसकी सफेद जाति पीली जाति से और पीली जाति, नीली जाति से अधिक गरम होती है। इसके पत्तों को पानी में जोश देकर पीने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं, मासिक धर्म साफ होता है। इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर उससे कुल्ले करने से मुँह के छाले और मसूड़ों के रोग को फायदा होता है। इसके फूल पीसकर कामेन्द्रिय पर लेप करने से स्तम्भन की ताकत बढ़ती है। इसके फूलों का चेहरे पर लेप करने से मुंह की झाईं नष्ट होती है और सौंदर्य निखर जाता है। इसके फूलों का रस १ तोले से ३ तोले तककी मात्रा में ३ दिन तक पीने से गर्भाशय से अथवा मुँह के रास्ते से गिरता हुआ खून बन्द हो जाता है। चमेली के फूल की पंखड़ियों को थोड़ी-सी मिश्री के साथ खरल करके आंख की फूली पर लगाने से कुछ दिनों में वह फूली कट जाती है।

इसके अधिक सेवन से गरम प्रकृति वालों में सिर दर्द पैदा होता है। इसके दर्प का नाश करने के लिये गुलाब का तेल और कपूर का प्रयोग करना चाहिये।

मात्रा—इसके फूल की मात्रा १० माशे तक और इसके रस की मात्रा तीन तोले तक है।

इसके पत्तों के ताजा रस को पैरों की फटी हुई बिवाई पर लगाने से बिवाई अच्छी हो जाती है। चर्म रोग तथा रक्त विकार के रोगों पर इसके फूलों का लेप करने से बड़ा लाभ होता है। मुँह के छालों और दाँतों के दर्द पर चमेली के पत्ते चबाने से फायदा पहुंचता है। कान से अगर पीब बहता हो तो इसके पत्तों को तिल्ली के तेल में उबाल कर उस तेल को कान में डालने से पीब बहना बन्द हो जाता है। इसके फूलों को कुचल कर नाभि और कमर पर बाँधने से पेशाब साफ होता है, काम वासना बढ़ती है और मासिक धर्म का कष्ट दूर होता है। विस्फोटक रोग पर इसके फूल अथवा पत्तों का लेप करने से शान्ति मिलती है।

चमेली और उपदंश का रोग—गर्मी के रोग पर भी यह औषधि बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके कोमल पत्तों का दो तोला रस निकालकर उसमें एक रत्ती राल का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन सबेरे पीने से १५-२० दिन में गर्मी का रोग नष्ट हो जाता है। लेकिन पथ्य में सिर्फ गेहूँ की रोटी, दूध, भात और घी-शक्कर का ही प्रयोग करना चाहिये। अगर नियमित पथ्य के साथ इस औषधि का सेवन किया जाय तो मुत्रेंद्रिय पर पड़ी हुई गर्मी की चान्दी, सन्धियों का जकड़ना, शरीर में गर्मी का फूट निकलना इत्यादि तमाम विकार बहुत जल्दी मिट जाते हैं। रस कपूर के समान जहरीली और सारसा परेला, मंजिष्ठादि क्वाथ, किशोर गुग्गुल इत्यादि औषधियों के सेवन से जो लाभ नहीं होता है वह कभी-कभी इस औषधि के सेवन से होता हुआ देखा जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रासायनिक विश्लेषण—इसके पत्तों में जेस्मिनाइन नामक एक प्रकार का उपक्षार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसके पत्तों में एक प्रकार की रेजिन भी पाई जाती है। इसके तेल में बेंझिल एसीटेट, मेंथिल एन्थर निलेट और ऑइलिनेलूल नामक पदार्थं पाये जाते हैं।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार चमेली का फूल सांप और विच्छू के विष पर लाभदायक है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्प और बिच्छू के विष पर निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह क्रमि नाशक, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक है। इसमें उपक्षार और सेलिसाइलिक एसिड रहते हैं। बिच्छू के विष पर भी यह उपयोगी है।

उपयोग—मासिक धर्म की रुकावट—चमेली के पंचांग का क्वाथ पिलाने से मासिक धर्म की रुकावट मिटती है और लीवर तथा तिल्ली की क्रिया सुधरती है।

दन्त रोग—इसके पत्तों को पानी में औटा कर उस पानी से कुल्ले करने से दाँत और डाढ़ का दर्द मिटता है।

सिर दर्द—इसके ३ फूलों को गुल रोगन के साथ पीसकर नाक में टपकाने से सिर दर्द मिटता है।

नपुंसकता और ध्वज भंग—इसके पत्तों के रस से तेल को सिद्ध करके उस तेल की मालिश करने से ध्वज भंग और नपुंसकता मिटती हैं।

(१) इसके पत्तों के तेल में राई को पीसकर मूत्रेन्द्रिय, पेडू और जाँघों पर लेप करने से नपुंसकता मिटती है। मगर यह लेप बहुत उग्र होता है। इसलिए इसका सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।

उपदंश—इसके पत्तों के क्वाथ से मूत्रेन्द्रिय के घाव धोने से उपदंश में लाभ होता है।

(२) इसके कोमल पत्तों के २ तोले रस में २ तोले गाय का घी और कुछ राल मिलाकर देने से और पथ्य में दूध और गेहूं का पथ्य खाने से गर्मी में बहुत लाभ होता है।

बनावटें—चर्म रोग नाशक तैल—चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोल के पत्ते, करंज के पत्ते, मोम, मुलहठी, कूट, हलदी, दारूहलदी, कुटकी, मजीठ, पद्माक, लोध, हरड़, नील कमल, तूतिया, अनन्तमूल और करंज के बीज, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर पानी के साथ चटनी की तरह पीसकर गोली बनाकर कलईदार कढ़ाही में रखना चाहिए और गोले का जितना वजन हो उतना ही काली तिल्ली का तेल और उससे चौगुना चमेली के पत्तों का स्वरस उस कढ़ाही में डालकर हलकी आँच से पकाना चाहिए। जब सब रस जल जाय, तब उतार कर तेल को छान लेना चाहिए।

यह तैल चर्म रोगों के लिए एक चमत्कारिक इलाज है। इसको लगाने से सब प्रकार के जहरी घाव, खाज, खुजली, अग्नि, दाह, मर्म स्थान के घाव, नहीं भरने वाले घाव इत्यादि रोग बहुत जल्दी आराम होते हैं।

(जंगलनी जड़ी-बूटी)

चमेली (२)

नाम—हिन्दी—बेला, चमेली, नवमल्लिका। बंगाल—बरकुडा, नवमल्लिका। बम्बई—कुसर। कनाडी—नवमल्लिका। मराठी—कुसर, कुसरा। मुंडारी—कौलिबा, हान्दिबा। नसीराबाद—कुलंदगर। संस्कृत—नवमल्लिका। तामिल—नागमल्लि। तेलगू—नागमल्लि। उड़िया—नियाली। लेटिन—Jasminum Arborescens (जेसमीनम आरबोरेसन्स)।

वर्णन—यह एक जमीन पर फैलने वाली झाड़ीनुमा वनस्पति है। इसके पुष्प सफेद और सुगन्धित होते हैं। यह उत्तरी गंगा के मैदान, बंगाल तथा मध्य और दक्षिणी भारतवर्ष में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्तों का रस पीपल, लसन और अन्य उत्तेजक पदार्थों के साथ खाँसी में दिया जाता है। एक खूराक में ७ पत्ते काफी है। छोटे बच्चों के लिये आधे पत्ते का रस चार अगस्त्य के पत्तों के साथ में दो ग्रेन सुहागा और दो ग्रेन काली मिर्च के साथ शहद में मिलाकर देते हैं।

इसके पत्ते संकोचक और पौष्टिक हैं। ये पौष्टिक और अग्नि प्रवर्द्धक वस्तु के रूप में काम में लिये जाते हैं।

संथाल लोग इसे मासिक धर्म की शिकायतों को दूर करने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कफ निवारक है। इसके पत्ते कड़वे, संकोचक, पौष्टिक और अग्निदीपक हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चन्द्रकांत मणि

नाम—संस्कृत—चन्द्रकांत, सोममणि, शीताश्मा। हिन्दी—चन्द्रकांत। मराठी—चन्द्रकांत मणि। बंगाल—चन्द्रकांत। तेलगू—चन्द्रकांत।

वर्णन—आयुर्वेद में लिखा है कि चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से जिसमें अमृत टपकता है, उसी को चन्द्रकांत मणि कहते हैं।

यूनानी ग्रन्थों में लिखा है कि अरब के शहरों में एक प्रकार के पत्थर पर चाँदनी रात में उसका जौहर निकल कर इकट्ठा हो जाता है उसीको चन्द्रकान्त कहते हैं। जितनी चाँदनी जोरदार होती है उतनी ही यह चीज सफेद होती जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चन्द्रकांत मणि शीतल, स्निग्ध, स्वच्छ तथा रुधिर विकार, दाह, ग्रहबाधा और दरिद्रता को नाश करती है। इसका स्वाद मीठा और कसैला होता है। यह शीतल और दस्तावर होती है। फोड़े, फुन्सी, जहर के उपद्रव और भूत-प्रेत की बाधा को यह दूर करती है।

यूनानी मत से यह औषधि मिरगी के लिये बहुत लाभदायक है। इसे गले में बांधने से तथा पानी में घिस कर नाक में टपकाने से अथवा मसूर के दाने की मात्रा में खिलाने से मिरगी नष्ट हो जाती है। माली खोलिया, पागलपन और दिल को धड़कन में भी यह औषधि फायदा पहुँचाती है। इसके खाने से खून का बहना बन्द हो जाता है। इसको बच्चों की गर्दन में बांध देने से उनकी भूतबाधा से हिफाजत हो जाती है।

चन्दरस

नाम—संस्कृत—अश्वकर्ण। बंगाल—कुन्दो। हिन्दी—चन्दरस। गुजराती—चन्दरस। मराठी—सरलाडीक, चन्दरस, सफेद डामर। पंजाब—सन्द्रुसा। अंग्रेजी—Gomcopal Sandarack लेटिन—Vateria Indica (वेटेरिया इण्डिका)।

वर्णन—चन्दरस एक प्रकार के साल के वृक्ष से निकलता है। यह वृक्ष बहुत बड़ा और भव्य होता है। यह मलाबार और हिन्दुस्तान के दक्षिणी हिस्से में पैदा होता है। इसके बीजों के तेल और खली में से राल निकलती है। इस राल को चन्दरस कहते हैं इसका तेल और चन्दरस औषधि के उपयोग में तथा वारनिश करने के काम में लिया जाता है। इसके बीजों का तेल मोम बत्तियाँ बनाने के काम में भी आता है। चन्दरस को आग पर डालने से एक प्रकार की गन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चन्दरस मधुर, कड़वा, स्निग्ध, गरम कसैला, दस्तावर, पित्तजनक तथा वायु, मस्तक रोग, नेत्र रोग, स्वरभंग, कफ, राक्षस बाधा, पसीना, दुर्गन्धि, जूँ, खुजली और घाव को दूर करने वाला होता है।

इसके गुण यूरोपियन रेजिन के समान ही होते हैं। यह व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है। यह तेल वेदना-नाशक होता है। इसका मलहम सब प्रकार के व्रणों पर लाभदायक होता है। जीर्ण आमवात पर इसके तेल की मालिश की जाती है। इसका मलहम बनाने का तरीका इस प्रकार होता है। चन्दरस ५ तोला, राल ५ तोला, मोम २ तोला और तिल का तेल ८ तोला। इन सब चीजों को गरम करके खूब मिला लेना चाहिये।

यूनानी मत—यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में खुश्क है। यह मेदे और आँतों में जमे हुए कफ को दूर करता है। पेट के कृमियों को नष्ट करता है। इसका मंजन मसूड़ों और दाँतों को ताकत देता है। इसकी धूनी देने से बवासीर में लाभ होता है। इसको आँख में लगाने से आँख की ज्योति बढ़ती है। दिल की धड़कन, माली खोलिया, दमा और तिल्ली के रोगों में भी यह मुफीद है। इसको कान में डालने से कान का दर्द दूर होता है। इसको २ माशे और ५ रत्ती की मात्रा में शिकंजबीन के साथ मिलाकर ३—४ हफ्ते तक चाटने से शरीर का बेडौल मोटापन मिट कर शरीर पतला हो जाता है और शक्ति बढ़ती है। हमेशा कुश्ती लड़ने वाले पहलवान इसको कस्तूरी और अम्बर के साथ लेते हैं, जिससे कुश्ती के वक्त उनको हाँफनी नहीं चढ़ती और न पसीना होता है। फोड़ों पर इसे पीसकर भुरभुराने से फोड़े सूख कर अच्छे हो जाते हैं। इसके बीजों के तेल में सफेदा मिलाकर सिर की गंज पर लगाने से बड़ा फायदा

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होता है। इसको शहद के साथ मिलाकर आंख में लगाने से आंख का जाला कट जाता है। दाँत के दर्द के लिये भी यह एक बेजोड़ दवा है। इसको शिकंजबीन या सिरके के साथ गर्भवती स्त्री को खिलाने से पेट में से बच्चा निकल जाता है। इसके सेवन से पुराने दस्त भी बन्द होते हैं।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि कहरवा है। इसकी मात्रा ३ माशे तक है।

उपयोग—अतिसार—चन्दरस की फक्की देने से अतिसार मिटता है।

फोड़े फुन्सी—मोम, राल और तिल के तेल के साथ चन्दरस का मलहम बनाकर फोड़े-फुन्सी पर लगाने से फोड़े-फुन्सी मिटते हैं।

गठिया—इसके तेल का मर्दन करने से पुरानी गठिया मिटती है।

नजला—चन्दरस और शक्कर को मिलाकर उनको आग पर डाल कर उसका धुंआ लेने से जुकाम और नजला मिटता है।

दन्तरोग—चन्दरस का मंजन करने से दांतों से खून का निकलना बन्द हो जाता है।

कर्णरोग—इसकी छाल के चूर्ण में कपास के फलका रस और शहद मिलाकर कान में डालने से कान का रोग मिटता है।

चंचलकुरा

नाम—यूनानी—चंचलकुरा।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वनस्पति है जो खेतों और बागों में पैदा होती है। इसके पौधे की लम्बाई आधे गज के करीब होती है। इसकी शाखाएँ पतली होती हैं। पत्ते लम्बाई में १ इञ्च के करीब होते हैं। इनकी किनारों पर हरी लकीरें होती हैं। इसका फूल नीले रंग का होता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्तों को पका कर खाने से कफ, पित्त और विष विकार में लाभ होता है। मगर यह बवासीर, आमाशय और आंखों में नुकसान पहुँचाती है।

चचिंडा

नाम—संस्कृत—चचिंड, चिचंड, श्वेतराज, अहिफला। हिन्दी—चिचेंडा। मारवाड़ी—चिचंडा। गुजराती—पंडोला। मराठी—पंडोल। बंगाली—चिचिण्डा। लेटिन—Trichosanthes Auguina [ट्रिकोसेन्थस एग्यूइना]।

वर्णन—यह एक बेल है। जो प्रायः सब दूर बोई जाती है। इसके पत्ते तुरई के पत्तों की तरह, फटे हुए, रोएँदार और खुरदरे होते हैं। इसके फूल पीले ५ पंखड़ियों वाले होते हैं। इन फूलों के सिरों पर बारीक तन्तुओं के गुच्छे होते हैं। आकार में ये जूही के फूलों के बराबर होते हैं। इसके फल एक से तीन फुट तक लम्बे, सर्प के आकार के, चमकदार और नारंगी रंग के होते हैं। जब ये कच्चे रहते हैं तब इन पर लम्बाई में सफेद धारियां पड़ी रहती हैं। इसके बीज करेले के बीजों की तरह होते हैं। यह कड़वी और मीठी दो प्रकार की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसकी कड़वी जाति दूसरे दर्जे में गर्म और खुश्क तथा मीठी जाति दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। इसके फल वातपित्त को नष्ट करते हैं तथा सूजन में बहुत लाभ पहुँचाते हैं। मीठा चचिंडा शरीर की खुश्की और ग्लानि को दूर करता है। भूख को बढ़ाता है। पित्त और कफ को दूर करता है, कब्जियत को मिटाता है। मगर यह वनस्पति मस्तिष्क पर बहुत खराब असर डालती है। अगर इसे कुछ दिनों तक लगातार खाई जाय तो दिमाग की ताकत को कमजोर करके स्मरण शक्ति को नष्ट कर देती है। रक्त विकार पर यह वनस्पति लाभदायक है। फोड़े-फुन्सी, गर्मी की वजह से पैदा हुई खून की खराबी और दूसरे चर्म रोगों में इसके सेवन से लाभ होता है।

कड़वा चचिंडा कफ और पित्त को दस्त की राह से निकाल देता है। खराब खून को अच्छा करता है और पेट के कृमियों को नष्ट कर देता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यह औषधि सर्द प्रकृति वाले के आमाशय को नुकसान पहुँचाती है। पेट में फुलाव पैदा करती है और मस्तिष्क तथा कामेन्द्रिय की शक्ति को कमजोर करती है।

चव्य

नाम—संस्कृत—चव्यम, चविका, चवकम्, कोलवल्लि, कूटका, गन्धनाकुलि। हिन्दी—चव्य, चव। गुजराती—चवक। बंगाली—चई, चइ गाच्छ। मराठी—चवक। तेलगू—चेईकम्। लेटिन—Piper Chaba [पीपर चबा]।

वर्णन—यह एक लता होती है जो हिन्दुस्तान के कई भागों में बोई जाती है। इसके फल और बेल के टुकड़े औषधि के काम में आते हैं। इसके फल बाजार में सिंगापुरी पीपल और गज पीपल के नाम से बिकते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चव्य चरपरी, गरम, रुचि कारक, अग्नि प्रदीपक, हलकी तथा कृमि, श्वास, खांसी, वात, कफ, ज्वर, बवासीर और शूल को नष्ट करने वाली होती है। इसके गुण पीपलामूल के ही समान होते हैं। इसकी जड़ विष नाशक तथा क्षय, खांसी और दमे में लाभदायक है। बवासीर इत्यादि गुदा के रोगों में यह बहुत फायदा पहुँचाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है। इसे खांसी और जुकाम में उपयोग में लेते हैं।

इसका फल उत्तेजक है। इसके फूलों के प्रयोग से श्वास, खांसी और क्षय रोग में लाभ होता है। इसकी लकड़ी और जड़ रंगने के काम में आती है।

चंवला

नाम—संस्कृत—राजमाष। हिन्दी—चंवला, लोबिया। बंगाल—बर्बटी। गुजराती—चोंला, चोल। मराठी—चंवल्या। पंजाब—रवन। तेलगू—अलसंदुरु, डटपेसलु। अरबी—फिरिका। लेटिन—Vigna Catiang [व्हिगना कटिएग]।

वर्णन—यह एक प्रकार की दाल की जाति का अनाज है। इसकी बेल उड़द की बेल की तरह होती है। इसमें ६ इंच से लेकर १ फुट तक लम्बी फलियां लगती हैं। इन फलियों की तरकारी सारे हिन्दुस्तान में बनाई जाती है। इसके बीजों का रंग सफेद और मुँह पर काला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चंवला भारी, स्वादिष्ट, कसैला, तृप्ति कारक, सारक, रूखा, वात कारक, रुचिकारक, स्तनों में दूध बढ़ाने वाला और बल कारक है। यह सफेद, लाल और काले के भेद से तीन प्रकार का होता है।

चाइना मुलक

नाम—मलयालम—चाइनमुलक, कप्पलमुलकु। कनाड़ा—गन्धमेनसू, मलयलमुजि, मरमेनसा। तामील-कट्टुकरुव। लेटिन—Pimenta Acris [पाइमेण्टा एक्रिस]

वर्णन—यह वनस्पति वेस्ट इण्डिका में होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष होता है। इसका छिलका तहदार रहता है। इसके पत्ते ऊपर की तरफ चमकीले और बहुत सुगन्धित होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसका पीसा हुआ फल दद्दकोता, अग्निमांद्य और अतिसार में उपयोगी है।

चाकसू

नाम—संस्कृत—आरण्य कुलीथिका, चक्षुशा, चिपिटा, कुलानी, कुलमाशा, कुम्भकर्णी, वन्यकुलीथिका। हिन्दी—चाकसू, बानर। गुजराती—चिमेड़, चमेड़, चिनोल। मराठी—कंकुटी, चिनोल। तेलगू—चनुयाल त्रिट्ठुल। तामील—इदिवकोल, करुकानम। फारसी—चश्मीझाक, चेश्मक। लेटिन—Cassia Absus [केसिया एबसस]

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—चाकसू का पौधा १।। से २।। फीट ऊँचा होता है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। यह वनस्पति बरसात में बहुत पैदा होती है और साल भर तक जीवित रहती है। इसके पत्तों के डण्ठल लम्बे होते हैं। फूल फीके, पीले रंग के होते हैं। इसकी फलियां १ से १।। इञ्च तक लम्बी होती है। हर एक फली में ५ से ६ तक बीज होते हैं। ये बीज चपटे चिकने, बहुत चमकीले काले और कड़वे स्वाद के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते गरम, कड़वे, चरपरे, आंतों के लिए संकोचक, वात कफ को दूर करने वाले और अर्बुद, खांसी, नाक के रोग, कुक्कुर खांसी [हूपिंग कफ] और दमे को दूर करने वाले होते हैं। यह पित्त निस्सारक और खून बढ़ाने वाले होते हैं। इसके बीज शीतल, कड़वे, ज्वर नाशक और आंतों को सिकोड़ने वाले होते हैं। ये घाव को भरते हैं और ब्रोंकाइटीज [फुफ्फुस प्रदाह], बवासीर, हूपिंग कफ तथा नेत्र रोगों में बहुत लाभदायक हैं।

नेत्र रोगों के लिये इस औषधि की बहुत तारीफ है। इसके पीसे हुए बीजों का आधा रत्ती चूर्ण आंखों में आंजने से नेत्र रोगों में बहुत लाभ होता है। कच्छ के अन्दर यह नेत्र रोगों के लिए एक घरेलू औषधि है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दरजे में गरम और खुश्क है। यह कब्जियत पैदा करता है। सूजन को बिखेरता है। नेत्र रोगों के लिए यह एक बहुत प्रभावशाली औषधि है। इसको आंजने से आँखों की ज्योति बहुत बढ़ती है। आँख का दुखना, आँख से पानी का गिरना, आँख का जाला इत्यादि रोगों में यह बहुत लाभदायक हैं। चाकसू को साफ करके केशर, ममीरा और मिश्री के साथ पीसकर आंख में लगाने से आँखें बहुत साफ हो जाती हैं। इसका लेप आँखों की बीमारी के लिये मुफीद है।

मूत्रेन्द्रिय के घाव तथा शरीर के दूसरे जख्मों पर इसके लेप से बहुत लाभ होता है। पेशाब और मासिक धर्म को यह साफ करता है। दमे के रोग में भी यह बहुत लाभदायक है। चाकसू और रसोत को समान भाग लेकर गुलदाउदी के शीतनिर्यास में पीसकर झड़बेर के समान गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से एक गोली सबेरे शाम खाने से बहुत लाभ होता है।

मात्रा—इसकी मात्रा २ माशे की है।

हानि कारक—यह गरम प्रकृति वालों के लिये हानिकारक है। इसका दर्पनाशक पदार्थ हरा धनियां है।

चांगेरी

नाम—संस्कृत—चांगेरी, क्षुद्राम्ला, चुकामुल, दन्तशठा, अम्बष्टा। हिन्दी—चांगेरी, चूकातिपाती, चलमोरी अमरूल। बंगाल—अमरूल, चलमोरी, चुकतिपाटी, उमलवेत। मराठी—अम्बुटी, भुईसरपटी। पंजाब—सर्चि, खटकल। बम्बई—अम्बुटी। गुजराती—आबोटी। तामील—पालिया किरि, पुलियारी। तेलगू—पुलिचिंता, अम्बोटिकुरा। लेटिन—Oxalis Corniculata [आक्झेलिस कार्निक्यूलेटा]।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी उष्ण भागों में पैदा होती है। यह एक बहुत छोटी जमीन पर फैलने वाली लता होती है। इसके पत्ते जुड़े हुए और एक-एक डण्ठल पर तीन-तीन लगते हैं। ये रुयेंदार होते हैं। इसके फूल पीले, फली १ इञ्च से १।। इञ्च तक लम्बी और बीज लम्बगोल तथा बादामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चांगेरी शीतल, रोचक, अग्निवर्द्धक, हृदय को बल देने वाली, पित्त शामक, दाह नाशक, रक्त संग्राहक और सूजन को नष्ट करने वाली होती है। इसके स्वरस को लेने से शरीर की बारीक धमनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव मिटता है। संकोचक होने की वजह से यह अतिसार और पेचिश में भी लाभ पहुँचाती है। यह चर्म रोगों को नष्ट करने वाली और चौथिया ज्वर में लाभदायक है।

अग्निमांद्य रोग में इस वनस्पति के ताजे पत्तों की कढ़ी बनाकर देने से पाचन शक्ति दुरुस्त होकर भूख बढ़ती है। इन पत्तों को पानी के साथ पीसकर इनकी पुल्टिस बनाकर सूजन पर बाँधने से सूजन की दाह मिट जाती है और सूजन उतर जाती है। छोटे बच्चों के फोड़े फुन्सी पर भी इसके पत्ते बड़े लाभदायक हैं।

इसके रस में प्याज का रस मिलाकर उसको सिर पर लेप करने से पित्त का सिर दर्द दूर होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसके छोटे पत्तों का शीत निर्यास ज्वर में उपशामक वस्तु की तौर पर दिया जाता है।

दक्षिणी अफ्रीका के अन्दर कुछ जातियाँ इस वनस्पति को सर्पदंश पर उपयोगी मानती हैं।

कोमान के मतानुसार पुरानी पेचिश में इसके पत्तों को मट्ठे या दूध के साथ दिन में २-३ बार उबाल कर देने से बहुत लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शीतल, ज्वरोपशामक, अग्निप्रवर्धक और शीतादि रोग प्रति-शोधक है। इसमें एसिड पोटेशम आक्झलेट रहता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चांगेरी का फल भूख पैदा करता है, जठराग्नि को बढ़ाता है। यह संग्रहणी, कोढ़, बवासीर और रक्त विकार में लाभदायक है।

उपयोग—गुदा की कांच निकलना—चांगेरी के रस में घी को सिद्ध करके गुदा पर लेप करने से कांच का निकलना बन्द हो जाता है।

धतूरे का नशा—इसके ताजा पत्तों का रस पिलाने से धतूरे का नशा उतरता है।

अग्निमांद्य—इसके ताजा पत्तों की चटनी बनाकर खिलाने से भूख और पाचन-शक्ति बढ़ती है।

सूजन—इसके पत्तों को पानी में पीसकर कुछ गरम करके पुल्टिस बनाकर सूजन पर बाँधने से दाह और पीड़ा शान्त होती है और सूजन उतर जाती है।

मेद—शरीर पर एक बिना मुँह की गठान होती है उसको मेद कहते हैं। उस पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है।

आँख का जाला—इसके रस को आँख में आंजने से आँख का जाला कट जाता है।

मसूढ़े की सूजन—इसके पत्तों के रस से कुल्ले करने से मसूढ़े के असाध्य रोग भी मिट जाते हैं।

उदर शूल—इसके पत्तों के क्वाथ में भुनी हुई हींग भुरभुरा कर पिलाने से उदर शूल मिटता है।

अन्तर्दाह—इसके पत्तों को ठण्डाई के समान घोटकर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से अन्तर्दाह मिटती है।

चांदी

नाम—संस्कृत—रौप्य, रजत, चन्द्रहास, इत्यादि। हिन्दी—चांदी, रूपा। बङ्गाल—रूप। मराठी—चांदी, रूप। गुजराती—रूपुं। फारसी—नुकरा। अरबी—पिद्दा। लेटिन—Argentum [आर्जेण्टम]।

वर्णन—चांदी एक सुप्रसिद्ध धातु है। हिन्दुस्तान में बहुत प्राचीन काल से यह जेवर बनाने और औषधि प्रयोग के काम में आती है। आयुर्वेद के अन्दर इसकी उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि त्रिपुरासुर का वध करने के लिए शंकर जब बहुत क्रोधित हुए तब उनके एक नेत्र से अग्नि निकली और दूसरे नेत्र से आँसू की बूँद गिरी, उसी से चाँदी की उत्पत्ति हुई। चाँदी एक खनिज द्रव्य है। इसकी खदानें अमेरिका, सीलोन और चायना में हैं। बहुत सी बड़ी बड़ी नदियों की रेती में भी चांदी पाई जाती है। हिन्दुस्तान के अन्दर भी कई नदियों की रेती में यह मिलती है।

चाँदी की परीक्षा—जो चाँदी तोल में भारी, स्निग्ध, नरम, तपाने और तोड़ने में सफेद, घन की चोट को सहने वाली, सुन्दर वर्ण और चन्द्रमा के समान निर्मल, इन नौ गुणों से युक्त हो वह उत्तम होती है और जो चाँदी कठोर, बनावटी, रूखी, लाल, तपाने से काली पड़ जाने वाली और घन की चोट से टूटने वाली होती है, वह खराब होती है।

असली चाँदी का घनत्व पानी से १०॥ गुना होता है। इससे कम घनत्व वाली चाँदी नकली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चांदी स्निग्ध, कसैली, अम्ल, पचने में मधुर, सारक, अवस्था स्थापक, शीतल, लेखन और वात पित्त को हरने वाली होती है।

चाँदी चीनी के साथ शरीर की दाह को, त्रिफला के साथ वात और पित्त को और इलायची, दालचीनी और तेजपात के साथ प्रमेहादिक रोगों को दूर करती है।

अशुद्ध चाँदी के दोष—अशुद्ध चांदी शरीर के अन्दर ताप पैदा करती है। शरीर को शिथिल करती है। वीर्य को नष्ट करती है। कामशक्ति को कमजोर करती है और कई प्रकार के उपद्रवों को पैदा करती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चाँदी को शुद्ध करने की विधि—चांदी को गला-गला कर तिल के तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी, कुल्थी के बीजों का काढ़ा इन पाँच चीजों में सात-सात बार बुझाना चाहिये। उसके बाद उसको दाख का काढ़ा, इमली के पत्तों का काढ़ा, अगस्तिया के पंचांग के काढ़े में गरम कर-कर के सात-सात बार बुझाना चाहिये। इतनी क्रिया पर वह चांदी शुद्ध हो जाती है। चांदी में ताँबा, कांसा और पीतल के समान विशेष दोष नहीं है। इसलिए वैद्य लोग इसकी साधारण शुद्धि ही कर लेते हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि अधिक शुद्धि करने से वह अधिक गुणवान हो जाती है।

चांदी की भस्म बनाने की विधि—चाँदी के पत्रों को अग्नि में गरम कर नीबू के रस में ६३ बार बुझाना चाहिये। ज्यों-ज्यों भस्म होती जाय त्यों-त्यों उसको निकाल कर दूसरे पात्र में रख देना चाहिये। ६३ बार ऐसा करने से सब चाँदी के पत्रों की भस्म हो जायेगी। परन्तु यह ख्याल रखना चाहिये कि चाँदी के पत्रों को आग में रखने में और वहां से उठाने में भस्म खिर-खिर कर गिरती रहती है। इसलिए उसको किसी मिट्टी के सरावले में रखकर तपाना चाहिये। इस सब भस्म को इकट्ठी करके नीबू के रस में घोट कर टिकिया बना लें। जब टिकिया खूब सूख जाय तब उसे सराव सम्पुट में रख कर, बराह पुट में फूंक दें। इससे बहुत उत्तम, सफेद रंग की भस्म हो जायेगी।

चाँदी भस्म की दूसरी विधि—आधा सेर हिंगुल को चार प्रहर तक नीबू के रस में घोटें। बाद में चांदी के पतले पतले पाव भर पत्रों पर उसका लेप करके पत्रों को सुखा लें। उसके बाद उन पत्रों को डमरू यन्त्र में रखकर वज्र मुद्रा करके शुरू में मन्द, फिर मध्यम और फिर तेज ऐसे ४ पहर की आँच दें। यह खयाल रखना चाहिये कि डमरू यन्त्र के ऊपर की हांड़ी पर हमेशा ५-६ तह किया हुआ गीला कपड़ा पड़ा रहे और ज्यों-ज्यों वह कपड़ा गरम होता जाय त्यों-त्यों उसे बदल-कर दूसरा कपड़ा रखते जायँ। ४ पहर होने पर आँच को बन्द कर दें और जब यन्त्र ठण्डा हो जाय तब उसे खोलकर ऊपर की हांड़ी में जमे हुए शुद्ध पारे को निकाल कर अलग रख ले और नीचे की हांड़ी में से विशुद्ध चाँदी भस्म को निकाल लें। अगर उसमें किसी प्रकार की कसर रह जाय तो एक पुट और दे दें।

उपरोक्त चांदी की भस्म को शहद और अदरक के रस के साथ चाटने से शरीर में अनेक गुणों का प्रादुर्भाव होता है। विशेष कर यह प्रमेह को नष्ट करती है, कामशक्ति और वीर्य की वृद्धि करती है और दाह को नष्ट करती है।

चाँदी भस्म की तीसरी विधि—दस तोला अकरकरे की जड़ को लेकर पानी के साथ बारीक पीसकर उसकी लुग्दी बनाकर उस लुग्दी में एक तोला शुद्ध चाँदी का पत्रा रखकर कपड़ मिट्टी करके १० कण्डों की आँच में फूंकना चाहिये। इस प्रकार ५, ७ पुट देने से चाँदी की भस्म तैयार हो जाती है। इस भस्म को एक रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चाटने से कफ प्रकृति वालों की काम शक्ति कुछ दिनों में बहुत प्रबल हो जाती है और मैथुन में बहुत आनन्द आता है।

चाँदी भस्म की चौथी विधि—अपामार्ग का क्षार ३ तोला लेकर उसको एक मिट्टी के सरावले में बिछा देना चाहिये। उसके बाद उस पर १ तोला शुद्ध चाँदी रखकर उस चाँदी पर फिर ३ तोला अपामार्ग का क्षार डालकर खूब दबा देना चाहिये। फिर उस सरावले पर दूसरा सरावला रखकर कपड़ मिट्टी करके १० सेर कण्डों की आँच में फूंकना चाहिये। इस प्रकार ५ पुट अपामार्ग के क्षार में देना चाहिये। उसके बाद १ पुट जंगली सवा के रस में और देना चाहिये जिससे गुलाबी रंग की उत्तम भस्म बनती है। इसको आधी रत्ती की मात्रा में मलाई, मक्खन अथवा शहद के साथ खाने से काम शक्ति बहुत प्रबल होती है तथा धातु स्राव, शीघ्र पतन, स्वप्नदोष इत्यादि उपद्रव दूर होते हैं।

रजत रसायन—चाँदी की भस्म ४ तोले, शतपुटी अभ्रक भस्म २ तोला, सोंठ, मिर्च और पीपल का सम्मिलित चूर्ण ८ तोला, इन सबको पीसकर कपड़छान कर लेना चाहिये। इसको रजत रसायन कहते हैं। इसकी २ से ४ रत्ती तक की मात्रा शहद के साथ दोनों टाइम लेने से खाँसी, श्वास, नेत्ररोग, बवासीर और राजयक्ष्मा रोग में बहुत लाभ होता है। इसको निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्य को वृद्धावस्था दबा नहीं सकती।

यूनानी मत—यूनानी मत से चाँदी पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह दिल, मेदा और जिगर को ताकतवर बनाती है। माली खोलिया और उन्माद में लाभ पहुँचाती है। जलोदर और तिल्ली की सूजन, गुर्दे, मसाने की पथरी और पेशाब के रुक जाने में मुफीद है। मस्तिष्क और वीर्य को यह ताकत देती है।

हानिकारक—इसके अधिक सेवन से आँतों और मसाने को नुकसान पहुँचता है।

दर्पनाशक—आँतों के लिये इसका दर्पनाशक कतीरा और मसाने के लिये इसका दर्पनाशक गूगल है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि फिरोजा और याकूद है (ये दोनों किस्में पत्थर की हैं)।

मात्रा—इसकी भस्म की मात्रा एक रत्ती से चार रत्ती तक की है।

उपयोग—प्रमेह—बबूल की छाल, महुए की छाल और कटहल की छाल को जल में पीसकर, छानकर, उसमें चाँदी की भस्म मिलाकर पीने से २० प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं।

नं० २—दालचीनी, इलायची और तेजपात के चूर्ण में चाँदी की भस्म मिलाकर खाने से सब प्रकार के प्रमेह में लाभ होता है।

वात पित्त रोग—त्रिफला के चूर्ण के साथ चाँदी की भस्म खाने से वात पित्त के रोग मिटते हैं।

पाण्डु रोग—सोंठ, मिर्च और पीपर के चूर्ण के साथ चाँदी की भस्म को खाने से पाण्डु रोग में लाभ होता है। इसी अनुपान से चांदी की भस्म को लेने से क्षय, बवासीर, श्वास, खाँसी, उदर रोग, तिमिर रोग और पित्त के रोगों में भी लाभ होता है।

ज्वर—पीपर और इलायची के चूर्ण के साथ चाँदी की भस्म को लेकर, ऊपर से धनियें का दो तोला अर्क पीने से नवीन ज्वर, इकांतरा, तिजारी, इत्यादि सब प्रकार के ज्वर दूर होकर शरीर में नया खून पैदा होता है।

वायु शूल—वच के साथ चांदी की भस्म को खाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से वायु का शूल नष्ट होता है।

उन्माद और मृगी—बच, ब्राह्मी का चूर्ण और घी के साथ चांदी की भस्म खाने से उन्माद और मिरगी में लाभ होता है।

वन्ध्यापन—बछड़ेवाली गाय के दूध में असगन्ध की जड़ पीस कर उसमें चाँदी की भस्म मिलाकर कुछ दिनों तक सेवन करने से वन्ध्या भी सन्तान उत्पत्ति के योग्य हो जाती है।

नं० २—शिवलिंगी के बीज के साथ चाँदी की भस्म को खाने से भी वन्ध्यत्व नष्ट होता है।

हिचकी—आमला और पीपर के चूर्ण के साथ चाँदी की भस्म खाने से हिचकी मिटती है।

जीर्ण ज्वर और तिल्ली—शिवलिंगी के बीजों के साथ चाँदी की भस्म खाने से जीर्ण ज्वर और तिल्ली में लाभ होता है।

इसी अनुपान से खाँसी और वायु गोले में भी फायदा होता है।

वीर्य वृद्धि—वंसलोचन, छोटी इलायची, केशर, और मोती भस्म एक-एक रत्ती और चाँदी की भस्म दो रत्ती इन सबको शुद्ध शहद में मिलाकर चाटने से और ऊपर से मिश्री मिला दूध पीने से वीर्य वृद्धि होती है।

चाँदी पत्र

नाम—यूनानी—चाँदी पत्र।

वर्णन—एक प्रकार का घास है। इसके पत्ते और डालियाँ हंसराज के पत्ते की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति रक्त विकार के लिए मुफीद है। इसकी डालियाँ और पत्ते ३॥ तोले लेकर ३–४ काली मिरची के साथ पीने से कुष्ठ रोग में लाभ होता है [ख० अ०]।

चापरा

नाम—पंजाब—बन्दारू, बेबरंग, चिर्नसिन, चवरी, गूगल, जुभू, कखुम, कुरुख, कन, खुशिन, खोरकरी, पापरी, बावरंग। अरेबिक—बयबरंग, वरिंग। गढ़वाल—रिकादालिम। सीमाप्रांत—चुपरा, गुहुनी, पाहरीचा। हिन्दी—चापरा (कर्नल चोपरा) लेटिन—Myrsine Africana (मिरसाइन एफ्रिकेना)

वर्णन—यह वनस्पति काश्मीर से नेपाल तक १००० से ८५०० फीट की ऊँचाई तक तथा अफगानिस्तान और अफ्रीका में होती है। यह हमेशा हरी रहने वाली वनस्पति है। इसका छिलका हल्का बादामी होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार के और कटे हुए होते हैं। इसके फूल छोटे होते हैं। इसका फल गहरे बैंगनी रंग का रहता है। इसमें एक ही बीज रहता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—यह फल कृमि नाशक है। यह टेपवर्म [अंतड़ियों में पाये जाने वाले कीड़ों] को नष्ट करता है। यह बाजार में बायविडंग के नाम से बेचा जाता है। इसे बायबिडंग की जगह भी काम में लेते हैं।

यह जलोदर और शूल में मृदु विरेचक माना जाता है।

इसका गोंद कष्टरज में उत्तम औषधि है।

कुछ लोग इसके पत्तों को रक्त शोधन के लिये काढ़े के रूप में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कृमि नाशक और विरेचक है।

चाय

नाम—संस्कृत—चविका, चाह। हिन्दी—चाय। बंगाली—चाह। मराठी—चहा। गुजराती—चा। फारसी—चाखताई। अंग्रेजी—Tea। लेटिन—Camellia Theifera [केमेलिया थिफेरा]।

वर्णन—चाय का पौधा झाड़ीनुमा होता है। यदि वह समय-समय पर कलम न कर दिया जाय तो बढ़कर २५।३० फीट तक ऊँचा हो जाता है। परन्तु खेती की दृष्टि से इनको समय-समय पर कलम कर देते हैं जिससे ये पौधे ४।५ फीट से ऊपर बढ़ने नहीं पाते। इसकी पत्तियाँ सघन और परिस्थिति का संयोग पाकर भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार की होती हैं। फिर भी साधारणतया ये लम्बी, पतली और कम चौड़ी होती हैं इनके किनारे प्रायः दन्त पंक्ति के आकार के होते हैं। इन पत्तियं के अन्दर बहुत सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनमें एक प्रकार का तेल के समान पदार्थ रहता है जो चाय के स्वाद को चित्त प्रिय बनाता है। नवीन कोमल पत्तियों की नीची सतह पर बारीक रोएँ होते हैं जो पत्तों के बड़े होने पर विलीन हो जाते हैं। इसकी कुछ पत्तियाँ घुँघराली होती हैं जिनमें तेल का अंश अधिक रहता है। इसके बीज अण्डाकार और कठोर छिलके वाले होते हैं।

चाय की जातियाँ—भारतीय चाय की प्रायः ४ जातियाँ होती हैं। आसामी, लूसाई, नागा और मनिपुरी। आसामी चाय की पत्तियाँ ६ से ७॥ इंच तक लम्बी और २॥ से ३ इंच तक चौड़ी होती हैं। पत्ते के बीच वाली मोटी नस के दोनों ओर सोलह-सोलह नसें होती हैं। इस चाय की ३ उप जातियाँ होती हैं जो बिग, सिंगलो और बोहे के नाम से बोली जाती हैं। इनमें सिंगलो जाति की चाय सबसे उत्तम मानी जाती है। लूसाई चाय की पत्तियाँ १२ से १४ इञ्च तक लम्बी और ७॥ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। नागा चाय की पत्तियाँ ६ से ९ इञ्च तक लम्बी और २ से ३॥ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। मनिपुर चाय की पत्तियाँ दलदार और मोटी होती हैं। ये ६ से ८ इञ्च तक लम्बी और २ से ३॥ इञ्च तक चौड़ी होती हैं।

इतिहास—संसार के अन्दर चाय का प्रचार सबसे पहले चीन से हुआ, ऐसा माना जाता है। ऐसा मालूम होता है कि कन्फ्यूशस के जमाने में अथवा ईसवी सन् से ५५० वर्ष पूर्व वहाँ पर चाय का उपयोग होता था। उसके बाद पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी से वहाँ पर चाय का विशेष प्रचार हुआ। योरोप के अन्दर चाय का विशेष प्रचार सबसे पहले डच लोगों ने प्रारम्भ किया। जब डच लोग जावा में स्थायी रूप से निवास करने लगे तब वहाँ उनका सम्पर्क चीनी लोगों से हो गया जिससे वे लोग भी चाय पीने के अभ्यस्त हो गये। सन् १६५९ में लन्दन के अन्दर सबसे पहले गरम चाय बेचने की पहली दुकान खुली। सन् १६६४ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ब्रिटेन के सम्राट् चार्ल्स दूसरे को ४० शिलिंग प्रति पौंड वाली १८ औंस चाय भेंट की। तब से वहाँ पर चाय का प्रचार विद्युत् गति से बढ़ने लगा। सन् १७८७ ईसवीं में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतवर्ष के बाजारों से खरीद कर दो करोड़ रतल चाय, इंगलैण्ड के बाजारों में खपाई।

भारतवर्ष में चाय का व्यवहार वर्तमान ढंग से कब आरम्भ हुआ यह कहना कठिन है। पर सत्रहवीं शताब्दी के मध्यकाल में यहाँ पर इसका व्यापक प्रचार हो गया था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत के अन्दर व्यापक रूप से चाय की खेती प्रारम्भ करवाई। यहाँ की चाय इतनी उत्तम श्रेणी की पैदा होने लगी कि सन् १९०७ में सारे सभ्य संसार ने भारत की सर्वश्रेष्ठ करार दिया जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९२२-२३ तक भारतवर्ष में ४२७८ चाय के बगीचे लग गये और सन् १९१५-१६ में यहाँ से चाय का निर्यात ३३८४७०२६२ रतल का हुआ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चाय तीक्ष्ण, गरम, अग्नि को दीपन करने वाली, पाचक, हलकी, कफ पित्त नाशक और वात को कुपित करने वाली होती है।

चाय से मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होता है इस विषय में भारी मतभेद है। कई लोग इसको मानवीय स्वास्थ्य के लिए उपयोगी मानते हैं और कई लोग इसे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक और विषैली मानते हैं।

"इनसायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" का मत है कि चाय के सम्बन्ध में अभी तक विश्वासोत्पादक अधिकार युक्त रासायनिक विश्लेषण नहीं किया गया है। फिर भी उपलब्ध रासायनिक खोज के आधार पर चाय के तत्वों की विवेचना करना आवश्यक है।

रासायनिक विश्लेषण—अभी तक के रासायनिक विश्लेषण से चाय के अन्दर निम्नलिखित पदार्थ पाये गये हैं।

[१] जल	५ प्रतिशत
[२] मांस बनाने वाले पदार्थ	
[१] (केफीन) थिन (Theine)	३ प्र० श०
[२] केसीन	१५ प्र० श०
[३] गर्मी देने वाले पदार्थ—	
[१] एरोमेटिक ग्रायल	७५ प्र० श०
[२] शक्कर	३ प्र० श०
[३] गोंद	१८ प्र० श०
[४] चर्बी के तेल	४ प्र० श०
[५] टेनिन एसिड	२६.२५ प्र० श०
[६] लकड़ी का अंश	२० प्र० श०
[७] खनिज द्रव्य	५ प्र० श०

उपरोक्त रासायनिक पदार्थों में जो तेल का अंश दिखाई देता है, वह चाय को स्वादिष्ट सुगन्धित बनाता है। मगर चाय को उत्तेजक और स्फूर्ति दायक बना देने का श्रेय केफीन नामक पदार्थ को है। चाय में ३ प्रतिशत केफीन पाया जाता है और इसी के कारण चाय के पीते ही कुछ समय के लिए एक प्रकार की स्फूर्ति का संचार हो उठता है। स्नायु में एक प्रकार की चेतन शक्ति-सी दौड़ जाती है। केफीन वही पदार्थ है जो इसी प्रकार के अन्य पेय पदार्थों में जैसे:—काफी, कोको, कोलानट, आदि में पाया जाता है। तेल और केफीन के अतिरिक्त चाय में पाने वाला पदार्थ टेनिन है। टेनिन भूख को कम कर देता है और पाचनशक्ति को शिथिल करने में सिद्धहस्त है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि चाय में जहां मांस बनाने वाले पदार्थ १८ प्रतिशत और गर्मी पहुँचाने वाले पदार्थ २३·५७ प्रतिशत रहते हैं, वहां पाचनशक्ति को कमजोर करके भूख को बन्द कर देने वाला टेनिन नामक पदार्थ भी २६·२ प्रतिशत रहता है। ऐसी दशा में अगर चाय के अन्दर रहने वाला यह पदार्थ मानवीय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मगर टेनिन को दूर रखने के उपाय भी काम में लिये जाते हैं और उनमें से एक उपाय यह है कि गरम पानी में अधिक से अधिक ५ मिनट तक ढक्कन बन्द करके चाय को उबाल लेने से केफीन का पूरा अंश उसमें उतर आता है। मगर इतने समय में टेनिन का बहुत ही कम अंश उसमें आता है। अतः इसी अवधि के भीतर चाय छान ली जाय तो टेनिन का अंश उसमें न उतरने पायेगा। अधिक देर तक उबालने से टेनिन का अंश उतर जाता है और वही सबसे अधिक नुकसान पहुँचाता है।

इस सारे विश्लेषण से मालूम होता है कि चाय के अन्दर सबसे लाभदायक तत्व कैफीन है और सबसे हानिकारक तत्व टेनिन है। उत्तम श्रेणी की चाय वही मानी जाती है जिसमें कैफीन का अंश अधिक पाया जाता हो। क्योंकि चाय की उत्तमत्ता उसके गुणों पर ही निर्भर है और चाय में जो गुण हैं वे केफीन के ही कारण हैं। केफीन से स्नायु मण्डल में तत्काल स्फूर्ति का संचालन होता है। वह मनुष्य की मुरझाई प्रकृति प्रफुल्लित कर उसमें चैतन्यता फूंक

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

देता है। यह पदार्थ थोड़े परिमाण में शक्ति संचारक और लाभकारी होता है। मगर बड़ी मात्रा में यह भी विषैला हो जाता है। * १

चाय में कैफीन का अंश ३ से ६ प्रतिशत तक ही रहता है। इतनी मात्रा में यह उसे लाभकारी ही बनाता है। अतः चाय का यह पदार्थ स्वास्थ्य के लिये कोई हानिकारक वस्तु नहीं है। चाय में यदि हानिकारक कोई वस्तु है तो वह टेनिन ही है। परन्तु सिर्फ ५ मिनट तक चाय की पत्ती को उबालने से केवल कैफीन का अंश ही पानी में उतरता है, टेनिन का नहीं। इसलिये यदि चाय के अनिष्टकारक परिणामी से बचना हो तो उसे अधिक देर तक नहीं उबालना चाहिये।*२

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। उत्तम चाय तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। इसके पीने से तबीयत में प्रसन्नता पैदा होती है, मस्तिष्क को उत्तेजना मिलती है। यह पेशाब और पसीना अधिक लाती है। सिर दर्द और मेदे की जलन को दूर करती है। कफ प्रकृति वालों की कामेच्छा को बढ़ाती है। चाय को जोश देकर लेप करने से सख्त सूजन बिखर जाती है। यह गुरदे की खराबी से पैदा हुई पेशाब की रुकावट को मिटाती है। इसे हरड़, बहेड़ा, आंवला और रेवन्द चीनी के साथ जोश देकर पीने से पित्त और कफ की जमावट निकल जाती है। बनफसा, हंसराज, मुलहटी, गुल खतमी, अकरकरा और सनाय के साथ इसको जोश देकर इस जोशान्दे में नमक, कच्ची शक्कर और गुलाब का तेल मिलाकर उसका एनिमा लेने से आंतों की सब गन्दगी दस्त की राह निकल जाती है। इसको सालम मिश्री, दालचीनी, अम्बर और दूध के साथ पीने से मनुष्य को कामशक्ति बढ़ती है। पुदीना और अकलकरे के फूल के साथ पीने से वायु से पैदा हुआ उदर शूल मिटता है। बनफसा और मुलहठी के साथ पीने से जुकाम और नजले में लाभ होता है। केशर के साथ इसको पीने से प्रसूति कष्ट मिटकर बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है।

हानिकारक—चाय गरम प्रकृति वालों को खाली पेट पीने से मुँह में खुश्की, खुजली, दमा और अग्निमांद्य पैदा करती है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिये गरम मिजाज वालों को बकरी का दूध और सुपारी तथा सर्द मिजाज वालों को कस्तूरी, सोंठ और दालचीनी का प्रयोग करना चाहिये।

मात्रा—एक चाय का चम्मच सूखीचाय लेकर उसको एक कप पानी में औटाकर पीना चाहिये।

चाल मोगरा

नाम—संस्कृत—कुष्ठवैरी। हिन्दी—चाल मोगरा। बंगाल—चालमुगरा। मराठी—पेटार कुड़ा, चाल मुगरा। फारसी—बीज मोगरीं, बृज मोगरा। लेटिन–Taractongenos kursii टेरेक्टो जेनस करभाई। Gynocardia Odorata [गिनोकारडिया ओडोरेटा]।

वर्णन—चाल मुगरा के वृक्ष हिमालय के नीचे के प्रदेश में अर्थात् सिकीम, चटगाँव, खासिया पहाड़ी और रंगून की तरफ विशेष होते हैं। इसके पत्ते फुट भर लम्बे और फल कवीट के फलों की तरह होते हैं। इन फलों में से एक एक इंच लम्बे बीज निकलते हैं। इन बीजों में से जो तेल निकलता है उसे चाल मुगरा आयल कहते हैं। चाल मुगरा के बीजों को अभी तक वनस्पति शास्त्र में गिनों कारडिया ओडोरेटा नामक वृक्ष के बीज माना जाता था। परन्तु जी० डिस्प्रीभ नामक फ्रेंच रसायन शास्त्री ने सन् १८९९ में यह सिद्ध किया कि चाल मुगरा के नाम से जो बीज यूरोप में आते हैं वे गिनोकारडिया के नहीं परन्तु दूसरे किसी वृक्ष के हैं। इस विषय का निर्णय करने के लिये लेफ्टनेन्ट कर्नल डी० प्रेन को लिखा गया। उन्होंने

---

* [1] In large quantities, It is posion, But in smallar quantities it acts as a stimulants. [Tea By A. lbbetson]

* [2] Experiment has shown that an infusion of the leaf for ten minutes is suficient to extract all the valuable theine and a longer period merely results in an acumulation of Tannin which in excess is wellknown to seriously impede Digssrion. [Tea, By A. Ibbetson]

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

तलाश करके यह निश्चय किया कि कलकत्ते के बाजार में जो बीज चाल मुगरा के नाम से बेचे जाते हैं। वे गिनोकारडिया ओडोरेटा के नहीं प्रत्युत टेरेक्टोजेनस करझाई नामक वृक्ष के हैं। इन दोनों जाति के बीजों में इतना अन्तर हैं कि वे आसानी से पहिचाने जा सकते हैं। गिनोकारडिया के बीज टेरेक्टोजेनस के बीजों के बजाय छोटे होते हैं। गिनो कारडिया के बीजों का छिलका बहुत सख्त और उसका मगज हल्का पीला होता है। मगर टेरेक्टोजेनस का छिलका साफ और उसका मगज काले रंग पर होता है।

गुण दोष और प्रभाव--चाल मुगरे का तेल कृमि नाशक, वेदना को दूर करने वाला, चर्म रोगों को मिटाने वाला, रक्त शोधक और व्रण रोपक होता है। इसको अधिक मात्रा में पेट के अन्दर लेने से सुस्ती और जम्भाइयाँ आती हैं तथा उल्टी और दस्त होते हैं। चमड़े पर अधिक मालिश करने से यह जलन पैदा करता है।

चर्मरोग और कुष्ठ के अन्दर चाल मुगरे का तेल बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। महा कुष्ठ के अन्दर रोग के लक्षण दिखलाई देते ही इसको खाने और शरीर पर लगाने से बहुत लाभ होता है। कुष्ठरोग में इसको लेने के साथ पथ्य की बतौर गांजा पीने से विशेष लाभ होता है। उपदंश या गरमी की दूसरी अवस्था में इसका उपयोग करने से संतोषजनक परिणाम दृष्टिगोचर होता है। खाज, खुजली वगैरह रोगों पर इसको मक्खन के साथ मिलाकर लगाने से फायदा होता है। मक्खन नहीं मिलाने से त्वचा पर बहुत जलन होती है।

क्षय, कण्ठमाला, क्षय जन्तुओं के द्वारा पैदा हुए व्रण, घाव, नासूर और हड्डी के नासूर में चाल मुगरा तेल को खिलाने और इसका मलहम लगाने से बहुत लाभ होता है। श्वास नलिका की पुरानी सूजन, फेफड़े के रोग, आमवात, सन्धिवात और स्नायु रोगों पर भी इसको खाने और लगाने से अच्छा परिणाम नजर आता है।

चाल मुगरे का तेल चर्मरोगों के लिए एक रामबाण औषधि है। अगर इसका विधि पूर्वक उपयोग किया जाय तो कुष्ठ के समान भयंकर रोग भी इससे दूर हो जाते हैं। साधारण खुजली से लेकर नाना प्रकार के कुष्ठ के समान, त्वचा के रोगों के ऊपर यह तेल बड़ा लाभ पहुँचाता है। उपदंश या गरमी के रोग पर तो यह एक महौषधि है।

यह तेल सन् १८१६ ई० में पहले-पहल यूरोपियन डाक्टरों की जानकारी में आया और उसके कुछ वर्षों के बाद एक प्रधान अंग्रेज डाक्टर ने अनेक रोगियों के ऊपर इसकी परीक्षा करके यह जाहिर किया कि क्षय की खांसी और कण्ठमाला के रोग पर यह तेल विशेष उपकारी है। इसके गुणों से प्रभावित होकर सन् १८६८ में इसका नाम ब्रिटिश फरमा कोपिया के अन्दर दर्ज किया गया और इसके गुण दोषों के लिये उसमें यह लिखा गया कि कोढ़ के रोग, वात रक्त, कण्ठमाला, दूसरे चर्म रोग और वायु के रोगों के ऊपर यह वस्तु लाभदायक है। इसकी मात्रा के सम्बन्ध में उक्त फरमा-कोपिया में यह निश्चय किया गया कि अगर इसके बीजों का चूर्ण लेना हो तो तीन रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार इस चूर्ण की गोली बनाकर लेना चाहिये और अगर तेल लेना हो तो ६ बूंद की मात्रा में लेना चाहिये।

इण्डियन प्लेण्ट्स एण्डड्रग्स नामक ग्रंथ में डाक्टर नाडकरनी लिखते हैं कि चाल मोगरे का तेल वातरक्त और कुष्ठ रोग के लिये हिंदुस्तान में बहुत प्रसिद्ध है। कण्ठमाला, चर्मरोग और प्राचीन संधिवात पर भी यह औषधि विजयी साबित हुई है। इसके बीजों को पीस कर उनका चूर्ण दिन में तीन बार ६ ग्रेन की मात्रा में गोली बांध कर दिया जाता है। धीरे-धीरे इस चूर्ण की मात्रा बढ़ाते-बढ़ाते दस बारह रत्ती तक दी जा सकती है। मात्रा बढ़ाते समय अगर जी का मिचलाना, उल्टी, चक्कर इत्यादि उपद्रव दिखलाई दें तो उसकी मात्रा घटा देना चाहिये या कुछ दिनों के लिये बन्द करके फिर चालू कर देना चाहिये। अगर तेल देना हो तो ६ बूँद से शुरू करके धीरे-धीरे बढ़ाते हुए ३० बूँद तक प्रति टाइम दिया जा सकता है। इस तेल को दूध के साथ लेना चाहिये अथवा कैपसूल के अन्दर भर कर निगल जाना चाहिये। जब तक इस औषधि का सेवन चालू रहे तब तक नमक, मिर्च, गरम मसाला और खटाई बिलकुल बन्द कर देना चाहिये और घी मक्खन इत्यादि चीजों को अधिक मात्रा में सेवन करना चाहिये। शक्कर और गुड़ की बनी हुई चीजें भी जहाँ तक हो सके नहीं लेना चाहिये। क्षय के रोग में भी इसको पीने और छाती पर मालिश करने से

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अच्छा लाभ होता है। दाद के ऊपर इसकी मालिश एक महीने तक करते रहने से दाद जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

यह खयाल में रखने की बात है कि चर्म रोगों के ऊपर यह एक दिव्य औषधि होते हुए भी पचने में भारी होने की वजह से जठराग्नि पर बहुत खराब असर डालती है। इसलिये जिसकी जठराग्नि मन्द हो ऐसे रोगी को इसे बहुत विचार के साथ देना चाहिये। ऐसे रोगियों को इसकी मात्रा २ बूँद से शुरू करके ज्यों-ज्यों अनुकूल होती जाय त्यों-त्यों धीरे-धीरे पन्द्रह बीस बूँद तक बढ़ाना चाहिये। इसको भूखे पेट लेने की अपेक्षा भोजन के आधे घण्टे पश्चात् मक्खन के साथ लेने से यह बहुत आसानी से पच जाता है और इसको लेने का यही तरीका उत्तम भी माना गया है। इस प्रकार इसको लेने से और मक्खन के साथ मिलाकर लेप करने से कुष्ठ रोग की प्रथमावस्था में बहुत लाभ होता है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा ५ बूँद से शुरू होती है। जो बढ़ाते-बढ़ाते तीस बूँद तक पहुँचा दी जाती है। इसको भोजन के पश्चात् मक्खन के साथ मिलाकर या कैंपसूल में भर कर लेना चाहिये।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। मखजनूल अदविया के मतानुसार इसमें विष के उपद्रवों को मिटाने की तासीर है। इसके अतिरिक्त यह दाद, खाज, कुष्ठ और चर्म रोगों में बहुत मुफीद है। यह खाने और मालिश करने के दोनों कामों में लिया जाता है। इसको अकेले मालिश करने से चमड़े पर बहुत जलन पैदा होती है। इसलिये इसको तिगुने या चौगुने नीम के बीजों के तेल में मिलाकर लगाना चाहिये। इसको पीने और मालिश करने से कोढ़, कण्ठमाला, दूसरे चर्म रोग, पुरानी गठिया, गरमी और क्षय के रोग में बहुत लाभ होता है।

चालटा

नाम—संस्कृत—भव्य, रुव्य। हिन्दी—चालटा, गिरनार, चालता। बंगाल—चाल्ता। मराठी—मोठे करमल, करमबेल। बम्बई—करमबेल, मोठा करमल। गुजराती—कारमवेल, ओटफल। नेपाल—रामफल, पचाल। तामील—ऊह, उगकी, अक्कू। तेलगू—उव्य, कलिंग। लेटिन—Dillenia Indica [डिलेनिया इण्डिका]।

वर्णन—यह मध्यम आकार का सुन्दर वृक्ष नैपाल से आसाम तक तथा दक्षिण कोंकण और सीलोन में पैदा होता है। सहारनपुर और देहरादून में इसे बो कर पैदा किया जाता है। इसके पत्ते हाथ भर लम्बे और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद, सुगन्धित और गोल रहते हैं। इसके फल छोटे नारियल की तरह बाहर की तरफ कठोर रहते हैं। इनके भीतर गूदा रहता है और उस गूदे में बीज रहते हैं। औषधि में इसके फूल और फल काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल तूरा, कड़वा और तीक्ष्ण तथा इसका पका फल मीठा, तूरा और स्वादिष्ट रहता है। यह वात, कफ, थकान और उदरशूल को मिटाता है।

इसके फलों के रस को शक्कर और पानी के साथ मिलाकर ज्वर और खांसी के अन्दर दिया जाता है। इससे दस्त साफ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति शीतल है। यह ज्वर के अन्दर एक लाभदायक पेय पदार्थ माना जाता है।

चांवल

नाम—संस्कृत—धान्य, शालि, तन्दुल। हिंदी—चांवल, धान। मराठी—तांदुल, भात। गुजराती—चोखा, भात। सिंध—चांवर। फारसी—बिरंज। अरबी—अर्ज, अरुज। तामिल—अरिशी, नेलू। तेलगू—बियर धान्यम्, वरलू बदलू। लेटिन—Oryza Sativa (ओरिझा सेटिवा)।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—चावल भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध खाद्य पदार्थ है। अतः इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। आयुर्वेदिक मत से यह शालिधान्य, व्रोही धान्य, शिम्बी धान्य और क्षुद्र धान्य के भेद से ५ प्रकार का माना गया है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से शालिधान्य मधुर, स्निग्ध, बलकारक, किंचित् मलरोधक, कसैले, हलके, रुचिकारक, स्वर को शुद्ध करने वाले, वीर्यवर्द्धक, पौष्टिक, वात कफ को कुपित करने वाले शीतल, पित्तनाशक और मूत्रल होते हैं।

लाल शालिधान्य—सब धान्यों में उत्तम होते हैं। ये बलवर्द्धक, कान्ति बढ़ाने वाले, त्रिदोष नाशक, मूत्रल, स्वर को श्रेष्ठ करने वाले, शुक्रजनक, प्यास को दूर करने वाले, विष नाशक, ज्वरघ्न, व्रण को दूर करने वाले तथा श्वास, खाँसी और दाद को नष्ट करने वाले होते हैं।

राजशालिधान्य—अर्थात् बासमती चावल स्निग्ध, मधुर, अग्नि दीपक, बलकारक, कान्तिजनक, धातुवर्द्धक, त्रिदोष नाशक और हलके होते हैं।

व्रोही धान्य—मधुर, शीतवीर्य, मल रोधक और शुक्रल तथा बल देने वाले होते हैं।

साँठी चावल—मधुर, मल रोधक, त्रिदोष नाशक, शीतल और सब प्रकार के चावलों में श्रेष्ठ होते हैं।

चावल दो प्रकार के आते हैं। एक मशीन से साफ किये हुए, पालिशदार और दूसरे हाथ से साफ किए हुए बिना पालिश के होते हैं। पालिश किये हुए चावल दीखने में बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट होते हैं, मगर इनका गुणकारी तत्व जल जाता है और वे शरीर के लिये पौष्टिक नहीं होते। हाथ से साफ किये हुए चावल दीखने में सुन्दर नहीं होते, मगर स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक होते हैं।

चावल दूसरे अनाजों की अपेक्षा, अपेक्षाकृत निःसत्व अनाज है। इसके अन्दर पानी १२ प्रतिशत, मांसवर्द्धक भाग ७॥ प्र० श०, चर्बी २ प्र० श०, मैदा ६ प्र० श०, राख १॥ प्र० श० और तेल २ प्र० श० पाया जाता है। इसको मशीन से साफ करने से इसका मांसवर्द्धक भाग कम हो जाता है और तेल नष्ट हो जाता है। इस अन्न के अन्दर मानव शरीर को पोषण करने वाले विटामिन्स कम रहते हैं और इसलिए जिन प्रान्तों में चावल का खान-पान बहुत अधिक है उन प्रान्तों में बेरी-बेरी नामक भयंकर रोग का प्रचार अधिक पाया जाता है। इस बात को चिकित्सा शास्त्र भी मान चुका है कि केवल चावल पर जीवन निर्वाह करने वाले लोग बेरी-बेरी रोग के अधिक शिकार होते हैं।

यूरोप के अन्दर चावल फेफड़ों की बीमारी, क्षय, वक्षस्थल के रोग और कफ के साथ खून जाने की बीमारी में लाभदायक माना जाता है। उबाला हुआ चावल पाचन-क्रिया की विकृति, आंतों के विकार और अतिसार में लाभदायक हैं। चावल का पानी ज्वर और अंतड़ियों की जलन में शान्तिदायक पदार्थ की तरह दिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चावल तर मिजाज वालों के लिए अधिक अनुकूल रहता है। इससे खून पैदा होता है और शरीर मोटा होता है।

हकीम गिलानी के मतानुसार चावल वीर्य को बढ़ाता है और पेट में फुलाव पैदा करता है। यह शक्कर के साथ खाने से जल्दी हजम होता है। सफेद चावल शरीर में ताजगी और रौनक पैदा करता है। इसके खाने से खराब स्वप्न बन्द हो जाते हैं। यह फेफड़े के जखम को भर देता है। चावल को मट्ठे के साथ खाने से गर्मी, प्यास, जी मिचलाना और पित्त के दस्त मिट जाते हैं।

अतिसार या पेचिश के रोगियों के लिए चावल एक उत्तम खाद्य पदार्थ है। खास करके लाल चावल इस कार्य में ज्यादा मुफीद है। आँतों के जखम, खून के दस्त, गुर्दे तथा मसाने की बीमारियों में ये लाभ पहुँचाते हैं। चावल को भून कर उसको रात भर पानी में भिगोकर उस पानी को सबेरे पीने से मेदे के कीड़े मर जाते हैं।

जिन लोगों को गुर्दे और मसाने की पथरी का रोग हो अथवा मधुमेह हो उनके लिये चावल बहुत हानिकारक पदार्थ है।

सफेद चावलों को पानी में भिगोकर उस पानी से चेहरे को धोने से चेहरे की झाँई मिटकर रंग साफ हो जाता है।

चावलों के पानी में मोतियों को धोने से मोती की चमक-दमक बढ़ जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

लाल चावल पेशाब सम्बन्धी बीमारियाँ, प्यास और शरीर की जलन को दूर करता है। इसको जोश देकर पीने से पेशाब साफ आता है। काले धान का चावल ज्वर नाशक है, भूख बढ़ाता है, कामेन्द्रिय को ताकत देता है। एक साल का पुराना चावल वात पित्त और कफ को दूर करता है। तीन साल का पुराना चावल कृमियों को नष्ट करता है, शरीर के ओज को बढ़ाता है। प्रसूति काल में स्त्रियों के लिए यह लाभदायक है।

हानिकारक—पथरी और उदर रोगियों के लिए चावल बहुत हानिकारक है।

दर्पनाशक—इसके दर्प नाशक पदार्थ दूध, घी, शक्कर और शहद हैं।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि जौ का सत्तू और बाजरा है।

चिकरी

नाम—काश्मीर-चिकारी। सीमा प्रदेश-चिकरी, पापरी, पोपार। उर्दू-शमशेद। लेटिन-Buxus Sempervirens [बक्सस सेम्पेरव्हिरेन्स]।

वर्णन—यह वनस्पति समशीतोष्ण हिमालय भूटान और पंजाब में पैदा होता है। यह एक छोटे कद का वृक्ष है। इसके पत्ते बर्छी आकार के और लंब, गोल और इसके फूल छोटे, पीले, हरे और मस्त खूशबू वाले होते हैं। इसकी फली गोल होती है जिसमें ३ से ६ तक बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसके पत्ते सिर दर्द और गुदाभ्रंश रोग में लाभदायक होते हैं। इसके बीज कड़वे, संकोचक और हृदय तथा मस्तिष्क को बल देने वाले होते हैं। ये मुखशोथ और यकृत के विकारों को दूर करते हैं।

इसकी छाल का सत्व ज्वर निवारक और पसीना लाने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी लकड़ी ज्वर उतारने वाली होती हैं। इसके पत्ते कड़वे, विरेचक, पसीना लाने वाले और गठिया तथा गर्मी में लाभदायक हैं। इसकी छाल ज्वर निवारक है। इसमें बक्साइन, पेटोबक्साइन और बक्सानी डाइन नामक उपक्षार पाये जाते हैं।

चिचोरा

नाम—हिन्दी—चिचोरा। लैटिन Scirpus Articulatus [स्किर्पस आर्टिक्यूलेटस]

वर्णन—यह एक हमेशा स्थाई रहनेवाली वनस्पति है इसका तना छोटी अंगुली के समान मोटा रहता है। इसके पत्ते बहुत ही कम लगते हैं। ये झिल्लीदार होते हैं इसका फल लम्बा, गोल, चमकीला और काला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक है।

चिउरा (फुलवार)

नाम—हिन्दी—चिउरा, फलवरा, फुलवारा, फुलवार। देहरादून—चिउरा। कुमाऊँ—बुलेल, चिउरा। नेपाल—चिवारी, चिपरो। अवध—वेड़ली। लेटिन—Bassia Butyracea [बेसिया ब्यूटीरेसीआ]

वर्णन—यह वनस्पति कुमाऊ से लेकर भूटान तक १००० फीट से ५००० फीट की ऊँचाई तक हिमालय के दक्षिण भाग में होती है। यह एक मध्यम श्रेणी का वृक्ष है। इसकी छाल गहरे बादामी और लाल रंग की होती है। इसके पत्ते २० से लगातार ३५ सेन्टीमीटर तक लम्बे और ६ से लेकर १५ से० मी० तक चौड़े होते हैं। ये अण्डाकार और ऊपर की तरफ हरे और चमकीले होते हैं। इसके फूल सफेद और फल हरे चमकीले और अण्डाकार होते हैं। इसके बीजों में से तेल निकलता है। जो मक्खन के समान सफेद, गन्ध रहित और घी के समान जमा हुआ रहता है। यह कोकम के तेल की तरह होता है और उसी के बदले में काम आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसमें पाया जानेवाला स्निग्ध पदार्थ सन्धिवात में उपयोगी है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चित्रक

नाम–संस्कृत–चित्रक, अग्नि, अग्निशिखा, सप्तषि, शार्दूला। हिन्दी—चित्रक, चित्रा, चीतावर। गुजराती–चित्रा, चित्रक। मराठी—चित्रकमुल, चित्रक। पंजाब—चित्रक। तामिल—अहिगर्राद, अफिनि, कारमह। तेलगू—अग्निमत, चिक्षमूलग। अरबी—शीतरज। फारसी—विगबरिन्दे, शीवीरका। लेटिन—Plumbago Zeylanica [प्लम्बगो झेलेनिका]

वर्णन—यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। कहीं-कहीं इसकी खेती भी की जाती है। इसके पौधे बहु वर्ष जीवी और हमेशा हरे रहने वाले होते हैं। ये पौधे ३ से ६ फुट तक ऊंचे होते है। इस पौधे का तना बहुत कम होता है। जड़ के सिर पर से ही पतली-पतली कई डालियाँ फूटती हैं जो चिकनी और हरे रंग की होती है। इसके पत्ते नागर के पत्ते की तरह अखण्ड, लम्बे गोल और हरे रंग के होते हैं। ये बहुत दलदार होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और गन्ध रहित होते हैं। इसके फूलों की कलगी कोमल शाखाओं में से निकलती है। वह तीन से बारह इञ्च तक लम्बी होती है। उसके ऊपर फूल लगते हैं। इन फूलों के ऊपर फल लगते हैं और एक-एक फल में एक-एक बीज निकलता है। इसकी छाल कालापन लिये हुए उदी रंग की होती है। इसकी सूखी जड़ें तोड़ने से झट टूट जाती हैं। इनका स्वाद तीक्ष्ण और कड़वा होता है। इसकी जड़ की छाल औषधि के काम में आती है। अधिक पुरानी होने पर यह निरुपयोगी हो जाती है। इसकी सफेद, लाल और काली ऐसी ३ जातियाँ होती हैं। सफेद चित्रक को लेटिन में प्लम्बेगो झेलेनिका, लाल चित्रक को प्लम्बेगो रोजिया और काली चित्रक को प्लम्बेगो केपेंसिस कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चित्रक पाचक, रूखी, हलकी, पचने में चरपरी, अग्नि दीपक, ग्राही, कड़वी, गरम, रुचिकारक, रसायन, अग्नि के समान पराक्रमी तथा सूजन, कोढ़, बवासीर, खाँसी, कृमि, कण्डू, यकृत रोग, संग्रहणी, क्षय और उदर रोगों को नष्ट करने वाली है।

लाल चित्रक—देह को स्थूल करनेवाली, रुचिकारक, कुष्ठ नाशक, पारे को बाँधने वाली, लोहे को भेदने वाली, रसायन और धातु परिवर्तक है।

काली चित्रक—काली चित्रक को खाने से मनुष्य के बाल काले हो जाते हैं। गाय की सूँघी हुई काली चित्रक को दूध में डालने से दूध काला हो जाता है।

योग्य मात्रा में और योग्य विधि से इसका उपयोग करने से सन्निवात, जलोदर, संग्रहणी, अजीर्ण, बवासीर, अरुचि, बात, पित्त, कफ, कुष्ठ, सूजन, तिल्ली और यकृत की वृद्धि, मन्दाग्नि इत्यादि रोगों में यह अच्छा लाभ बतलाती है। पर अधिक मात्रा में लेने से यह एक प्रकार के विष का काम करती है। इसको अधिक मात्रा में लेने से आमाशय में जलन पैदा होती है। दस्त और उल्टियाँ होने लगती हैं। पेशाब में बहुत कष्ट होने लगता है और नाड़ी अशक्त होकर अव्यवस्थित चलने लगती है। चमड़े पर भी इसका लेप करने से फोला उठ जाता है, जो बहुत कष्टदायक होता है और मुश्किल से भरता है। वहाँ की चमड़ी भी काली पड़ जाती है।

छोटी मात्रा में इसका उपयोग करने से पाचन नली की श्लेष्म त्वचा को उत्तेजना मिलती है और आमाशय तथा उत्तर गुदा की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़कर उनमें शक्ति आती है। इसके सेवन से पेट में गर्मी उत्पन्न होती है और पाचन-क्रिया बढ़ती है। गुदा में स्थित उस नस के ऊपर जिस पर अर्श पैदा होते हैं चित्रक की प्रत्यक्ष क्रिया होती है। इसके सेवन से उस नस की शिथिलता नष्ट हो जाती है। यकृत के ऊपर भी इस औषधि की क्रिया स्पष्ट होती है। इसके सेवन से यकृत को उत्तेजना मिलती है और पित्त व्यवस्थित गति से बहने लगता है। यही कारण है कि चित्रक को देने पर मल हमेशा पीले रंग का उतरता है।

यह औषधि रक्त में मिलने के पश्चात् मल छोड़ने वाली ग्रंथि के ऊपर उत्तेजक असर डालती है और उसी समय चमड़े के अन्दर रहने वाली स्वेद ग्रन्थि के ऊपर भी इसकी विशेष क्रिया होती है। यही कारण है कि चित्रक को देने से बहुत पसीना होती है।

गर्भाशय के ऊपर चित्रक की क्रिया, अत्यन्त महत्व पूर्ण और ध्यान में रखने के काबिल होती है। साधारण बड़ी मात्रा में इसको देने से कमर की सभी इन्द्रियों में जलन पैदा होती है। दस्तें लगने लगती हैं। दस्तों के साथ गर्भाशय से रक्त

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बहने लगता है। पेशाब बूंद-बूंद होने लगता है और गर्भाशय का संकोचन इतना अधिक होता है कि अन्त में गर्भपात हो जाता है। इसके सेवन से जो गर्भपात होता है उसमें अगर विशेष शुश्रूषा और सावधानी न रक्खी जाय तो कमर के अन्दर जलन पैदा होकर स्त्री का जीवन खतरे में पड़ जाता है।

विषम ज्वर और खास करके यकृत और तिल्ली की वृद्धि पर चित्रक के उपयोग से बहुत लाभ होता है। ज्वर के अन्दर इसकी जड़ के चूर्ण को सोंठ, मिरच, पीपल के साथ देने से अथवा इसका अर्क देने से अच्छा लाभ होता है। ज्वर में जब रक्ताभिसरण क्रिया मन्द हो जाती है और रोगी अन्न नहीं खा सकता है उस समय चित्रक के उपयोग से अच्छा लाभ होता है। प्रसूतिका ज्वर में चित्रक देने से दो प्रकार के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। एक तो इससे बुखार की कमी होती है। और शरीर को इन्द्रियों को उत्तेजना मिलती है। दूसरे गर्भाशय उत्तेजित होकर दूषित आर्तव बहने लगता है, जिससे मक्कल शूल मिटता है। प्रसूतिका ज्वर में चित्रक को निगुण्डी के साथ देना चाहिये।

शिथिलता प्रधान पाचन नालिका के रोगों में चित्रक एक बहुत प्रभावशाली औषधि है। अरुचि, अग्निमांद्य और अजीर्ण के विकारों में इसको ताजी जड़ के चूर्ण को बायविडंग और नागरमोथे के साथ देने से पाचनशक्ति की व्यवस्था ठीक होकर नियमित भूख लगने लगती है। भोजन पर रुचि पैदा होती है और मन में प्रसन्नता उत्पन्न होती है। बड़ी आंत और छोटी आंतों की शिथिलता की वजह से पेट के अन्दर कभी कब्जियत, कभी दस्त लगना ऐसी अव्यवस्था पैदा हो जाती है। उसको दूर करने के लिए चित्रक को हरड़, संधा नमक और पीपलामूल के साथ देने से अच्छा लाभ होता है।

बवासीर के रोग पर भी चित्रक का प्रत्यक्ष असर होता है। इस कार्य के लिये इसको दही के साथ देना चाहिये।

चित्रक पेट में जाने के पश्चात् चमड़ी के छिद्रों के द्वारा बाहर निकलती है। जिससे त्वचा की जीवन विनिमय क्रिया में सुधार होता है। इस कारण गर्मी या उपदंश की दूसरी अवस्था में अथवा महाकुष्ठ रोग में इसका उपयोग होता है। इसी प्रकार चमड़ी के दूसरे रोगों में खास करके खुजली और कच्ची धातुओं के खाने से पैदा हुए रक्त विकार में इसको देने से अच्छा परिणाम होता है।

रासायनिक विश्लेषण—सन् १८८५ में डूलांग ने चित्रक की जड़ से प्लम्बेगो नामक पदार्थ प्राप्त किया और उसका नाम प्लम्बेगिन रक्खा गया। फ्लूकीगर ने सन् १८८९ में इससे यही तत्व प्राप्त किया मगर यह उससे अधिक साफ था। राय और दत्त ने सन् १९२८ में यह सिद्ध किया कि प्लम्बेगिन भारतवर्ष में पाई जाने वाली चित्रक की सभी जातियों में पाया जाता है। इसकी जड़ में यह .९१ प्रतिशत की तादाद में रहता है। भिन्न-भिन्न जातियों में और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पैदा हुए पौधों में यह भिन्न-भिन्न मात्रा में पाया जाता है। इसका वृक्ष जितना पुराना होगा और जितनी सूखी जमीन में होगा उतना ही अधिक क्रियाशील तत्व इसकी जड़ों में पाया जायगा। यह भी पाया गया है कि इसकी ताजी जड़ों में प्लम्बेगिन अधिक मात्रा में पाया जाता है।

मानवीय शरीर पर प्लम्बेगिन का प्रभाव—सन् १९३१ में किको ने इस तत्व [प्लम्बेगिन] के महत्व का अध्ययन किया। वे इस निश्चय पर पहुंचे कि थोड़ी मात्रा में लिये जाने पर यह केन्द्रीय स्नायुमण्डल को उत्तेजित करता है और अधिक मात्रा में लेने से यह निष्क्रियता पैदा कर मृत्यु ला देता है। इससे रक्तभार कुछ गिरा हुआ मालूम पड़ता है। कम मात्रा में इसकी खूराक सारे शरीर के मज्जा तंतुओं को उत्तेजित कर देती है। लखनऊ में व्यास और लाल ने यह जाहिर किया कि यह एक तेज जलन करने वाला पदार्थ है। इसमें कृमिनाशक गुण भी हैं। कम मात्रा में लिये जाने पर यह पसीना लाता है और अधिक मात्रा में लेने से श्वास क्रिया को रोककर जीवन को नष्ट कर देता है। इसका प्रभाव सीधा मज्जातन्तुओं पर पड़ता है। धवलरोग और गंज के ऊपर भी इसके प्रयोग किये गये हैं और उसमें यह लाभदायक सिद्ध हुआ है। सारांश यह कि—

[१] यह एक तेज जलन पैदा करने वाला और कृमिनाशक पदार्थ है। बाह्य उपचार में लेने से इसका प्रभाव जलन के रूप में मालूम पड़ता है। बेक्टेरिआ नामक कृमि पर भी यह अपना प्रभाव दिखलाता है।

[२] प्लम्बेगिन का खास असर मज्जातन्तुओं पर होता है। कम तादाद में लेने पर यह मज्जाओं को उत्तेजित करता है और अधिक तादाद में लेने से उनको निष्क्रिय बनाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

[३] यह हृदय के मज्जातन्तुओं की संकोचक क्रिया को उत्तेजना देता है। इसी प्रकार वृहद् अन्त्र और गर्भाशय की क्रिया पर भी अपना संकोचक असर दिखलाता है। इसका यह प्रभाव बहुत गहरा होता है।

[४] पसीना, मूत्र और पित्त की क्रियाओं को यह उत्तेजना देता है।

[५] इसके लेने से गर्भ का बच्चा चाहे वह मरा हुआ हो चाहे जीवित गर्भाशय के बाहर आ जाता है।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ दूसरी औषधियों के साथ में सांप के विष पर उपयोगी है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति न तो सर्पदंश में और न बिच्छू के विष में ही लाभदायक है।

डायमाक के मतानुसार चित्रक की जड़ बवासीर में लाभदायक है।

वाग्भट्ट के मतानुसार इसकी पिसी हुई जड़ बड़ी पौष्टिक होती है। इसे भिन्न-भिन्न पौष्टिक वस्तुओं के साथ उपयोग में लेते हैं। गाय के घी और शहद के साथ इसे लेने से यह धातुपरिवर्तक हो जाती है।

चरक के मतानुसार चित्रक की जड़ सभी पौष्टिक पदार्थों में बहुत तेज है।

यूनानी मत—यूनानीमत से यह दूसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। किसी-किसी के मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह पाचन-शक्ति को उत्तेजित करती है। कामेन्द्रिय में बहुत तेजी पैदा करती है। कफ को दस्त की राह निकाल देती है। चमड़े पर लगाने से छाला पटक देती है। इसको सिरके के साथ लगाने से दाद और सफेद दाग मिट जाते हैं, मगर बहुत जलन होती है और कभी-कभी घाव भी पड़ जाते हैं। कफ से पैदा हुई गठिया पर इसके लेप से लाभ होता है। इसकी तासीर बहुत गरम है, इसलिए इसकी गर्मी दूर करने के लिये इसे पानी और नमक के साथ भिगोकर दूध के साथ हरिरा बनाकर लेना चाहिये। ऐसा करने से इसकी गरमी शान्त हो जाती है। इसके सेवन से गर्भवती स्त्री का गर्भ गिर जाता है। इसलिये गर्भवती स्त्री को यह औषधि नहीं लेना चाहिये।

उपयोग--तिल्ली—घी गुवार के गूदा के ऊपर चित्रक की छाल का चूर्ण भुरभुरा कर खिलाने से तिल्ली मिटती है।

श्वेत कुष्ठ--चित्रक की छाल को दूध या जल के साथ पीसकर कोढ़ और दूसरे प्रकार के त्वचा के रोगों पर लेप करना चाहिये अथवा इन्हीं चीजों के साथ पीसकर, पुल्टिस बनाकर तब तक बंधा रखना चाहिये जब तक कि छाला उठ न जाय। छाला उठने पर उसको खोल लेना चाहिये। इस छाले के आराम होने पर श्वेत कुष्ठ के दाग मिट जाते हैं।

गठिया—इसी पुल्टिस को गठिया की सूजन पर १५-२० मिनट तक बंधा रखने से लाभ होता है।

संग्रहणी—इसके क्वाथ और लुग्दों से सिद्ध किये हुए घी का सेवन करने से संग्रहणी मिटती है।

बवासीर—इसकी जड़ की छाल के चूर्ण को दही या मट्ठे के साथ पीने से बवासीर में लाभ होता है।

पांडु रोग—इसके चूर्ण में आंवले के रस की ३ भावना देकर उसको गाय के घी के साथ रात में चाटने से पांडुरोग मिटता है।

नकसीर—इसके चूर्ण को शहद के साथ चाटने से नकसीर बन्द होती है।

मण्डल कुष्ठ—इसका लेप या मालिश करने से मण्डल कुष्ठ में लाभ होता है।

श्लीपद--चित्रक और देवदारू को गौ-मूत्र के साथ पीसकर लेप करने से श्लीपद में लाभ होता है।

मूढ़ गर्भ--इसकी जड़ को गर्भाशय के मुँह में रखने से अटका हुआ गर्भ या छोड़ गर्भाशय से बाहर निकल जाता है।

हानिकारक--यह फेफड़े और जिगर को नुकसान पहुँचाती है। तथा गर्भवती स्त्री के गर्भ को गिरा देती है।

दर्पनाशक—फेफड़े के लिये इसका दर्प नाशक मस्तगी और बबूल का गोंद है तथा जिगर के लिए इसका दर्प-नाशक गुलाब के फूल और सन्दल हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि तिल्ली के लिये मूंगा या करील की जड़ और दूसरी बातों के लिये मजीठ और नर कचूर है।

मात्रा—इसकी मात्रा मनुष्य का बलाबल देखकर १ माशे से ३ माशे तक दी जा सकती है। बच्चों के लिये इसकी मात्रा ४ रत्ती तक की है।

बनावटें—**चित्रकादि घृत**—चित्रक की जड़ ५ सेर लेकर उसको कूटकर एक हजार चौबीस तोला पानी में उबालना चाहिये। जब चौथाई पानी शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लेनी चाहिये। उस क्वाथ में ६४ तोला घी, १२८ तोला कांजी, २५६ तोला दही का मट्ठा और सूंठ, पीपर, चित्रक, चव्य, यवक्षार, सेंधा नमक, संचर नमक, समुद्र नमक, कांच नमक, जीरा, स्याह जीरा, हल्दी, दारहल्दी ये सब एक-एक रुपये भर और काली मिरच २ तोला इन सब चीजों को सिल पर पानी के साथ पीसकर, लुगदी बनाकर कढ़ाई में रख कर धीमी आंच से औटाना चाहिए। जब सब चीजें जल-कर घी मात्र शेष रह जाय, तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। इस घी को १ तोले से ४ तोले तक की मात्रा में दूध अथवा दूसरे अनुपान के साथ देने से तिल्ली और लीव्हर की वृद्धि, सूजन, उदर रोग, संग्रहणी, पुराना अतिसार, पेट का फूलना, पँसलियों का दर्द और पीनस रोग में बहुत लाभ होता है।

चित्रकादि चूर्ण—चित्रक की जड़, आंवला, हरड़, पीपर, रेवन्द चीनी और सेंधा नमक। इन सब चीजों को समान भाग लेकर, चूर्ण बनाकर, ४ माशे से ५ माशे तक की मात्रा में प्रतिदिन सोते समय गरम पानी के साथ लेने से पुराना सन्धिवात वायु के रोग और आँतों के रोग मिटते हैं।

मानसिक रोग नाशक चूर्ण—चित्रक की जड़, ब्राह्मी और वच का समान भाग चूर्ण बनाकर एक माशे से दो माशे तक की मात्रा में तीन बार देने से उन्माद, हिस्टीरिया, माली खोलिया इत्यादि रोगों में लाभ होता है। [जङ्गल की जड़ी-बूटी]

चित्र हरीतकी अवलेह—चित्रक की जड़ का क्वाथ, आँवले का रस, नीम गिलोय का रस और दशमूल का क्वाथ, ये चारों चीजें प्रत्येक दो-दो सौ तोला। हरड़ को पानी के साथ उबाल कर उसका निकला हुआ गूदा १२८ तोला और गुड़ २०० तोला। इन सब चीजों को मिलाकर मन्दाग्नि से पकाना चाहिये। जब अवलेह की तरह हो जाय तब नीचे उतार कर उसमें सोंठ, मिरच, पीपर, तज, तमाल पत्र, इलायची और नाग केशर का दो-दो तोला चूर्ण और १ तोला यव-क्षार डाल देना चाहिये। ठण्डा होने पर दूसरे दिन उसमें १६ तोला शहद भी मिला देना चाहिये।

इस औषधि को १ से लेकर २॥ तोले तक की मात्रा में लेने से श्वास, खांसी, कृमिरोग, मन्दाग्नि, पीनस, बवा-सीर, इत्यादि नष्ट होते हैं। अधिक समय तक इसका सेवन कराने से जीवन की विनिमय क्रिया में बहुत सुधार होता है।

षड् धरण योग—चित्रक की जड़, इन्द्रजौ, काली पहाड़ की जड़, कुटकी, अतीस और हरड़ ये सब चीजें समान भाग लेकर, चूर्ण बनाकर ३ माशे से ४ माशे तक की मात्रा में लेने से सब प्रकार के वात रोग मिटते हैं।

चितावला

नाम—पंजाब—चितावला। लेटिन—Senicio Densiflorus [सेनेसिओ डेंसीफ्लोरस]

वर्णन—यह वनस्पति मध्य और पूर्वी हिमालय तथा खासिया पहाड़ियों में पैदा होती है। यह एक झाड़ीनुमा पौधा है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते फोड़ों पर उनको मुलायम करने और पकाने के लिये लगाये जाते हैं।

चिनइसलित

नाम—बम्बई—चिनइसलित। तामिल—गुरुवल। लेटिन—Pisonia Morindaifolia [पाइसोनिया मोरिण्डे-फोलिया]

वर्णन—यह वनस्पति अण्डमान से पैदा होती है और भारतवर्ष में भी कहीं-कहीं बोई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते श्लीपद रोग की जलन के ऊपर प्रदाह को कम करने के उपयोग में लिये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चिनार

नाम–पंजाब–चिनार. चनार। काश्मीर–बुंज, बुइन, बोइन। फारसी–चिनार। उर्दू–चिनार। लेटिन–Platanus Orientalis [प्लेटेनस ओरिएण्टेलिस]

वर्णन––यह वनस्पति उत्तर पश्चिमी हिमालय में पैदा होती है। यह एक बड़ा जङ्गली वृक्ष होता है। इसकी छाल का रंग कुछ सफेद होता है। इसके पत्ते लम्बे की अपेक्षा चौड़े अधिक होते हैं। इसका फल लम्बगोल होता है।

गुण दोष और प्रभाव––यूनानी मत के अनुसार इसकी छाल कड़वी और खराब स्वाद वाली होती है। यह धवल रोग और जहरीले जानवरों के काटने पर लाभदायक है। इसका फल और पत्ते नेत्र रोगों पर बड़े लाभदायक हैं। ये दन्तरोग, घाव, गले की बीमारियों और गुर्दे के रोगों में भी मुफीद है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते नेत्र रोगों में लाभदायक हैं। इसकी छाल अतिसार में उपयोगी होती है। इसमें एलेंटाइन और एस्पेरेगिन पदार्थ पाये जाते हैं।

चिड़िया गंध

नाम––यूनानी–चिड़िया गंध।

वर्णन––यह एक वनस्पति की जड़ है। किसी कदर सालम मिश्री से मिलती-जुलती होती है। यह हिमालय में कुमाऊँ के आस-पास पैदा होती है। गीली हालत में इसके अन्दर इतनी तेजी होती है कि चबाने से जबान पर छाले पड़ जाते हैं। सूख जाने के बाद इसमें इतनी तेजी नहीं रहती है।

गुण दोष और प्रभाव––इस वस्तु के सेवन से मनुष्य की कामशक्ति में बहुत वृद्धि होती है। [ख० अ०]

चिरपोटी

नाम—संस्कृत—चिरपोटा, दीर्घपत्रा, ज्वर हारिणी, कुन्तला, परकोटी। हिन्दी––चिरपोटी, पनसोखा, पटकोना, धनशोखा। गुजराती––परपोटी। मराठी––चिरबूटी, चिरपोटा। लेटिन—Zanonia Indica [झेनोनिया इण्डिका]।

वर्णन—यह वनस्पति बरसात में बहुत पैदा होती है। यह एक लता है जो बहुधा पहाड़ी जमीन पर फैलती है। इसके पत्ते धतूरे के पत्तों की तरह और बहुत पतले होते हैं। इसके फूल पीले रंग के और फल चिकने और छोटे बेर की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते प्रदाह को कम करने वाले और फल शीतल तथा मृदु विरेचक होते हैं। दमा और वायु नलियों के प्रदाह में ये लाभदायक हैं। ज्वर और पित्त में भी ये फायदा पहुँचाते हैं।

यूनानी मत से इसका ताजा रस छिपकली के जहर को दूर करने वाला होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मृदु विरेचक, कृमि नाशक, जहर निवारक और दमा तथा खाँसी में उपयोगी है।

उपयोग––**आक्षेप**––इसके पत्ते को मक्खन और दूध में पीसकर लेप करने से आक्षेप की पीड़ा मिटती है।

फोड़े फुन्सी—इसके पत्तों को जल में औटाकर उस जल से स्नान कराने से फोड़े, फुन्सी, खुजली और जलन मिट जाती है।

विष के उपद्रव—इसके ताजा पत्तों का स्वरस पिलाने से ज्वर के उपद्रव दूर होते हैं।

चिरबोटी

नाम––संस्कृत––चिरपोटा, टंकारी, लक्ष्मीप्रिया। हिन्दी—चिरबोटी, तुलसी पति। बंगाल—तेकारी, बुन्तेपुरीय। गुजराती––पोपटो, परपोटी। मराठी––थानमोड़ी, चिरबोटी। लेटिन––Physelis Indica [फिसेलिस इण्डिका]।

वर्णन—इसका पौधा फुट भर ऊँचा होता है और यह वर्षा ऋतु में पैदा होता है। इसके ऊपर उत्तम, स्वादिष्ट, नारंगी रंग के और बेर के समान फल आते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पौष्टिक, मूत्रल और विरेचक होती है। कब्जियत के अन्दर इसका फल बहुत उपयोगी होता है। मकोय की यह उत्तम प्रतिनिधि है। सुजाक में इसका फल देने से लाभ होता है। इसके पंचांग को चावलों के पानी में पीसकर स्तनों पर लेप करने से स्तन कठोर होते हैं। दमे के अन्दर इसकी जड़ और सुहागी को शहद के साथ देने से कफ निकल जाता है और शान्ति मिलती है।

चिरायता

नाम—संस्कृत—चिरतिक्त, भूनिम्ब, चिरतिका, किराततिक्ति, ज्वरान्तक, नाड़ितिक्त, सन्निपातहा। हिन्दी—चिरायता। बंगाल—चिरेता। गुजराती—करियातू। मराठी—चिराइता, काले किराइत, फूल किराइत। फारसी—कसबूभरीराह, नैनिहाद। अरबी—कसबूभरीराह। लेटिन—Swertia Chirata [स्वेरटिया चिरेटा]।

वर्णन—यह छोटी जाति का क्षुप हिमालय के मध्य में नेपाल से काश्मीर तक और कुमाऊँ में होता है। यह नेपाल के मोरंग परगने में बहुत पैदा होता है। इसका वृक्ष ३ फुट तक लम्बा होता है। फूल आने के बाद सारे पौधों को निकाल कर सुखा लिया जाता है। इसकी डालियाँ कालापन लिये हुए पीले रंग की होती हैं। इसके फूल पीले और तुर्रेदार होते हैं। इसके फलियाँ लगती हैं जिनमें बहुत बीज रहते हैं। इसका पंचांग अत्यन्त कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चिरायता शीतल, दीपन, पाचन, कटु पौष्टिक, ज्वरघ्न, दाहनाशक, मृदुविरेचक और पार्यायिक ज्वरों को दूर करने वाला होता है। यह कृमिनाशक भी है तथा प्यास, कफ, पित्त, कुष्ठ, व्रण, दमा, श्वेतप्रदर, खाँसी सूजन, बवासीर और अरुचि को दूर करने वाला होता है। गर्भावस्था की मतली में यह बहुत लाभ पहुँचाता है। इससे आमाशय की रस क्रिया भी शुद्ध होती है और अन्न भली प्रकार पचता है।

जीर्ण विषम ज्वर के अन्दर जब कि विषम ज्वर का विष शरीर के अन्दर गुप्त रूप से रहता है और अपना स्वरूप ज्वर के रूप में प्रकट न करके अजीर्ण, अग्निमांद्य और हलकी हरारत के रूप में प्रगट करता रहता है। ऐसी स्थिति में इन लक्षणों को नष्ट करने के लिए चिरायता बहुत उपयोगी होता है। चिरायते का ज्वरघ्न धर्म अत्यन्त मृदु स्वभावी होता है। इसलिये ज्वर की चिकित्सा में केवल इसी वस्तु के ऊपर विश्वास नहीं रखा जा सकता। पार्यायिक ज्वरों को रोकने की शक्ति भी इसमें बहुत कम है। श्वास नलिका की सूजन और उसके संकोच विकास की वजह से पैदा हुए दमे में, चिरायता लाभदायक है। आमाशय की शिथिलता में यह एक उत्तम औषधि है। इससे जीभ साफ होती है और दस्त भी साफ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे के आखिर में गरम और खुश्क है। यह खून को साफ करता है। दिल और जिगर को ताकत देता है, पेशाब अधिक लाता है। जलोदर, सीने का दर्द, गुर्दे का दर्द, गर्भाशय का दर्द, गृध्रसी वात और खाँसी में यह मुफीद है। सर्दी की वजह से पैदा हुई जिगर और मेदे की सूजन को यह मिटाता है, बिगड़े हुए बुखार को यह लाभ पहुँचाता है। चर्म रोग सम्बन्धी बीमारियाँ जैसे खुश्क और तर खुजली, कुष्ठ, चमड़ी के नीचे खून जम जाने के से पड़े हुए दाग इसके लेप से मिट जाते हैं। अजमोद के साथ इसको देने से पागलपन में लाभ होता है। इसको पीसकर आँख में लगाने से आँख की ज्योति बढ़ती है। बूँद-बूँद पेशाब आने की बीमारी भी इसके सेवन से मिट जाती है। इसके सेवन से हाजमा दुरुस्त होकर भूख बढ़ जाती है। हलका दस्तावर होने की वजह से इससे कब्जियत में भी लाभ होता है। इसको गुलाब के तेल और सिरके के साथ पीस कर आग से जले हुए स्थान पर लगाने से फायदा होता है।

भारतवर्ष में यह एक सुप्रसिद्ध कटु पौष्टिक औषधि मानी जाती है। यह बिलकुल कड़वा और गन्ध रहित होता है। कटु पौष्टिक होते हुए भी यह इस जाति की अन्य औषधियों की तरह आँतों में संकोचन पैदा नहीं करता बल्कि दस्त में नियमितता ला देता है। यह पित्त को उत्तेजित कर देता है और पित्तस्राव की क्रिया को व्यवस्थित करता है। इसलिए गठिया से पीड़ित मनुष्यों को इसे पौष्टिक पदार्थ के रूप में देने से अच्छा लाभ होता है।

यह पौष्टिक, ज्वर नाशक और विरेचक है। ज्वर, शरीर की जलन, आँतों के कृमि और चर्म रोगों पर यह अच्छा लाभ पहुँचाता है। ज्वर के अन्दर यह ज्वरनिवारक पदार्थ के रूप में कम मगर पौष्टिक वस्तु के रूप में अधिक उपयोगी है।

फ्लेमिन के मतानुसार चिरायता में सभी प्रकार के अग्निवर्धक, पौष्टिक, ज्वरघ्न और अतिसार नाशक गुण मौजूद रहते हैं। यही गुण जेन्शन रूट में भी बतलाये गये हैं। लेकिन यूरोप से जो जेन्शन यहाँ आता है उसकी अपेक्षा चिरायता में ये गुण अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसमें पाये जाने वाले कटु तत्व १·४२ से १·५२ प्र० श० तक रहते हैं। यह मात्रा जेन्शन में पाये जाने वाले कटु तत्व से भी अधिक है। चिरायता अमेरिका और इङ्गलैंड के फरमाकोपिया में समस्त माना गया है।

रासायनिक विश्लेषण—सन्याल और घोष के मतानुसार चिरायता एक प्रकार की कटु वनस्पति है। यह खास करके अन्न प्रणाली के ऊपर अपना विशेष प्रभाव बतलाती है। मुँह में जाकर यह स्वाद के स्नायुओं को उत्तेजित करती है। पेट में पहुँचकर यह उदर ग्रन्थियों को और पाकस्थली के रस प्रवाह को उत्तेजित करती है जिससे क्षुधा तेज होती है और पाचन शक्ति सुधर जाती है। यह एक अग्नि प्रवर्धक और पौष्टिक पदार्थ है, बड़ी आंत के ऊपर भी यह अपना प्रभाव दिखलाती है। यह ऐसे मलेरिया ज्वरों में अधिक उत्तम पाई गई है जिनमें खास लक्षण अग्निमांद्य का पाया जाता है।

डायमाक के मतानुसार पश्चिमी भारत में वायु नलियों के प्रदाह की वजह से पैदा हुई दमे की बीमारी में इसका सफलता के साथ उपयोग किया जाता है।

महर्षि चरक के मतानुसार यह मुंह से होने वाले रक्तस्राव में तथा जलोदर में लाभदायक है।

हारीत के मतानुसार चिरायते को पीसकर, शहद के साथ मिलाकर गर्भावस्था में होने वाली उल्टियों में देने से लाभ होता है।

दत्त के मतानुसार चिरायता, नीम गिलोय, त्रिफला और आम्बी हलदी का काढ़ा बनाकर देने से पित्तज्वर, आँतों के कृमि, शरीर की जलन और चर्म रोगों में लाभ होता है।

बनावटें—सुदर्शन चूर्ण— त्रिफला, हलदी, दारू हलदी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, चित्रक, पीपला मूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, नीम गिलोय, धनियाँ, अडूसा, कुटकी, पित्त पापड़ा, मोथा, त्रायमाण, नेत्रबाला, नीम की छाल, पोकर मूल, मुलेठी, जवासा, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहंजने के बीज, फिटकरी, बच, तज, पद्माक, खस, चन्दन, अतीस, बरियारा, शालपर्णी, बायबिडंग, तगर, तेजपाल, देवदारू, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, काकड़ा सिंगी, लौंग, वंशलोचन, कमलगट्टा, काकोली, पत्रज, जावित्री, तालीस पत्र। इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जितना इन सबका वजन हो उससे आधा चिरायता इसमें मिलाकर बारीक चूर्ण कर लें। यही आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध महा सुदर्शन चूर्ण है।

इस चूर्ण को दो माशे से ३ माशे तक की मात्रा में लेने से सब प्रकार के ज्वर, श्वास, खांसी, पांडु रोग, हृदय रोग, कामला और पीठ, कमर तथा घुटनों का दर्द नष्ट होता है।

षोडशांगचूर्ण—चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, गिलोय, हरड़, मोथा, धनिया, जवासा, चिरायते का फल, कटेरी, काकड़ासिंगी, सोंठ, पित्त पापड़ा, मालकांगनो, परवल के पत्ते, पीपर और कपूर। इन सब औषधियों को समान भाग लेकर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये। यह षोडशांग चूर्ण सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करने में सिद्ध हस्त है।

चिरायता मीठा

नाम—हिन्दी—चिरायता पहाड़ी। मराठी—पहाड़ी चिरेता। लेटिन—Swertia Augustifolia [स्वेर्टिया अगस्टिफोलिया।]

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय के अन्दर चिनाव से भूटान तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह चिरायते के बदले में उपयोग में लिया जाता है।

इसकी एक जाति और है जिसे लेटिन में "स्वेरटिया परप्यूरेसेंस" [Swertia Purpurascens] कहते हैं यह भी चिरायते के बदले काम में आती है।

इसकी एक तीसरी जाति जिसको लेटिन में "स्वेरटिया एलेटा" [Swertia Alata] और पंजाब में चिरेता, हरुन तूतिया और काश्मीर में बुई कहते हैं, और होती है, वह भी पौष्टिक और ज्वर निवारक है।

चिरायता बड़ा

नाम—हिन्दी—बड़ा चिरायता। लेटिन—Exacum Bicolor [एक्झेकम बायकलर]।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—यह छोटा पौधा हिन्दुस्तान के दक्षिण में और कोंकण में बरसात के दिनों में पैदा होता है। इसके फूल सफेद और सुन्दर रहते हैं इसकी फली बादामी, मुलायम और चमकीली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और अग्निप्रवर्धक होती है। इसे जेनशियन करू के बदले में उपयोग में लेते हैं।

चिन्नी

नाम—दक्षिण—चिन्नी। तामिल—सिन्नी। तेलगू—चिन्नी। लेटिन—Acalypha Fruticosa [एकेलिफा फ्रूटिकोसा]

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसके पत्ते गोल, छोटे और हरे रंग के होते हैं। यह वनस्पति दक्षिण तथा सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—एन्सली के मतानुसार इसके पत्ते धातु परिवर्तक, दुर्बलता को दूर करने वाले और जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले होते हैं। इनका शीत निर्यास आधे चाय के चम्मच की मात्रा में दिन में दो बार दिया जाता है।

चिरवल

नाम—हिन्दी—चिरवल। बंगाल—सुरगुली। मराठी—चिरवल। तामिल—चायवेर, इम्बुरेल, इम्बरल। तेलगू—चिरिवेर। लेटिन—Oldenlandia Umbellata [ओलडेनलेंडिया अम्बेलेटा]।

वर्णन—यह वनस्पति वर्षा ऋतु में पैदा होती है। इसका पौधा छोटा और वर्षजीवी होता है। इसके पत्ते छोटे और फली लम्ब गोल रहती है। इसकी जड़ें लम्बी, कोमल और नारंगी के रंग की होती हैं। इसकी जड़ों से रंग भी तैयार किया जाता है। औषधि में इसके पत्ते और जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते और इसकी जड़ें कफ निस्सारक होती हैं। वायु नलियों के प्रदाह, जुकाम, दमा और क्षय में ये लाभदायक हैं। इसकी जड़ का काढ़ा जो कि १० गुने जल में तैयार किया जाता है, आधे से एक औंस की मात्रा में देने से वायु नलियों के प्रदाह और दमे के रोग में बहुत लाभ होता है।

वाट के मतानुसार इसकी जड़ सर्पदंश के उपचार में विशेष रूप से उपयोगी मानी जाती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह सर्पदंश में निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कफ निस्सारक और ज्वरनाशक है। इसे सर्पदंश के उपचार में काम में लेते हैं। इसमें एलिक झेरिन नामक पदार्थ पाया जाता है।

चिरायलू

नाम—हिन्दी—चिरायलू। पंजाब—सारंगर, शिनवाला, सिमरंग। गढ़वाल—चिमुरा, सिमरिस। काश्मीर—गागर। कुमाऊँ—चिमुल। नेपाल—चराइला। लेटिन—Rhododendron Campanulatum—रोडोडेण्ड्रोन केम्पेन्यूलेटम।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में कश्मीर से भूटान तक पैदा होती है। यह हमेशा हरी रहने वाली झाड़ी है। इसकी छाल चिकनी और हलके बादामी रंग की होती है। इसके फूल सफेद और भीतर से हलके गुलाबी और बैंगनी रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पुराने सन्धिवात, उपदंश और गृध्रसी रोग में लाभदायक है। इसकी सूखी डालियाँ क्षय रोग और जीर्ण ज्वर में उपयोगी हैं। इसके पत्तों को तम्बाखू के साथ मिलाकर सूँघने से आधाशीशी दूर होती है।

चिरियारी

नाम—संस्कृत—झिंज हरिता, झिंज हरदी, झिरपट, कटापली। हिन्दी—चिरयारी, बिरियारा। बम्बई—निचरदी। बंगाल—बनोकरा। गुजराती—झीपटो। लेटिन—Triumfetta Rotundifolia ट्रिम्फेटा रोटंडिफोलिया।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—इस औषधि की दो जातियाँ होती हैं। एक को गुजराती में झीपटा और दूसरी को झीपटी कहते हैं। झीपटी का लेटिन नाम—Triumfetta Rhomboidea (ट्रिम्फेटा रोमबोडिया) है। यह वनस्पति विशेषकर बरसात में पैदा होती है। इसके पौधे १॥ से ३॥ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते आधे से डेढ़ इञ्च तब लम्बे और इतने ही चौड़े होते हैं। इन पत्तों पर बारीक रोएँ होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। ये गुच्छों में लगते हैं। इसके फल चने के दाने के बराबर पर उनसे कुछ छोटे होते हैं। इन फलों पर बाँकी अनी वाले काँटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी और कसैली रहती है। यह पौष्टिक, रक्तस्राव को रोकनेवाली, दुग्ध वर्धक, कामोद्दीपक और शीतल होती है। इसके पत्ते, फूल और फल स्निग्ध, संकोचक और लुआबदार होते हैं। ये सुजाक में उपयोगी हैं।

इस औषधि के अन्दर जखम से बहते हुए खून को बन्द करके उसको अच्छा कर देने की अद्भुत शक्ति है। झीपटे के पत्तों को चबाकर या पीसकर जखम पर लगा देने से जखम से बहता हुआ खून तुरन्त बन्द हो जाता है। तीर, तलवार, कुल्हाड़ी, हँसिया, चाकू इत्यादि किसी भी शस्त्र से लगे हुए घाव का खून बन्द करने के लिए यह औषधि बहुत प्राचीन समय से उपयोग में ली जाती है। इसके लगाने से घाव बिना पके हुए भर जाता है।

बाह्य उपचार की तरह आंतरिक उपचार में भी यह औषधि बहुत प्रभावशाली है। इसकी ६ माशे जड़ को पानी में पीसकर शक्कर में मिलाकर दिन में दो बार पीने से बवासीर में से गिरने वाला खून, फेफड़े के जरिये होने वाला रक्त स्राव, और खूनी अतिसार तत्काल बन्द हो जाता है।

इसकी जड़ का काढ़ा प्रसूति के समय पीने से बच्चा आसानी से पैदा हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति लुआबदार और शान्तिदायक होती है। यह प्रसव में भी लाभदायक है।

चिरोंजी

नाम—संस्कृत—प्रियाल, चार, खरस्कन्द, बहुलवल्कल, स्नेहबीज इत्यादि। हिन्दी—चिरोंजी। बंगाल—चिरोंजी, पियाल। मराठी—चारोली। गुजराती—चारोली। तेलगू—सारूपपू। तामिल—काटगरा। पंजाब—चिरोली। फारसी—बुफले खाजा। अरबी—हब्बुस्समाना। लेटिन—Buchanania Latifolia [बुचेनेनिया लेटिफोलिया]।

वर्णन—चिरोंजी के वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में छिट-पुट होते हैं। इसके पत्ते छोटे-छोटे नोंकदार और खरदरे होते हैं इसके फल करोंदे के समान नीले रंग के होते हैं। उनमें से जो मगज निकलती है उसे चिरोंजी कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चिरोंजी मीठी, भारी, स्निग्ध, मल को रोकने वाली, शीतल, धातुवर्धक, कफ कारक, कामोद्दीपक, वात नाशक तथा पित्त, दाह, ज्वर, तृषा, क्षतरोग, रक्तविकार और क्षतक्षय में लाभ पहुँचाने वाली होती है। चिरोंजी की मगज मधुर, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, शीतल, मलस्तम्भक, हृदय को हितकारी, शुक्रजनक और वात पित्त नाशक है। चिरोंजी का तेल मधुर, भारी, किंचित् गरम, कफ कारक और वात पित्त को दूर करने वाला होता है। चिरोंजी की जड़ कसैली, कफ पित्त नाशक और रुधिर विकार को दूर करने वाली है। चिरोंजी में मांस वर्द्धक द्रव्य ३० प्रतिशत, मैदा २॥ प्रतिशत और तेल ५८॥ प्रतिशत होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर है। इसका फल दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। यह शरीर को मोटा करती है। इसको पीसकर मुँह पर मलने से शरीर का सौन्दर्य बढ़ता है। इसके सेवन से मनुष्य की कामशक्ति और वीर्य में बहुत वृद्धि होती है। तर खुजली के अन्दर आध पाव चिरोंजी को, आध पाव गुलाब जल में खूब पीसकर उसमें १॥ तोला सुहागा मिला कर लगाने से ३ दिन में बहुत लाभ होता है। इसका फल पित्त के उपद्रव और खून के उपद्रव को मिटाता है, सिर दर्द को दूर करता है। इसे अधिक खाने से पेट फूल जाता है।

उपयोग—**भिलामें की सूजन**—चिरोंजी को तिल और भैंस के दूध के साथ पीस कर खाने से भिलामें की सूजन मिटती है।

मकड़ी का विष—चिरोंजी को तेल के साथ पीसकर मालिश करने से मकड़ी का विष दूर होता है।

सर्दी—चिरोंजी के खाने से कलेजे, फेफड़े और मस्तक की सर्दी मिटती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

खुजली—चिरौंजी को गुलाब जल में पीस कर मालिश करने से चेहरे पर होने वाली फुन्सियाँ और दूसरी खुजली मिट जाती है।

पित्ती—एक छटाँक भर चिरौंजी खा जाने से शरीर में उछलती हुई पित्ती शान्त हो जाती है। एक अनुभवी का कथन है कि अगर पित्ती किसी दवा से न जाय तो इससे जरूर चली जाती है।

चिल्ला (सप्तरंगी)

नाम—संस्कृत—सप्तचक्रा, सप्तरंगा, वक्रमुला, स्वर्णमुला, भूरिगन्ध, भूतगन्धा। हिन्दी—चिल्ला, चिडार, बैरि। मराठी—सप्तकवि, कुलकुलटा, कादलाशिंगी। तामिल—कदलसिंगी। तेलगू—कादाप्रगा। बम्बई—बोकरा, मोरी। लेटिन—Casearia Esculenta [केसेरिया एस्क्यूलेन्टा]।

वर्णन—यह वनस्पति कोंकण, दक्षिण हिन्दुस्तान के पहाड़ और लंका में पैदा होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष है। इसकी छाल पीली और सफेद रंग की होती है। इसका फल नारंगी रंग का, डेढ़ इञ्च लंबा, अण्डाकृति और खाने के लायक होता है। इस फल में बहुत से बीज रहते हैं। इन बीजों पर एक प्रकार का लाल रंग का आवरण रहता है। इसकी जड़ की बाह्य त्वचा सुनहरी रंग की होती है। इसकी जड़ का स्वाद कड़वा और तूरा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, कसैली, मृदुविरेचक, वायुनाशक और सुगन्धित होती है। यह ज्वर और तृषा को शमन करती है। पसीना लाती है। यकृत के लिये यह एक उत्तेजक पदार्थ है। इसके लेने से बिना किसी तकलीफ के १–२ पीले रंग के दस्त हो जाते हैं। इसकी मात्रा अधिक हो जाने पर भी किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती। इससे यकृत की विनिमय क्रिया सुधरती हैं, भूख लगती है और पेट में वायु इकट्ठी नहीं होती है।

यह वस्तु विशेषकर यकृत के रोग में उपयोग में ली जाती है। यकृत की वृद्धि और बवासीर के रोग में यह बहुत उपयोगी है। इससे यकृत की वृद्धि और उसकी जड़ता दूर होकर वह पूर्व स्थिति में आ जाता है। अर्श रोग के अन्दर इसकी जड़ को ठण्डे पानी में पीसकर लगाने से और इसके पत्तों का रस घी के साथ खिलाने से या इसकी जड़ का चूर्ण ६ माशे की मात्रा में मक्खन के साथ देने से बहुत अच्छा असर होता है।

यकृत की खराबी से पैदा हुए मधुमेह रोग पर इस वनस्पति की विलक्षण क्रिया होती है। इससे पेशाब के साथ शक्कर जाना बहुत जल्दी कम हो जाता है। पेशाब की तादाद भी घट जाती है। पित्त युक्त पतले दस्त होते हैं, पेट का फूलना बन्द हो जाता है, पसीना आना बन्द हो जाता है, अगर पाँवों में सूजन आ गई हो तो वह भी मिट जाती है और शक्ति बढ़ती है, रोगी का रंग सुधर जाता है लेकिन यह ख्याल रखना चाहिये कि सब प्रकार के मधुमेह रोग पर यह औषधि उपयोगी नहीं पड़ती। यकृत की खराबी से पैदा हुए मधुमेह रोग में इसके साथ किसी दूसरी औषधि को देने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह स्वतः बहुत तेजस्वी औषधि है। फिर भी इसके साथ अगर जामुन की गुठली और लहसन दिया जाय तो विशेष लाभ होता है। यह औषधि एक साथ बहुत दिन तक देने से पेट में जलन होती है और पेशाब में फिर शक्कर आने लग जाती है। इसलिये इसको आठ दिन देकर फिर आठ दिन बन्द कर देना चाहिये। लगातार नहीं लेना चाहिये। इसकी क्रिया बड़ी तेजी से और बड़ी स्पष्ट होती है। इसलिये इसका प्रभाव स्थायी रहता है या नहीं, यह संदिग्ध है।

मात्रा—इसके पत्तों के स्वरस की मात्रा ६ माशे से एक तोला तक और क्वाथ के रूप में एक तोला जड़ के चूर्ण का क्वाथ बनाकर लेना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि यकृत की क्रिया को उत्तेजना देती है। यह विरेचक भी है।

चिला (चिलिराघ)

नाम—गढ़वाल—चिलिराघ, चिला, चिल्दी, वंग, चिलटो, रंसुला, तेलीगर्घा। अलमोड़ा—गयासोल। भूटान—दमसिघ। काश्मीर—बादर, बुदार। कुमाऊँ—राघ, रइसला, रसाल। नेपाल—गोगरियासुला। लेटिन—Abies Webbiana [एबिस वेबियाना]।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—यह हमेशा हरा रहने वाला ऊँचा और बड़ा वृक्ष हिमालय में नेपाल के आस-पास पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके सूखे पत्ते उत्तरी हिन्दुस्तान और बंगाल में तालीस पत्र के नाम से मशहूर हैं। मगर असली तालीसपत्र दूसरी वस्तु है, जिसका वर्णन आगे दिया जायगा। यह वनस्पति [चिलिराघ] पेट का आफरा उतारने वाली, कफ निस्सारक, अग्नि वर्धक, पौष्टिक और संकोचक होती है। क्षय रोग, दमा, वायु नलियों के प्रदाह और मूत्राशय के रोग में इसके पीसे हुए पत्ते अडूसे के रस और शहद के साथ दिये जाते हैं।

इसके ताजा पत्तों का रस ज्वर निवारक और बच्चों के दाँत आने के समय की पीड़ा को दूर करने वाला माना जाता है, इसका शीत निर्यास गले के रोग और स्वरभंग में भी उपयोगी माना जाता है।

चिलौनी

नाम—हिन्दी—चिलौनी, मकरिवा, मकरिया, मकूसल। नेपाल—अवलि, चिलौनी। आसाम—चिलौनी, मकरिया, मकसूल। लेटिन—Schima Wallichii [स्किमा वेलिची]।

वर्णन—यह वनस्पति नेपाल, सिक्किम, खासिया पहाड़ियाँ, मनिपुर और चिटगाँव में पैदा होती है। यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके पत्ते लम्बगोल, फूल सफेद और सुगन्धित तथा फल लम्बगोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह चर्म दाहक और कृमि नाशक होती है, इसमें सेपानिन पाया जाता है।

चिलकामकोय

नाम—यूनानी—चिलकामकोय।

वर्णन—यह एक प्रकार की रोइदगी होती है। इसके पत्ते गोल, पतले, छोटे, नाजुक और तोते की जबान की तरह होते हैं। इसकी शाखाएँ पतली और फूल कालापन लिये लाल रंग के होते हैं। इसकी फली उड़द की फली की तरह और बीज खुरासानी अजवायन के दानों की तरह होते हैं। इन चीजों का स्वाद कड़वा और तेज होता है। इसके पत्तों की तरकारी बनाई जाती है। इसके फूलों का रंग तोते की नाक की तरह होता है, इसीलिये इसका नाम चिलकामकोय रखा गया है।

इसकी एक जाति और होती है जिसका पौधा आधे गज तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते नई के पत्तों की तरह होते हैं। इनका स्वाद मीठा होता है। इसका फूल छोटा और पीला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसके पत्ते शीतल तथा बीज गरम और खुश्क होते हैं। इसके पत्तों का रस प्रमेह में लाभ पहुँचाता है। इसकी तरकारी कफ को नष्ट करती है। यह औषधि पाचन-शक्ति को तीव्र करके भूख को बढ़ाती है। आमाशय को बलवान बनाती है। जो मधुमेह मेदे की खराबी से पैदा होता है, उसमें यह लाभ पहुँचाती है। आमाशय की खराबी को यह दूर करती है। इसकी मात्रा आधा तोले तक की है।

चिनाई घास

नाम—हिन्दी—चिनाई घास। लंका—अगरअगर। तेलगू—समुद्रउपाची। अंग्रेजी—Cylon Moss [सीलोन मास]। लेटिन—Gracilaria Lichenoides [ग्रेसीलेरिया लायचेनोइडेस]।

वर्णन—यह वनस्पति लंका और कन्याकुमारी के खारे तालावों में पैदा होती है। यह एक शैवाल जाति की वनस्पति है। इसके तन्तु पीले रंग के, सीने के धागे के समान मोटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—चिनाई घास स्नेहन, पौष्टिक और पचने में बहुत हलकी होती है। इसका रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें एक प्रकार का पौष्टिक कफ नाशक सत्व ५४ प्रतिशत पाया जाता है। इसमें ७ प्रतिशत क्षार का अंश भी रहता है। सिंहल द्वीप और हिन्दुस्तान के हिस्से में इस वनस्पति का बहुत प्राचीन काल से उपयोग होता आ रहा है। इसके चूर्ण की खीर बनाकर संग्रहणी, आंव इत्यादि आंतों के रोग और फेफड़ों के रोगों में लाभदायक पदार्थ की तरह दी जाती है। क्षय रोग में भी यह वनस्पति लाभदायक मानी जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चिरबिल्व (चरेल)

नाम—संस्कृत—चिरबिल्व । हिन्दी—चिरविल्व, चिरमिल, चरेल, पापरी, करंजी । मराठी—बावाड़ । काठिया-वाड़—चरेल। गुजराती—कणभो । तेलगू—नवीली । तामिल—ग्रयम् । लेटिन—Holoptelea Integrifolia [होलोप्टेलिया इन्टेग्रिफोलिया] ।

वर्णन—यह एक बड़ा वृक्ष होता है जिसकी ऊँचाई २० हाथ से २५ हाथ तक होती है । इसका वृक्ष करंज के वृक्ष की तरह दिखाई देता है । इसकी छाल का रङ्ग खाकी, डालें झुकी हुई और गुच्छेदार, पत्ते उग्र दुर्गन्धि युक्त, फूल छोटे पीले, तीव्रगन्धयुक्त और फल फीके पीले रङ्ग के चपटे होते हैं । हर एक फल में एक-एक बीज रहता है । इसकी छाल से बहुत सुन्दर रेशे निकलते हैं जिनकी रस्सी बनाई जाती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति शोथनाशक और सन्धिवात में लाभ पहुँचाती है । इसकी जड़ की छाल को औटाकर सन्धियों की सूजन पर बांधने से लाभ होता है । इसके पत्तों की लुग्दी से तेल को सिद्ध कर उस तेल को व्रणों पर लगाने से व्रण भर जाते हैं । इसकी डालियों के रस को दाद पर लगाने से दाद नष्ट हो जाता है ।

चीड़*

नाम—संस्कृत—भद्रदारु, धूपवृक्षका, मनोजना, मरीचपत्रिका, पीतदारु, पीतद्रु, पूतिकष्ट, सरला, सुरभि-दारुका । हिन्दी—चीड़, साला, सारल, सरल । अलमोड़ा—साला । बंगाल—सरल गच्छ्वा, सरल कष्ठा । गुजराती—सरल देवदार । मराठी—सरल देवदार । गढ़वाल—साला, कोलेन, कुलहेन । कुमाऊँ—चीड़ । काश्मीर—चीड़, साला, सल्ल । पंजाब—चीड़, गुला, नखतार, नश्तार । संयुक्तप्रांत—चीड़ कोलन । नेपाल—धूपसलसी । लेटिन—Pinus Longi-folia [पायनस लांगिफोलिया] ।

वर्णन—चीड़ का वृक्ष बहुत बड़ा होता है। यह हिमालय प्रदेश में सिंध से भूटान तक डेढ़ हजार फीट से साढ़े सात हजार फीट की ऊँचाई तक और अफगानिस्तान में पैदा होता है । इसके पत्ते गुच्छों में लगते हैं, इसकी डालियाँ हलके पीले रङ्ग की होती हैं, इसकी छाल में दरारें पड़ी हुई रहती हैं । इसके पत्ते चमकीले हरे रङ्ग के और फल नोकदार होते हैं । इस फल में बीज रहते हैं । इसकी छाल में किसी औज़ार से जखम कर देने से एक प्रकार का चिकना गोंद निकलता है जिसको संस्कृत में श्रीवास और हिन्दी में चीड़ का गोंद या गन्धा बिरोजा कहते हैं । इस गन्धे बिरोजे को सूखी हालत में भभके में रख कर तेल उड़ाते हैं । इस तेल को खन्नू तेल या सत बिरोजा कहते हैं । इस तेल में तारपीन के तेल की तरह खुशबू आती है ।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह वृक्ष मीठा, तीक्ष्ण, कड़वा, गरम, स्निग्ध और आंतों के कीडों को नष्ट करनेवाला होता है । आँख, कान, गला, रक्त और चर्म की बीमारियों में भी यह लाभदायक है । इसका गोंद कड़वा, कसैला, गरम और स्निग्ध होता है । यह पेट के अफरे को दूर करता है । कामोद्दीपक होता है । मूत्रल, कृमिनाशक और वेदनाशून्यता लाने के गुण भी इसमें विद्यमान हैं । योनि और गर्भाशय की तकलीफों में भी यह लाभदायक है । मन्दाग्नि, व्रण, खुजली, प्रदाह और सिर दर्द को यह दूर करता है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका गोंद तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है । पुरानी खाँसी, दमा, हिस्टी-रिया, मृगी, बवासीर और जिगर तथा तिल्ली की बीमारियों में यह मुफीद है । गुलाब के तेल में घोट कर इसको कान में टपकाने से सिर दर्द और कफ से पैदा हुआ कान का दर्द मिट जाता है । फोड़े, नासूर और जख्मों पर इसका लेप करने से बहुत लाभ होता है । पट्ठों के फालिज या लकवा में भी यह बहुत फायदा करता है । इसकी लकड़ी वायु और कफ को बिखेरती है । गुर्दा और मसाने की पथरी को तोड़ती है, हिचकी में भी लाभ पहुँचाती है, कण्ठमाला पर इसका लेप करने से लाभ होता है । मुँह के छालों पर भी यह मुफीद है ।

---

* नोट—इस ग्रन्थ के तीसरे भाग में गन्धा बिरोजा के प्रकरण में भी इसका संक्षिप्त वर्णन दिया गया है । यहाँ पर इसका विस्तृत वर्णन दिया जाता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

डाक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार इसका गोंद अंतः प्रयोग और बाह्य प्रयोग में लिए जाने पर उत्तेजक औषधि का काम करता है। अंतः प्रयोग में लिये जाने पर यह पाकाशय और मूत्राशय की श्लैष्मिक झिल्लियों पर अपना असर बतलाता है। सुजाक की यह एक उत्तम दवा है। हमने इस बीमारी के कई बीमारों पर इस औषधि को आजमाया और जहाँ कोपेवा, कबाब चीनी, टरपेन्टाइन और गुर्जन के प्रयोग भी सफल नहीं हुए, वहां भी इससे लाभ हुआ। इसकी खुराक एक से लगा कर तीन ड्राम तक की है। इसे चौबीस घण्टे में ४ बार देना चाहिये।

डाक्टर वामन देसाई के मतानुसार गन्धाविरोजा के अन्दर टरपेन्टाइन के सब धर्म मौजूद रहते हैं। गन्धाविरोजा खाने के पश्चात् मुँह में पानी छूटता है, पेट में गर्मी और ठण्डाई होने के समान अनुभव होता है, डकार आती है, वायु सरती है, नाड़ी भरपूर चलने लगती है, श्वासोच्छ्वास का प्रमाण बढ़ता है, शरीर में गर्मी पैदा होती है, पेशाब की मात्रा बढ़ती है और आमाशय व मज्जा तन्तुओं में उत्तेजना पैदा होती है। इसको अधिक मात्रा में लेने से वमन और दस्त होते हैं, नाड़ी क्षीण होती है, जी घबराता है, शरीर ठण्डा पड़ जाता है, पेशाब में जलन होकर खून गिरने लग जाता है और सारे शरीर में शिथिलता पैदा हो जाती है। इसलिए इसको अथवा इसके तेल को थोड़ी मात्रा में देना चाहिए। इसकी मात्रा साधारणतया १० रत्ती से १५ रत्ती तक की है। इसको मुलहठी के चूर्ण और शहद के साथ देने से विशेष अच्छा रहता है।

गन्धाविरोजा यह एक उत्तम वायुनाशक पदार्थ है। यह आँतों को उत्तेजित करके दस्त लाता है जिससे आँतों के अन्दर सड़े हुए पदार्थ बाहर निकल जाते हैं और उनसे होने वाला उदर शूल तथा पेट का फूलना बन्द हो जाता है। इसके सेवन से दोनों ही द्वार से वायु सरता है और आँतों के विजातीय द्रव्य नष्ट हो जाते हैं। इसके तेल को पेट पर मालिश करने से और इसकी वस्ति [एनेमा] देने से बहुत लाभ होता है। पित्त से पैदा हुई पथरी में भी यह औषधि बहुत लाभ पहुँचाती है। इसके तेल को थोड़ी सी शक्कर और पानी के साथ मिलाकर देने से आँतों के कृमि नष्ट होते हैं और आँतों से बहने वाला रक्त भी बन्द हो जाता है, रक्तातिसार और आँत्र ज्वर में रक्त स्राव बन्द करने के लिए यह एक उत्तम औषधि है। बवासीर में इसकी गोलियाँ बनाकर देने से गुदा के ऊपर प्रत्यक्ष क्रिया होकर रक्त स्राव बन्द हो जाता है। रक्तयुक्त आँव, आँव और आंत्र ज्वर में इसको प्रति घण्टा बीस-बीस बूँद की मात्रा में देना चाहिये।

गन्धाविरोजा रक्त के अन्दर बहुत जल्दी मिल जाता है और वहाँ से श्वासोच्छ्वास की श्लेष्मत्वचा के द्वारा और स्तन तथा मूत्रपिण्ड के द्वारा बाहर निकलता है। त्वचा के द्वारा बाहर निकलते समय यह त्वचा की विनिमय क्रिया को सुधारता है और पसीना लाता है।

जीर्ण कफ रोगों में और कफ से पैदा हुए क्षय में यह वस्तु बहुत उपयोगी है। इसके सेवन से फेफड़े और श्वास नलिका की रक्ताभिसरण क्रिया सुधरती है, कफ कम होता है, कफ की दुर्गन्धि मिटती है और वह जल्दी गिरता है। कफक्षय में कभी-कभी फुफ्फुस के अन्दर की रक्तवाहिनी फटकर रक्त बहने लगता है और वह कफ के साथ गिरने लगता है। ऐसी हालत में चीड़ का तेल खिलाने से, सुँघाने से और उसकी मालिश करने से लाभ होता है। फुफ्फुस और श्वास नलिका की सूजन में और दमें में चीड़ का तेल छाती पर मालिश किया जाता है।

मूत्र पिण्ड से लेकर मूत्र द्वार तक के सारे मार्ग का शोधन करने में भी यह वस्तु बहुत प्रभावशाली है। इसके सेवन से इन भागों की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ती है, विनिमय क्रिया में सुधार होता है और श्लेष्मा की कमी होती है। वस्ती की सूजन और पुराने सुजाक में इसका बहुत उपयोग होता है। खन्नू तेल को एक से लेकर तीन बूंद की मात्रा में देने से पुराने सुजाक में लाभ होता है।

त्वचा के मार्ग से बाहर निकलते समय यह वस्तु त्वचा के अन्दर की सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का संकोचन करती है। जिससे रक्तपित्त, दाद, खुजली, इत्यादि रोगों में इसका उपयोग किया जाता है।

यकृत की खराबी से पैदा हुए जलोदर में पेशाब बढ़ाने के लिए चीड़ का तेल लाभदायक होता है मगर ऐसे रोगों में इसका उपयोग करने के पहिले पेशाब की जाँच कर इस बात की पुख्ता जाँच कर लेना चाहिये कि रोगी का मूत्रपिण्ड बिलकुल निरोग हो। अगर मूत्रपिण्ड में खराबी हो तो इसका उपयोग नहीं करना चाहिये, नहीं तो बहुत नुकसान होता है।

ताजे घावों पर चीड़ तेल को लगाने से रक्तस्राव बन्द होता है और घाव में पीब पैदा नहीं होता। इसका व्रणरोपक धर्म बहुत उत्तम है। सड़ने वाले व्रणों पर इसकी पत्ती लगाने से वे जल्दी भर जाते हैं। इसको मात्रा १२ रत्ती से २० रत्ती तक की है और इसके दर्प को नाश करने के लिए कतीरा, बबूल का गोंद और मीठी बदाम का तेल मुफीद है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चीनी मिट्टी

नाम—हिन्दी, यूनानी—चीनी मिट्टी।

वर्णन—यह एक मशहूर मिट्टी है जो सफेद रंग की होती है और जिसके बर्तन बनाये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—चीनी मिट्टी को बारीक पीसकर कपड़े में छानकर मंजन करने से दांत चमकदार होते हैं। इसका चूर्ण ताजा जख्मों के खून को बन्द कर देता है।

नासूर के अन्दर भी यह औषधि बहुत लाभदायक साबित हुई है। इसके लिए इसको उपयोग करने का तरीका इस प्रकार है। चीनी मिट्टी को पीसकर, कपड़े में छानकर, नीम के पत्तों के रस में तर करके सुखावें। इस प्रकार उसको तीन बार तर करके सुखावें, फिर बारीक पीसकर और कपड़े में छान कर रख लें। इस औषधि को नासूर में भरने से नासूर बहुत जल्दी आराम होता है।

हकीम अली का कहना है कि नासूर के ऊपर यह दवा निहायत और अजीब फायदेमन्द है। दस बार के प्रयोग में एक बार भी ऐसा नहीं देखा गया कि नासूर अच्छा न हुआ हो। दूसरे हकीमों ने भी यही लिखा है कि यह दवा हर जगह के नासूरों में फायदेमन्द है। एक बार गुदा के नासूर में भी इससे फायदा पहुँचा है।

अगर चीनी मिट्टी न मिले तो चीनी के बरतन का फूटा हुआ टुकड़ा काम में ले सकते हैं। [ख० अ०]

चीपी

नाम—बम्बई—चीपी। बंगाल—अर्चिका, ओर्च। उरिया—सून्दरिगुन। मराठी—तिवर। तामिल—किनई। मलयालम—थिरला, बिलती। लेटिन—Sonneratia Caseolaris [सोनेरेटिया केसिओलेरिस]।

वर्णन—यह वनस्पति हिन्दुस्तान, सिलोन, मलाया प्रायद्वीप, स्याम और जावा में समुद्र के किनारों पर पैदा होती है। यह एक छोटे कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते अण्डाकार, फूल गुलाबी ६ पंखड़ियों वाले और फल २-५ से ५ सेन्टीमीटर तक लम्बे और अंडाकृति होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति रक्त संग्राहक और व्रणरोपक होती है। इसके फल का पुल्टिस बनाकर मोच और सूजन पर बाँधने से लाभ होता है। इसके फल का रस जिसमें कि खमीर उठा लिया जाता है, रक्तस्राव के बन्द करने के लिए उपयोगी माना गया है।

चीना

नाम—संस्कृत—चीनक, काककंग, शुक्लक्षण। हिन्दी—चेना, चीना। बंगाल—चिने। मराठी—राले। गुजराती—चीणों। फारसी—उरजान। अरबी—बारेगा। अंग्रेजी—Millat [मिलेट] लेटिन—Panicum Miliare [पेनिकम मिलेरी]।

वर्णन—यह एक प्रकार का अनाज है जो कंगनी की जाति का होता है। यह धान मथुरा, आगरा, पंजाब, बुन्देलखण्ड आदि में खेती करके बहुत पैदा किया जाता है। शिमले के तरफ के लोग इसकी रोटी बनाकर तथा चावलों की तरह इसे पकाकर खाते हैं। व्रत उपवास के रोज हिन्दू लोग इसका फलाहार करते हैं। इस अनाज में से ६९ प्रतिशत मैदा और ३ प्रतिशत तेल निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से चीना मधुर, रुचिकारक, कसेला, स्वादिष्ट, शीतल, दाह नाशक, रूखा और भग्न हड्डी को जोड़ने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और दूसरे दर्जे में खुश्क है, कब्जियत करता है, मेदे की रतूबत को सुखाता है, जलोदर की बीमारी में पथ्य है। इसको दूध और घी के साथ खाने से सीने की जलन दूर होती और वीर्य बढ़ता है।

हब्स वूलर के मतानुसार बलूचिस्तान के शोरन नामक स्थान पर यह सूजाक की बीमारी पर काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति तिल्ली और रक्तस्राव में फायदा पहुँचाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चीकू

नाम—हिन्दी—सपेता, चीकू । गुजराती—चीकूनू झाड़ । कच्छी—चीकूजो झाड़ । दक्षिण—चिकू । उड़िया—सोपेटी । अंग्रेजी—Bully Tree । लेटिन—Achras Sapota [एक्रस सपोटा] ।

वर्णन—चीकू का वृक्ष छोटा और सुन्दर होता है । इसमें बारहो महीने पत्ते रहते हैं । इसकी छाल भूरे रंग की होती है । फूल फीके, सफेद और फल टीमरू की तरह ही होते हैं । इसमें टीमरू की तरह गुठलियाँ निकलती हैं । यह वृक्ष मूलतः अमेरिका का है, मगर अब भारतवर्ष में भी बहुत पैदा होने लगा है ।

गुण दोष और प्रभाव—कोंकण के अन्दर इसका फल पित्तनाशक और ज्वरनाशक औषधि की बतौर काम में लिया जाता है । इसकी छाल पौष्टिक और ज्वर नाशक होती है । इसकी क्रिया साधारणतया सिनकोना की तरह होती है । इसके बीज एक जोरदार मूत्रल औषधि हैं । इन बीजों की मात्रा ३ रत्ती की है । इससे अधिक मात्रा में यह जहरी हो जाते हैं । इनके प्रयोग से पेशाब बहुत अधिक होता है । इसकी छाल का काढ़ा बनाकर जीर्ण ज्वर में दिया जाता है ।

बेंटली के मतानुसार इसकी छाल में ज्वर नाशक और बीज में मूत्रल तथा विरेचक गुण रहता है ।

वेस्ट इंडीज में इसके बीज मृदु विरेचक और मूत्रल माने जाते हैं और इसकी छाल पौष्टिक और ज्वर नाशक मानी जाती है । कम्बोडिया में इसकी छाल संकोचक और ज्वर नाशक मानी जाती है । अतिसार में इसका काढ़ा बनाकर दिया जाता है ।

चुकन्दर

नाम—संस्कृत—रक्तशृञ्जन । हिन्दी—चुकन्दर । फारसी—चुकन्दर । उर्दू—चुकन्दर । बंगाल—बिटपलंग, पलंग साग । अंग्रेजी—Beet [बीट] । लेटिन—Beta Vulgaris [बीटा व्हलगेरिस] ।

यह एक प्रकार की तरकारी है । इसका पौधा मूली के पौधे की तरह होता है । इसका कंद भी मूली की तरह होता है मगर इसका रंग लाल होता और इसका आकार लम्बाई की अपेक्षा मोटाई में ज्यादा होता है । इसको काटने से लाल रंग का पानी बहता है और इसके अन्दर चकरियां नजर आती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते मूत्रल, विरेचक, सूजन को दूर करने वाले और सिर दर्द, लकवा, यकृत और तिल्ली की बीमारियों में और कान के दर्द में लाभदायक हैं । इसके बीज कड़वे, मूत्रल, कफ निःसारक, शान्तिदायक, पेट के अाफरे को मिटाने वाले, ऋतुस्राव नियामक और सूजन को दूर करने वाले होते हैं । इसका तेल दर्द पर मालिश करने से लाभ पहुँचता है । इसका कन्द मीठा, सूजन में लाभदायक और मानसिक तकलीफों में फायदेमन्द है । इसके ताजे पत्तों को रगड़ और मोच पर लगाने से फायदा होता है ।

रासायनिक विश्लेषण—चुकन्दर के कन्द में एक प्रकार की शक्कर पाई जाती है । अगर इसको व्यापारिक तौर पर तैयार किया जाय तो गन्ने की शक्कर से सस्ती पड़ती है । मगर गन्ने की शक्कर के बराबर इसमें गुण नहीं होते । गन्ने की शक्कर जैसे हृदय के लिये पौष्टिक पदार्थ है वैसी यह नहीं है ।

यूनानी मत—खजाइनुल अदविया के मतानुसार चुकन्दर के पत्तों के रस को शहद के साथ सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है । इसके पत्तों के काढ़े को ठण्डा करके आग से जले हुए स्थान पर डालने से लाभ होता है । इसके रस को कुनकुना करके कान में टपकाने से कान की सूजन और कान के दर्द में फायदा होता है । इसके पानी को नाक में टपकाने से दिमाग की खराबी दूर होती है और मिरगी में लाभ पहुँचता है । इसकी जड़ का असारा नाक में टपकाने से आधा शीशी दूर होती है । इसके रस से कुल्ले करने से दाँत का दर्द हमेशा के लिये मिट जाता है । राई और सिरके के साथ इसको पकाकर खाने से यकृत और तिल्ली के सुद्दे बिखर जाते हैं । गरम मसाले के साथ इसको खाने से तिल्ली की सूजन बिखर जाती है । अगर किसी के सिर के बाल उड़ गये हों तो इसके पत्तों के पानी को लगातार लगाते रहने से बाल फिर जम जाते हैं । इसकी साग बनाकर खाने से कामेन्द्रिय की शक्ति बढ़ती है । यह वनस्पति गरम मिजाज वालों को दही और मट्ठे के साथ और सर्द मिजाज वालों को गरम मसाले के साथ खाना चाहिये ।

मुजिर—यह वनस्पति अधिक मात्रा में सेवन करने से पेट में फुलाव और मरोड़ पैदा करती है । मेदे को नुकसान पहुँचाती है । इसकी जड़ से जी मचलता है और कभी-कभी उदरशूल भी पैदा हो जाता है ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दर्पनाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिये गरम मसाला, सिरका, राई, खट्टे अंगूर का रस और नींबू का शर्बत मुफीद है।

प्रतिनिधि :—इसका प्रतिनिधि शलगम है।

चुन्नापिण्डू

नाम—यूनानी—चुन्नापिन्डू।

वर्णन—यह एक जंगली वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बहुत घनी होती हैं। इसके पत्ते गोल और छोटे होते हैं। उनका रंग हरा होता है। इसके फल गुच्छों में लगते हैं। हरएक फल आकार में ज्वार के दाने के बराबर और सफेद होता है। इसका स्वाद मीठा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह सर्द और तर है, पित्त को नष्ट करता है। जी मचलने को रोकता है। मेदे को ताकत देता है। भूख बढ़ाता है। पित्तजन्य बुखार को दूर करता है, देर से हजम होता है। गरम प्रकृति वालों के लिये यह विशेष लाभदायक है।

मुजिर—यह फेफड़े को नुकसान पहुँचाता है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नष्ट करने के लिए मीठा अनार मुफीद है। [ख० अ०]

चुनार

नाम—यूनानी—चुनार।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते अरंड के पत्तों की तरह मगर उससे छोटे होते हैं। इनका आकार हाथ के पंजे की तरह होता है। इसका स्वाद कड़वा और बुकसा होता है। इसके फूल पीले, हलके और छोटे होते हैं। इसका फल पीला, खाकी, ललाई लिये हुए, गोल, खारदार और हलका होता है। यह खाने के काम में नहीं आता। इस पेड़ की छाल मोटी होती है। इसकी लकड़ी अन्दर से लाल और जौहरदार निकलती है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। इसकी लकड़ी सर्द और तर होती है। इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से जोड़ों और जांघों की सूजन मिट जाती है। कफ की वजह से पैदा हुई हर जगह की सूजन में यह लेप मुफीद है। इसकी छाल को जलाकर जखमों पर छिड़कने से जखम सूख जाते हैं। इसकी राख को लेप करने से सफेद दाग में फायदा होता है। इसकी छाल को सिरके में पकाकर चर्बी मिलाकर आग से जले हुए स्थान पर लगाने से शान्ति मिलती है। इसके हरे पत्तों को पीसकर सिरपर लगाने से सिर दर्द मिटता है। इसके सूखे पत्ते और फल का चूर्ण सूँघने से नकसीर का खून बन्द हो जाता है।

मुजिर—यह वस्तु फेफड़े और हलक को नुकसान पहुँचाती है। श्वास की नली पर भी इसका खराब असर होता है।

दर्प नाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिए मक्खन, शहद, दूध, दालचीनी और अगर मुफीद है।

प्रतिनिधि—इसकी छाल के बदले में अनार की छाल और इसकी लकड़ी के बदले में अन्जीर की लकड़ी काम में ली जा सकती है।

चितसिंगी

नाम—हिन्दी—चितसिंगी। गुजराती—धोली अडबाउगदब। कच्छी—अच्छेरोजिजको। अंग्रेजी—White Melilot [व्हाइट मेलिलोट]। लेटिन—Melilotus Alba [मेलिलोटस एल्बा]।

वर्णन—यह एक प्रकार का घास होता है। इसके पौधे १ फुट से २ फुट तक ऊंचे होते हैं। पत्ते मेथी के पत्तों की तरह होते हैं। फूल सफेद आते हैं। इसके फलों में प्रायः दो-दो बीज निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह औषधि असपर्क नामक औषधि की जगह पर काम में ली जाती है।

(असपर्क का वर्णन इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में देखिये)

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चुम्बर

नाम—पञ्जाब—चुम्बर, बरनक, झबूर। लेटिन—Artemisia Sacrorum [आर्टीमीसिया सेक्रोरम]।

वर्णन—यह वनस्पति कुमाऊँ और तिब्बत में दस हजार फीट से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक होती है। यह एक कांटेदार झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसकी छाल लाल और बादामी रंग की होती है। इसके पत्ते २-५ से लेकर ५ सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। ये लम्बगोल और तीखे होते हैं। इसके फूल पीले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति घोड़े के सिर दर्द में मुफीद है।

चूलासी

नाम— नेपाल—चूलासी। लेटिन— Osbeckia Crinita [आसबेकिया क्रिनिटा]।

वर्णन—यह वनस्पति सिकिम और भूटान में ४००० फीट से ८००० फीट तक की ऊँचाई पर और खासिया पहाड़ियों तथा बरमा में पैदा होती है। यह एक झाड़ीनुमा बहुशाखी वृक्ष है। इसके पत्ते ५ से लेकर १० सेंटीमीटर तक लम्बे बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल बैंगनी और सफेद होते हैं। इसका फल दो सेंटीमीटर तक लम्बा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—चापा जाति के लोग इसके सूखे पत्तों का काढ़ा दांत के दर्द में काम में लेते हैं।

चूका

इसका वर्णन अमलवेत के प्रकरण में इस ग्रंथ के पहले भाग में पृष्ठ १०५ पर देखना चाहिये।

चूका (सिकिम)

नाम —सिकिम—चूका। लेटिन—Rheum Novile [ह्रीयूम नोवाइल]।

वर्णन— यह वनस्पति हिमालय के भीतरी भागों में १३००० फीट से १५००० फीट की ऊँचाई पर होती है। इसकी जड़ें बहुत लम्बी होती हैं। इसके पत्ते लंबगोल, कटे हुए किनारों के और फल गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसकी गठान तीक्ष्ण, कटुपौष्टिक और मृदुविरेचक होती है। पेचिश में क्षुधा के नष्ट होने पर यह लाभदायक है। इसके गुण रेवंदचीनी के गुण से मिलते-जुलते हैं।

यूनानी मतानुसार इसकी जड़ तीखी और कड़वी होती है। यह विषनाशक, विरेचक, ऋतुस्राव नियामक और मूत्रल होती है। पित्त, कटिवात, मस्तक की गरमी, बवासीर, जीर्णज्वर, वायु नलियों का जीर्ण प्रदाह, दमा, शूल और रगड़ में यह उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसमें ग्लुकोसाइडस और अन्य अम्ल रहते हैं। इसके गुण रेवन्द चीनी से मिलते-जुलते होते हैं।

चेरुका

नाम—हिन्दी—चेरुका। लेटिन—Capparis Heyneane [कैपोरिस हेनिएना]।

वर्णन— यह वनस्पति भारत के दक्षिण में तथा सीलोन में पैदा होती है। यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसके पत्ते हरे और तीखी नोक वाले रहते हैं। इसके फूल सफेद और हलके होते हैं इनकी पंखड़ियाँ गोलाकार रहती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते आमवात और जोड़ों के दर्द में उपयोगी हैं। इसके फूल विरेचक होते हैं।

चेम्बुल

नाम —पन्जाब—चेम्बुल। लेटिन—Ranunculus Avensis [रेनन्क्युलस एवेन्सिस]।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से कुमाऊँ तक और आबू पहाड़ में पैदा होती है। यह एक सीधी बहुशाखी वनस्पति है। यह फिसलनी और पीले रंग की होती है। इसके फूल हलके पीले रंग के और फल नोकदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यूरोप में यह वनस्पति पार्यायिक ज्वर, गठिया और दमे के उपयोग में ली जाती है। इसके पत्ते विषैले होते हैं।

चेरुपिनाई

नाम—बम्बई—चेरुपिनाई, सरापुना। मराठी—बाबी, दूरई। कनाडी—बाबी। ट्रावनकोर—अतुपुना कतपुन्ना, सेरुपुन्ना। तामिल—सिसविचई। लेटिन—Calophillum Apetalum [केलाफिलम एपीटेलम]।

वर्णन—यह वनस्पति बम्बई प्रेसीडेन्सी के पश्चिमी घाट में और मैसूर से ट्रावनकोर तक १००० फीट की ऊँचाई तक होती है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष है। इसकी छाल कुछ पीले रंग की, पत्ते कटे हुए किनारों के, लंबगोल, फल अण्डाकार, फिसलने और पकने पर लाल हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसका गोंद घाव पूरने वाला, वेदना शून्यता पैदा करने वाला और प्रदाह को कम करने वाला होता है। इसके बीजों से तैयार किया हुआ तेल कोढ़ और चर्म रोगों में उपयोगी माना जाता है। इसका शीत निर्यास शहद के साथ मिलाकर गीलो खुजली और संधिवात के उपयोग में लिया जाता है।

चेदबला

नाम—हिन्दी—चेदबला, चेतो। पंजाब—चक्रा, चेतन, चेतेन, दादुर, गोकसा, कुञ्जि, ममरल, मतनी, नियोर, रेतियोन, रोमस्क, शोमफल, सिदरोर, शीतपंजा, ताद्रू, थलोट। कुमाऊँ—स्पिटी। तिब्बत—नैल, सारो। लेटिन—Rhamnus Dahnricus [ह्मनस डेव्हरीकस]।

वर्णन—यह वनस्पति पंजाब और हिमालय में २५०० से ६००० फीट की ऊँचाई तक तथा शिमला, भूटान और मद्रास प्रेसीडेन्सी में पैदा होती है। यह एक प्रकार की कटीली झाड़ी है। इसके पत्ते बहुत घने, पंखड़ियाँ लम्ब-गोल तथा फल काला और चमकीला रहता है। फल के अन्दर गुठली बहुत सख्त होती है। यह स्वाद में बहुत कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल वमनकारक और विरेचक होता है। तिल्ली के विकारों में यह उपयोगी माना जाता है। इसमें आक्सी मेथिल, एन्थ्राक्विनोन्स और रेमनोस नामक पदार्थ पाये जाते हैं।

चेरुचुरल

नाम—मलयालम—चेरुचुरल, कट्टुचुरल। लेटिन—Calamus Travancoricus [केलेमस ट्रावनकोरिकस]।

वर्णन—यह वनस्पति दक्षिणी प्रायद्वीप में मलावार से ट्रावनकोर तक होती है। इसका तना बहुत नाजुक रहता है। इसके पत्ते ३ से लेकर ५ तक के गुच्छे में रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके कोमल पत्ते पित्त विकार, अग्निमांद्य और कान की तकलीफों में उपयोगी माने जाते हैं। ये कृमिनाशक होते हैं।

चोबचीनी

नाम—संस्कृत—द्वीपान्तरवचा, अमृतोपहिता। हिन्दी—चोबचीनी। बंगाल—तोपचीनी। मराठी—चोपचीनी। गुजराती—चोपचीनी। फारसी—बेकचीनी, एवन। अरबी—एवन। तेलगू—पटंगीचक्का। अंग्रेजी China Root [चायनारुट] लेटिन—Smilax China [स्माइलेक्स चायना]। इसकी दो जातियाँ और होती हैं। जिन्हें लेटिन में Smilax Glabra और S. Zelenica कहते हैं।

वर्णन—चोबचीनी की जड़ें चीन देश से यहाँ पर आती हैं। चीन में इनको "टूफूह" कहते हैं। इसका पेड़ जमीन पर बिछा हुआ होता है। डालियाँ पतली होती हैं। इसके पत्ते लम्ब-गोल, पतले और तेजपात के पत्तों से मिलते

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जुलते होते हैं। इसकी जड़ सुर्खी माइल गुलाबी रंग की होती है। कोई-कोई सफेद और काली भी होती है। चीन के पहाड़ों के अतिरिक्त बंगाल में सिलहट के पहाड़ों पर और नेपाल के पहाड़ों पर भी यह पैदा होती है।

मखजनुल अदविया में चोबचीनी का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह एक जाति की लता की जड़ होती है जो चीन के तरफ से आती है। इसके टुकड़े प्रायः एक बालिश्त या उससे छोटे बड़े होते हैं। कोई टुकड़ा कम गठान वाला, कोई अधिक गठानों वाला, कोई चिकना, कोई खुरदरा, कोई वजनदार, कोई हलका, कोई सख्त, कोई मुलायम, कोई गुलाबी रंग का, कोई सफेद और कोई काला होता है। इन टुकड़ों में सबसे अच्छी चोबचीनी वही होती है, जिसका रंग लाल या गुलाबी हो, स्वाद मीठा हो, चमकदार और चिकनी हो, जिसमें गाँठे कम हों और रेशे न हों। जो भीतर और बाहर से एक रंग की हो, जो स्वाद में कुछ मीठी हो और जो पानी में डालने से डूब जाय। जो टुकड़े वजन में हलके और सफेद रंग के हों उनको कच्चे समझना चाहिये। और जो काले रंग के टेढेमेढे और अनेक गठानों वाले हों उनको हलकी जाति के समझना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—पूर्व कालीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि का उल्लेख कहीं देखने को नहीं मिलता मगर मध्यकालीन भाव मिश्र ने अपने भाव प्रकाश ग्रन्थ में इसका वृत्तान्त लिखा है। इससे ऐसा मालूम होता है कि इस औषधि का प्रचार मुसलमानी हकीमों के द्वारा ही यहाँ पर हुआ।

भावप्रकाश के मतानुसार चोबचीनी चरपरी, मधुर, कड़वी, गरम, मल मूत्र को शोधने वाली तथा आफरा, शूल, वात व्याधि, अपस्मार, उन्माद और अंग की वेदना को दूर करने वाली है। विशेष रूप से यह फिरंग रोग में लाभदायक है।

इसका रस कुछ मधुर और कड़वा होता है। यह गरम और अग्निवर्द्धक होती है। कब्जियत को मिटाती है। आफरा और उदरशूल को दूर करती है। दस्त और पेशाब को साफ लाती है। पक्षाघात, सन्धिवात तथा वायु के दूसरे रोगों में बहुत लाभदायक है। अपस्मार और उन्माद में भी फायदा पहुँचाती है। उपदंश रोग के लिये यह एक अक्सीर औषधि है। पुरुषों के वीर्यदोष और स्त्रियों के रजोदोष को यह दूर करती है। कण्ठमाला और नेत्र रोगों में भी यह लाभदायक है।

डाक्टर वामनगणेश देसाई का कथन है कि चोबचीनी की मुख्य क्रिया त्वचा के ऊपर और त्वचा के उपभागों अर्थात् सन्धियों, बन्धन और रस ग्रन्थियों पर होती है। यह एक उत्तम रसायन और दिव्य औषधि है। इसकी मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है, जो सूंठ के साथ दूध के अनुपान से दी जाती है।

सुजाक की वजह से पैदा हुई सन्धियों की सूजन और सन्धियों की अकड़न में तथा उपदंश की दूसरी और तीसरी अवस्था में चोबचीनी बहुत लाभ पहुँचाती है। इन रोगों में पोटेशियम आयोडाइड की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से और अधिक निश्चयपूर्वक चोबचीनी लाभ पहुँचाती है। सुजाक और उपदंश की वजह से पैदा हुई रसग्रन्थियों की सूजन में इसके सेवन से पहले दर्द की कमी होती है और उसके पश्चात् सूजन उतरती है। इन रोगों में पोटेशियम आयोडाइड से जैसा त्रास होता है वैसा चोबचीनी से नहीं होता। यह औषधि चूर्ण के रूप में जैसा गुण बतलाती है वैसा क्वाथ या शीतनिर्यास के रूप में नहीं बतलाती।

चोबचीनी शरीर की सन्धियों और शिराओं के अन्दर प्रवेश करके अविकृत पित्त को सहायता पहुँचाती है, खून को साफ करती है, सन्धियों को मजबूत करती है, पेशाब को गति देती है, मासिक धर्म को साफ करती है। लकवा, हाथ पैरों का सूजना, उपदंश की वजह से होने वाला सिर दर्द, आधा शीशी, पुराना नजला, विस्मृति, चक्कर, उन्माद, उपदंश और दमे के रोगों में भी यह लाभदायक है। खून को शुद्ध करने का इसमें खास गुण होने की वजह से यह फोड़े, फुन्सी, घाव तथा खून की गर्मी से होने वाले रोगों में अक्सीर फायदा करती है। इसके सेवन से अफीम खाने की आदत छूट जाती है। जहरी पदार्थों के विकार को भी यह शान्त करती है। इसी प्रकार जो लोग कामदेव की शक्ति नष्ट हो जाने से नाउम्मीद हो गये हों उनको भी यह फिर से नवीन पुरुषार्थ देती है।

डॉक्टर मुफीन शरीफ कहते हैं कि चोबचीनी की मजबूत गांठों वाली जड़ एक सस्ती और सुनिश्चित औषधि है। कॉडलिव्हर ऑइल, सार्सापरेला और पोटास आयोडाइड के बदले में यह बहुत सफलता के साथ काम में आती है। मैंने विस्फोटक रोग की अन्तिम असाध्य अवस्था में तथा उपदंश, सन्धिवात और कण्ठमाला के कितने ही केसों में इसका उपयोग बहुत सफलता के साथ किया है। यह औषधि चूर्ण और क्वाथ के रूप में काम में ली जा सकती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि चोबचीनी की क्रिया सीधी रक्त के ऊपर होती है और इसलिये यह रक्त विकार के तमाम दोष, उपदंशक के विष और सन्धिवात, गठिया इत्यादि वात व्याधियों पर बहुत लाभ पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त इसका बाजीकरण धर्म भी बहुत प्रभावशाली है। इसलिये काम शक्ति की निर्बलता, वीर्य की खराबी इत्यादि व्याधियों पर भी इसका उत्तम असर होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से चोब चीनी शरीर के अन्दर मुलायमियत पैदा करती है। भीतर की खराबियों को दूर करती है, खून साफ करती है, दिल, दिमाग, कलेजे और कामेन्द्रिय को ताकत देती है। फालिज, लकवा, कँपकँपी, ऐंठन, पागलपन, मालीखोलिया इत्यादि ज्ञानतन्तु सम्बन्धी बीमारियाँ, गर्भाशय की बीमारियाँ, गुदा सम्बन्धी बीमारियाँ तथा कोढ़, खुजली, जहरीले फोड़े, दाद इत्यादि रक्त सम्बन्धी रोगों में यह बहुत लाभ पहुँचाती है। वात से पैदा हुआ बुखार, चौथिया ज्वर और फीलपांव में भी यह लाभदायक है। इससे अफीम खाने की आदत छूट जाती है। इसके सेवन से चेहरे का रङ्ग लाल, साफ और रौनकदार हो जाता है। जिसको बेजानकारी में पेशाब जाने का रोग हो उसे भी यह ठीक करती है।

इसको सरदी के शुरू में अथवा वसन्त ऋतु में सेवन करना चाहिये कड़ाके की सरदी और कड़ाके की गरमी में इसका सेवन मुनासिब नहीं। जवानी के और बुढ़ापे के शुरू में इसका सेवन करने से बुढ़ापे का असर अधिक मालूम नहीं होता। कफ सम्बन्धी बीमारियों में इसका सेवन ठीक नहीं है।

मुजिर—अधिक गरम मिजाज वाले लोगों को और बच्चों को इसके सेवन से बहुत खुश्की पैदा होती है। निर्बल मनुष्यों को इसका सेवन कराने में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये क्योंकि यह हृदय की धड़कन को कम करती है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिये अनार उत्तम है।

प्रतिनिधि—हकीमों के मतानुसार इसका प्रतिनिधि उसबा और वैद्यों के मतानुसार असगन्ध है।

मात्रा—इसके चूर्ण की मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक की है।

उपयोग :—उपदंश—जिसका शरीर उपदंश से फूट गया हो और जिसके सारे शरीर में उपदंश का विष फैला हो उसको चोबचीनी के शीत निर्यास में शहद मिलाकर पिलाना चाहिये।

कण्ठमाला—इसका चूर्ण ४ माशे से १ तोले तक की मात्रा में शहद के साथ चटाने से कण्ठमाला में लाभ होता है।

रक्तविकार—इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से त्वचा के सारे रोग मिटते हैं।

बनावटें :—उपदंश नाशक चूर्ण—चोबचीनी १६ तोले, मिश्री ४ तोले, पीपर, पीपरामुल, कालीमिर्च, लवंग, अकरकरा, सोंठ, खुरासानी अजवायन, वायबिडङ्ग, दालचीनी, ये सब चीजें एक-एक तोला। इन सबका बारीक चूर्ण करके इसमें से ६ माशे चूर्ण सुबह, शाम शहद के साथ लेने से रक्त में मिले हुए उपदंश के कीटाणु नष्ट होते हैं और उपदंश के परिणाम से होने वाले अन्य रोग, जैसे रक्त विकार, संधिवात, गठिया, लकवा, प्रमेह इत्यादि नष्ट होते हैं।

चोबचीनी पाक—चोबचीनी ४८ तोले, पीपर, पीपरामुल, कालीमिर्च, सूँठ, अकरकरा और लौंग, ये सब एक-एक तोला। इन सबके चूर्ण का जितना वजन हो उतनी ही शक्कर की चाशनी में इसका पाक बना लेना चाहिये। इस पाक में से एक-एक तोला सबेरे-शाम लेने से नपुंसकता, व्रण, कुष्ठ, वातरोग, भगन्दर, क्षय इत्यादि रोग दूर होते हैं।

भगन्दर नाशक मोदक—चोबचीनी का चूर्ण आधी छटांक, शक्कर आधी छटांक और घी आधी छटांक। इन तीनों को मिलाकर इनके दो लड्डू बना लेना चाहिये। एक लड्डू सवेरे और १ लड्डू शाम को खाकर ऊपर से गाय का दूध पीना चाहिये। पथ्य में सिर्फ गेहूँ की रोटी, घी, शक्कर और दूध ही देना चाहिये। १४ दिन तक इस औषधि का सेवन करने से भगन्दर नष्ट हो जाता है। अगर इस दवा के सेवन से शरीर में गर्मी मालूम पड़े तो दवा की मात्रा कम कर देना चाहिये और घी दूध की मात्रा बढ़ा देना चाहिये।

[जंगली जड़ी बूटी]

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रक्त शोधक क्वाथ--चोबचीनी, अनन्त मूल, मज्जीठ, सनाय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीमगिलोय, नीम की अन्तरछाल, कुटकी, पीवल की अन्तरछाल, दारु हल्दी और मुलेठी इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण में से ४ तोला चूर्ण लेकर ६४ तोला पानी में औटाना चाहिये। जब ८ तोला पानी बाकी रह जाय तब छानकर पी लेना चाहिये। इस प्रकार दिन में दो बार इस क्वाथ का सेवन करने से शरीर में फैला हुआ उपदंश का विष दूर हो जाता है। तथा सब प्रकार के रक्त विकार, खाज, खुजली, व्रण, भगन्दर, कुष्ठ, वगैरह रोग नष्ट होते हैं। एक्जिमा के ऐसे केस में जिनमें डाक्टरों ने रोगी का पांव काट डालने की सलाह दी थी इस औषधि के सेवन से आराम होते देखा गया है।

मदन संजीवन चूर्ण--जायफल, लवंग, जायपत्री, पीपर, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर बहुफली पीपलामूल, अजवायन, कौंचबीज, सेमरमूसली, असगंध, सफेदमूसली, बलबीज, गोखरू, समुद्रशोष के बीज, धतूरे के बीज, बंशलोचन और मुलेठी। ये सब चीजें एक-एक तोला, चोबचीनी ४० तोला। इन सब औषधियों का बारीक चूर्ण करके रख देना चाहिये। इस चूर्ण में से ३ माशे चूर्ण, ३ माशे शहद और ६ माशे घी के साथ मिलाकर चाटना चाहिये और ऊपर से गाय का दूध पीना चाहिये यह चूर्ण अत्यन्त कामोद्दीपक और वाजिकरण है। इससे सब प्रकार के वीर्य दोष नष्ट होकर मनुष्य की काम॰ शक्ति बहुत बढ़ती है।

चूना

नाम - संस्कृत--चूर्ण, सुधा, सहोदभूषणकं, शिलाक्षार, शुद्धक्षार। हिन्दी—चूना। गुजराती—चूना। मराठी-चूना। बंगाल—चूना। पंजाब—चूना। तेलगू—चुन्नपु। द्राविड़ी—शुन्नाम्बू। अरबी-किलस। फारसी—आहक। अंग्रेजी—— Lime, Carbonate of Lime, quick Lime।

वर्णन—चूना भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से जनसमाज के परिचय में आ रहा है। हजारों वर्ष पहिले से यहाँ पर चूने से इमारतें बनाने का काम होता आया है। कंकरी से चूना जलाने की प्रथा भी यहीं पर बहुत प्राचीन काल से चली आई है। सुश्रुत, वाग्भट इत्यादि प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने औषधि विज्ञान में भी इस वस्तु का उपयोग किया है।

आधुनिक काल में इस वस्तु ने और भी अधिक महत्व धारण किया है। मनुष्य शरीर का पोषण करने के लिये और हड्डियों को मजबूत करने के लिये आजकल केलशियम नामक तत्व बहुत उपयोगी माना जाता है और वह केलशियम इसी चूने के अन्दर पाया जाने वाला एक तत्व है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह चौथे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कब्जियत पैदा करता है, खट्टेपन को मिटाता है, पेशाब और खून को साफ करता है, जखम पर लगाने से जखम भर देता है। सूजाक में इसके पानी की पिचकारी देते हैं। आग से जले हुए स्थान पर चौगुने मक्खन में इसको मिलाकर लगाने से शान्ति मिलती है। जले हुए स्थान को शान्ति पहुँचाने की इसकी खास तासीर है। शरीर के किसी भी हिस्से में खून बहता हो तो वहाँ पर घुले हुए चूने को लगाने से बन्द हो जाता है। चूना और अफीम दोनों समान भाग लेकर उड़द के बराबर गोलियाँ बनाकर सुबह-शाम लेने से दस्त, मरोड़, पेचिश और संग्रहणी में लाभ होता है। अदरक के पानी में चूना मिलाकर थोड़ा-सा नमक डाल-कर सर्दी की सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है।

मुजिर—अधिक मात्रा में चूना खाने और पीने से पीने वाले के मुँह में खुश्की पैदा हो जाती है, मुँह में छाले हो जाते हैं, मेदे में जलन होकर मेदा खिंचने लगता है, पेशाब रुक जाता है, आँतों में घाव होकर मरोड़ी और खून के दस्त आने लगते हैं, दिल में धड़कन होकर बेहोशी पैदा हो जाती है। अगर ऐसा उपद्रव हो तो ताजा दूध व बादाम का तेल पिलाना चाहिये और तर पदार्थ खिलाना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार कली के चूने में पाया जाने वाला केलशियम सब प्रकार के प्रादाहिक सूजन के लिये एक उत्तम औषधि है। इसे चूने के पानी के रूप में काम में लेते हैं। दो औंस कली के चूने को एक गैलन पानी में डालकर घोल देते हैं। चूना जम जाने पर पानी को नितार लेते हैं। इसी लाइमवाटर में केलशियम रहता है। इस चूने के पानी को किसी साधारण जाति के तेल में मिलाकर खाज, खुजली, जलना इत्यादि चर्म रोगों पर लगाने व पिलाने के काम में लेते हैं। बच्चों के पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिये ३ औंस चूने के पानी का एनिमा लगाया जाता है। संदाग्नि

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

और हृदय की जलन में भी इसको पिलाने से बड़ा लाभ होता है। वमन और अतिसार में बच्चों की वमन और क्षय में और खनिज अम्लों के विष में चूने का पानी उत्तम औषधि है। इसे दूध के साथ मिलाकर देने से काफी फायदा होता है। १ पिन्ट दूध में ४ औंस पानी मिलाया जाता है।

चूने का पानी अम्लनाशक होता है। इसे जोड़ों के दर्द में, दाद में, गंज में और पीलियाँ में उपयोग में लेते हैं। मूत्र सम्बन्धी रोग, ग्रन्थियों की वृद्धि और अम्ल की अधिकता में यह लाभदायक है।

उपयोग—गाँठ और मस—चूना, सज्जी, तूतिया और सुहागे को पानी में पीसकर मस पर लगाने से लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ—चूने के नितारे हुए पानी में तिल का तेल और शक्कर मिलाकर पिलाने से किसी दूसरी औषधि से नहीं मिटने वाला मूत्रकृच्छ मिट जाता है।

अम्लपित्त—५ तोले कली के चूने को ५ सेर पानी में कागदार शीशी में बुझाकर २–३ मिनट तक हिलावें और काग बन्द कर रख छोड़ें। जब चूना नीचे जम जाय तब उस नितरे हुए पानी में से ढाई-ढाई तोला पानी सुबह-शाम पिलाने से अम्लपित्त मिटता है।

बालरोग—ढाई तोले चूने को ५ तोले मिश्री के साथ खरल करके ढाई पाव पानी में मिलाकर कागदार शीशी में भरकर काग बन्द कर रख दें। जब पानी नितर जाय तब उसमें से १५–२० बूँद पानी दूध में मिलाकर बच्चे को पिलाने से उसके पेट में होने वाले दूध सम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं। वह तन्दुरुस्त रहता है और केलशियम की कमी से होने वाले उपद्रवों से उसकी रक्षा होती है।

अजीर्ण—अजीर्ण की वजह से जिसका पेशाव रुक गया हो या पीला पड़ गया हो, खट्टी डकारें बहुत आती हों और वमन होने लग गई हो, ऐसे रोग में दूध में चूने का पानी मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

अतिसार—जिसको अम्ल पित्त से अतिसार हो गया हो उसको चूने के नितरे हुए पानी में बबूल का गोंद मिलाकर पिलाने से अतिसार मिटता है।

नम्बर २—चूने के पानी में कुनकुना दूध और गोंद मिलाकर गुदा में पिचकारी देने से भी अतिसार मिटता है।

वमन—जब किसी भी औषधि से वमन नहीं रुकती हो तो दूध में चूने का नितरा हुआ पानी मिलाकर पिलाने से रुक जाती है। पीले बुखार में काली वमन को रोकने के लिये दूध और चूने का पानी बहुत हितकारी है।

श्वेतप्रदर—एक भाग चूने के नितरे हुए पानी में तीन भाग पानी मिलाकर पिचकारी देने से श्वेतप्रदर में लाभ होता है।

गण्डमाला—जिस गंडमाला में पीब वाले फोड़े होते हों और लगातार घाव पड़ते जाते हों वह भी चूने के पानी को दूध के साथ मिलाकर पीने से मिट जाती है, मगर वह दूध १२ घण्टे से अधिक नहीं पड़ा रहना चाहिये। साथ में गंडमाला के फोड़ों पर चूने का पानी भी लगाना चाहिये।

दुष्टव्रण—सवा पाव चूने के नितरे हुए पानी में १५ रत्ती रसकपूर मिलाकर उपदंश सम्बन्धी फोड़ों और न भरने वाले फोड़ों पर लगाने से लाभ होता है। मगर इसका कपड़ा फोड़ों पर हमेशा तर रहना चाहिये। खुजली और दूसरे दाहक चर्म रोगों में चूने के नितरे हुए पानी में तेल मिलाकर उसमें कपड़ा तर करके रखने से बड़ा लाभ होता है।

कर्णरोग—चूने के पानी में दूध मिलाकर नाक या कान में उसकी पिचकारी देने से नाक और कान का बहना बन्द हो जाता है।

क्षयरोग—क्षय रोग वाले मनुष्य को दूध में चूने का पानी मिलाकर देने से लाभ होता है। बहुमूत्र के लिये भी यह प्रयोग हितकारी है। जिस बच्चे की गुदा में चुरनिये पड़ गये हों उसको चूने के पानी की पिचकारी देने से लाभ होता है।

संखिये का विष—चूने का पानी पिलाने से संखिये का विष मिटता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अग्नि से जलना—अग्नि से जले हुए स्थान पर चूना और अलसी का तेल मिलाकर लगाने से शान्ति मिलती है।

शीतला के व्रण—रुई के फाये को चूने के जल में भिगोकर शीतला के व्रणों पर रखने से वह गहरे नहीं पड़ते।

बदगाँठ—चूना और शहद मिलाकर कपड़े पर लगाकर बदगाँठ पर बाँधने से बदगांठ बिखर जाती है।

पसली का दर्द—चूने और शहद को कपड़े पर लगाकर पसली के दर्द पर रखकर पट्टी चढ़ा देने से पसली का दर्द मिट जाता है।

मकड़ी का जहर—चूने को नीबू के रस में मिलाकर लगाने से मकड़ी का जहर उतर जाता है।

मस्तक पीड़ा—चूने और नौसादर को मिलाकर सुँघाने से कफ और वात का सिरदर्द और हर तरह की बेहोशी दूर होती है।

नारू—चूने और बीड़ लवण को पानी के साथ पीसकर लेप करने से नारू मिटता है।

तिल्ली—चूने को शहद के साथ पीसकर तिल्ली पर लेप करके ऊपर अंजीर के पत्ते बांधने से तिल्ली की वृद्धि मिटती है।

मकड़ी का विष—चूना, तेल और चिरौंजी को पीसकर लगाने से मकड़ी का जहर दूर होता है।

अग्निमान्द्य—कली का चूना २ रत्ती, तुलसी के पत्तों के रस या अदरक, प्याज अथवा लहसुन के रस के साथ लेने से आमाशय का खट्टापन दूर करके जठराग्नि को तीव्र करता है। आमाशय के विजातीय द्रव्यों को यह दस्त के द्वारा बाहर निकाल देता है।

अतिसार और संग्रहणी—कली का चूना २ रत्ती, तुलसी के रस या शहद के साथ मिलाकर चाटने से अतिसार और संग्रहणी में लाभ होता है।

खाज और खुजली—कली का चूना १ तोला लेकर ढाई तोला गोमूत्र में खूब अच्छी तरह मिला लेना चाहिये। उसके बाद उसमें थोड़ा मोम गलाकर डाल लेना चाहिये, जिससे वह मरहम की शक्ल का हो जायगा। इस मरहम को खाज, खुजली और घावों पर लगाने से बहुत जल्दी आराम होता है।

मूत्रकृच्छ्र—कली का चूना १ रत्ती, भैंस के कान का मैल पाव रत्ती, इन दोनों चीजों को शहद में मिलाकर चटाने से पेशाब साफ होकर मूत्रकृच्छ्र में तुरन्त लाभ होता है। इसको नाभि के ऊपर लगा देने से भी यही लाभ होता है।

आधाशीशी और मस्तक शूल—गोविन्द फल या व्याघ्रनखी की ३ माशे नरम कोंपलें लेकर उसमें आधी रत्ती चूना मिलाकर उसको गोमूत्र में मिला देना चाहिये। अगर व्याघ्रनखी न मिले तो २।३ नीम के पत्तों का रस निकालकर उसमें पाव रत्ती चूना मिलाकर उसकी १।२ बूंद नाक अथवा कान में डालने से आधाशीशी और मस्तकशूल फौरन आराम होता है।

मोच और हड्डी का टूटना—चूने को मक्खन के साथ मिलाकर मोच के ऊपर बाँधने से मोच की पीड़ा शान्त होती है और हड्डी में पड़ी हुई गठान भी बिखर जाती है। टूटी हुई हड्डी पर इस औषधि का लेप करके उसके ऊपर मोरपंख के रुँओं की पट्टी बाँधना चाहिये। इस पट्टी को ५।७ दिन में बदलते रहना चाहिये।

मुँह की कीलें—चूने को शहद में मिलाकर मुँह की कीलों पर लगाने से मुंह की कीलें मिट जाती हैं।

वमन—चूने को पानी में घोल कर एक स्थान पर रख देना चाहिये। जब चूना नीचे जम जाय तब साफ पानी को नितारकर उस पानी में शहद मिलाकर पीने से वमन, जी का मचलाना और आमाशय का खट्टापन दूर होता है। रुचि उत्पन्न होती है। बच्चा अगर दूध निकालता हो तो वह भी इस औषधि को देने से बन्द हो जाता है।

चमजुएँ—कई लोगों के गन्दगी की वजह से बगल में, गुह्य स्थानों पर और आँखों की पलकों में चमजुएँ पड़ जाती हैं। ऐसी हालत में नहाने के गरम जल में चूना और नीम के पत्तों का रस डालकर उस पानी से स्नान करने से और आँखों को धोने से चमजुएँ नष्ट हो जाती हैं। रक्त और पसीने के विकार को दूर करने के लिये तीन माशे घी में १ रत्ती चूना मिलाकर खाना चाहिये। नहाने के पहले शरीर पर चूना मिले हुए घी की मालिश कर लेना चाहिये। इस सारे उपचार से चमजुएँ बहुत जल्दी नष्ट होती हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यकृत और तिल्ली की वृद्धि—कली का चूना १ रत्ती और सरपंखे की जड़ का रस १ तोला मिलाकर पेट पर लेप करने से और उस हिस्से पर शहद, सोंठ और चूने को समान भाग लेकर उसका बंधान बांधने से अच्छा लाभ होता है।

बिच्छू का विष—नीम के पत्तों के रस में १ रत्ती चूना मिलाकर उस रस की १।२ बूँदें कान में डालने से और डंक पर वार-बार लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

अग्नि से जलने पर—चूने के नितरे हुए पानी में दही की मलाई समान भाग मिलाकर लगाने से अग्नि के जले हुए पर शान्ति मिलती है।

शस्त्र का घाव—अगर चाकू, छुरी वगैरह किसी शस्त्र से गहरा घाव पड़ गया हो तो चूने को मक्खन और सूँठ के साथ मिलाकर घाव में भरने से खून का बहना बन्द हो जाता है और कुछ दिनों में घाव अच्छा हो जाता है।

कान का बहना—आधी रत्ती कली का चूना गोमूत्र में मिलाकर कान में भरकर, एक घण्टे तक रोगी को ऐसे सुला देना चाहिए जिससे वह न निकल सके। उसके बाद उसको बाहर निकाल देना चाहिए। इस प्रकार हर तीसरे दिन करने से कान का बहना बन्द हो जाता है।

नासूर—कली का चूना और मक्खी की हँगार समान भाग लेकर शहद में मिलाकर उसमें बत्ती को तर करके नासूर के अन्दर भरने से और गोमूत्र और नीम के पत्तों के रस से व्रण को धोते रहने से नासूर जल्दी भर जाता है।

हृदय रोग—कली का चूना ३ रत्ती और गुड़ ५ तोला इनको मिलाकर रोग के हमले के अनुसार कम ज्यादा मात्रा में चटाने से हृदय के भीतर का वेग और पीड़ा मिटकर हृदय मजबूत होता है और रक्ताभिसरण की क्रिया सुधर जाती है।

चूने का पानी अम्लनाशक होता है। इसे जोड़ों के दर्द में, दाद में, गंज में और पीलिया में उपयोग में लेते हैं। मूत्र सम्बन्धी रोग, ग्रन्थियों की वृद्धि और अम्ल की अधिकता मे यह लाभदायक है।

दमा—एक रत्ती कली का चूना १ तोला शहद में मिलाकर चाटने से दमे में लाभ होता है।

बालकों का सूखा रोग—कली का चूना १ रत्ती, शहद में मिलाकर चटाकर ऊपर से धारोष्ण दूध पिलाने से बालकों का सूखा रोग मिटता है।

वायु गोला—कली का चूना डेढ़ रत्ती, शक्कर १। रत्ती और नमक १॥ रत्ती, पाव भर पानी में मिलाकर उस पानी में से २ तोला पानी देने से वायु गोला, आफरा और पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

अजीर्ण और अरुचि—एक रत्ती कली का चूना, ३ माशे अदरक के रस में कुछ शहद मिलाकर लेने से अजीर्ण और अरुचि मिटती है और भूख लगती है।

स्वर भंग—चूने को बबूल की कलियों के रस में पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों को मुँह में रखकर चूसने से सरदी की वजह से बैठा हुआ गला खुल जाता है।

शक्तिवर्धक—कली का चूना १ रत्ती, सबेरे शाम ६ माशा शहद में मिलाकर चाटना चाहिये। ऊपर से केशर और शक्कर मिला हुआ बढ़िया दूध पीना चाहिये। इस प्रयोग से अन्न हजम होता है। भूख लगती है, निर्बलता दूर होती है और वीर्य तथा पुरुषार्थ बढ़ता है।

विदेश में होने वाला जलवायु का दूषित प्रभाव—१ मन भर पानी में पाव भर कली का चूना डालकर उस पानी को नितार करके पीते रहने से जलवायु के सब दोष दूर हो जाते हैं। अगर किसी को विदेश के जलवायु से विकार हो गये हों तो १ रत्ती चूने को १॥ माशे जीरे के चूर्ण में मिलाकर सवेरे शाम खाने से सब विकार मिट जाते हैं।

वातनाशक प्रयोग—चूना २ तोला, अफीम १ तोला, तीन वर्ष का पुराना गुड़ ४ तोला, इन सब चीजों को मिलाकर खूब खरल करना चाहिये। फिर चने के बराबर गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से १ गोली सवेरे शाम पानी के साथ देने से बादी की वजह से होने वाला पेट का दर्द, पसली का दर्द और जोड़ों का दर्द मिटता है।

धनुर्वात—अजवायन को बकरी के मूत्र की ७ भावना देकर सुखा लेना चाहिये। फिर उसमें समान भाग चूना मिलाकर पीसकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इसमें से तीन माशे से ६ माशे तक दिन में ३ बार देने से धनुर्वात में लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पागल कुत्ते का विष—चूने को आकड़े के दूध में ७ भावनायें देकर चने के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इस गोली को सवेरे शाम एक-एक की मात्रा में देने से शरीर में से पागल कुत्ते का विष नष्ट हो जाता है। अगर किसी को विष चढ़ गया हो तो प्रति आध घण्टे में इसमें से एक-एक गोली देने से वमन के द्वारा जहर बाहर निकल जाता है। वमन अगर नहीं भी हो तो कोई हर्ज नहीं। बिना वमन के ही जहर के दोषों को दूर करके रोगी को आरोग्य कर देती है। फिर भी यह आवश्यक है कि रोगी १ वर्ष तक पानी के प्रवाह, अग्नि की ज्वाला और खटाई इत्यादि अपथ्यकारी चीजों से बचा रहे।

चोबे हयात

नाम—संस्कृत जीवदास, लोहकाष्ट, वृद्धमित्र, अमृतदारू, गुह्याक्ष। हिन्दी—चोबेहयात। यूनानी—चोबेहयात। बम्बई—लोह लक्कड़। लेटिन—Guaiacum Officinalis [गुएकम आफिसिनेलिस]।

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा पौधा होता है। इसकी लकड़ी उदी रंग की और बहुत सख्त होती है। इस लकड़ी के अन्दर कुछ तेल का अंश होता है। यह पानी मे डालने से डूब जाती है और कूटने में बहुत कठिन होती है। इसको जलाने से धूप के समान खुशबू निकलती है। इसकी छाल बहुत अस्तव्यस्त और डालियाँ बांकी टेढ़ी होती हैं। पत्ते जोड़े से लगते हैं। औषधि के प्रयोग मे इसकी लकड़ी और उसमें से निकाला हुआ राल काम में आता है। यह वृक्ष पहाड़ी प्रान्तों में होता है और बहुत बढ़ता है। ऐसा कहा जाता है कि यह वृक्ष बनारस, गोरखपुर और हाथरस के जिलों में पैदा होता है और वहाँ इसकी लकड़ी से पलंग और तख्त के पाये बनते हैं।

गुण-दोष और प्रभाव—चोबे हयात दीपन, पाचन, मुत्रल, वेदना नाशक, आनुलोमिक, पसीना लानेवाली, सूजन को नष्ट करने वाली, धातुपरिवर्तक, मासिक धर्म को साफ करने वाली एक उत्तम रसायन है। इसके सेवन से आमाशय में गर्मी होती है। पाचक रस दौड़ने लगता है, जिससे भूख लगती है, अन्न पचता है और दस्त साफ होता है। अधिक दिनों तक सेवन करने से मनुष्य की जीवन-विनिमय क्रिया सुधरती है और शरीर में ओज और लावण्य बढ़ता है। इसको अधिक मात्रा में सेवन करने से दस्तें लगती हैं। जम्भाइयाँ आने लगती हैं, नाड़ी जल्दी चलने लगती है और त्वचा तथा मूत्रपिंड की क्रिया शीघ्रगामी हो जाती है।

ढलती हुई उम्र के लोगों के लिए यह एक उत्तम औषधि है। इसको पारे और गन्धक के साथ भी दिया जाता है। यह औषधि छोटी मात्रा में कई वर्षों तक लेते रहने पर भी कोई नुकसान नहीं होता।

प्राचीन आमवात में, संधियों की अकड़न में तथा गृध्रसी, इत्यादि वात रोगों में इसके सेवन से वेदना की कमी हो जाती है और बहुत लाभ होता है। इसको गन्धक, शोरा, सूंठ और तिलपर्णी के साथ मिलाकर रात्रि के समय चाटने से लाभ होता है।

प्रौढ़ मनुष्यों के गले की श्लेष्मत्वचा पर गांठ या सूजन होने पर, इसके सेवन से बहुत लाभ होता है। ऐसे समय में इसकी लकड़ी के चूर्ण को जबान पर रखकर गले में उतारना चाहिये। अगर वैसे नहीं उतरे तो पानी के साथ उतारना चाहिये। प्रौढ़ मनुष्यों के गले की सूजन के लिए इस औषधि के बराबर दूसरी चमत्कारिक औषधि नहीं है।

आर्तव के ऊपर भी इस औषधि की क्रिया बहुत प्रभावशाली है। मासिक धर्म की रुकावट और कष्टप्रद मासिक धर्म के लिए यह एक उत्तम औषधि है। अगर इसको धैर्य के साथ लगातार दिया जाय तो स्त्रियों के गर्भाशय की शुद्धि होकर वे सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाती हैं।

रासायनिक विश्लेषण—इसकी लकड़ी में एक प्रकार की अम्ल स्वभाव की राल पाई जाती है, जो खाकी रंग की और सुगन्धित होती है। यह पानी में अघुलनशील और अलकोहल में घुलनशील होती है।

मात्रा—इसकी लकड़ी के चूर्ण की मात्रा १५ रत्ती तक की है, जो दिन में तीन बार ली जा सकती है और इसकी राल की मात्रा २ से ७ रत्ती तक की है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसकी लकड़ी में जहर दूर करने की अच्छी तासीर है। अगर किसी ने जहर खा लिया हो तो इसके इस्तेमाल से लाभ होता है। सांप और बिच्छू के जहर में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भी यह लाभदायक है। इसका लेप भी जहर की जगह पर करने से वेदना कम होकर शांति मिलती है। हैजे के लिए भी यह बहुत लाभदायक है। इसके सेवन से हैजे की दस्त और उल्टियाँ बन्द हो जाती हैं। इसके मरहम से जख्म भर जाते हैं। इसका चूर्ण ४ माशे की मात्रा में एक माशे काली मिर्च के साथ पानी में पीसकर प्रातःकाल पीने से और ऊपर से २।३ निवाल गेहूँ की रोटी को गाय के घी में तर करके खाने से ४० दिन में कोढ़ जाता रहता है।

छिरेटा

नाम—संस्कृत—पाताल गरुड़ी, दृढ़कांडा, दीर्घवल्ली, महामूला, सोमवल्ली, वनतिक्तिका, तिक्तांगा इत्यादि। हिन्दी—छिरेटा, पातालगरुड़ी, हियर, जलजमनी, जमटी की बेल, फरीद बूटी। गुजराती—वेवड़ी, वेव, पाताल गलोरी। काठियावाड़—वधीनोवेलो। मराठी—वासनवेल, वसनवेल, परवेल हुन्देर, भुइपाड़। बंगाल—हरोर, शिलिंदा, चिलिंदा। कोंकण—वनतिक्तिका। फारसी—फरीद बूटी। उर्दू—फरीद बूटी। मूसाकानी। बलुचिस्तान—अफबंद, झमूर। लेटिन—Cocculus Villosus, [कोक्यूलस व्हिलोसस] C. Hirustus (को० हिरुस्टस)।

वर्णन—छिरेटा की बेलें बरसात के दिनों में सब दूर पैदा होती हैं। कहीं-कहीं ये बारहों महीने देखी जाती हैं। यह पहाड़ों पर नहीं होती। इसकी बेलें बहुत लम्बी और जमीन पर फैली हुई रहती हैं अथवा यदि नजदीक में कोई वृक्ष हो तो उस पर चढ़ जाती हैं। इस सारी बेल के डंठलों पर सफेद बाल के रोएँ होते हैं। इसके पत्ते नागरवेल के पत्तों की तरह होते हैं। एक ही बेल पर और एक ही डाली पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्ते नजर आते हैं। इसके फूल सब्जी माइल पीले रंग के, बहुत छोटे होते हैं। इसके फल भी बहुत छोटे, कच्ची हालत में हरे और पकने पर बैंगनी हो जाते हैं। इनमें कालारस भरा हुआ रहता है। इसके पत्तों को पानी में मसल देने से पानी जम जाता है। इसीलिये इसको जलजमनी कहते हैं। इस बेल की जड़ में बहुत गहरा एक कन्द निकलता है। इसीसे इसका नाम पातालगरुड़ी रक्खा है। औषधि में इसके पत्ते और इसकी जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से छिरेटा मधुर, वीर्यवर्धक, रुचिकारक तथा दाह, पित्त, रुधिर विकार और विष के उपद्रवों को नष्ट करने वाला है। इसकी जड़ उष्ण वीर्य, पसीना लाने वाली, मूत्रल, बलवर्धक ज्वर नाशक, वायु के विकारों को दूर करने वाली, शोधक और मृदु स्वभावी होती है। मूत्र मार्गों के ऊपर यह ग्राही और शामक क्रिया करती है। इसके पत्ते जलन को शान्त करने वाले, मुत्रल, सूजन को नाश करने वाले और दुग्धवर्धक होते हैं।

हब्सबूलर के मतानुसार इसका लुआब दूध के साथ लेने से अनैच्छिक वीर्यस्राव में लाभ पहुँचाता है। खाँसी में भी यह लाभदायक है। आँखों की पलकों की सूजन दूर करने में भी इसका उपयोग किया जाता है।

मुरे के मतानुसार सिन्ध में इसकी जड़ें और पत्ते सिर दर्द और स्नायु के शूल में लाभदायक माने जाते हैं।

फरमा कोपिया ऑफ इण्डिया के मतानुसार इस वनस्पति में सम्भवतः गिलोय के पौष्टिक गुण भी रहते हैं।

गुजरात, काठियावाड़ और कोंकण में यह एक लोकप्रिय और घरेलू औषधि है। वहाँ पर इसकी जड़ों को बकरी के दूध में उबाल कर उसमें पीपर, सूंठ और मिर्च डालकर पुराने आमवात, चर्मरोग और उपदंशजन्य सन्धिवात में देते हैं। इसके पत्तों का रस शीतल होने की वजह से जीरा और शक्कर के साथ नये सुजाक में बहुत लाभ पहुँचाता है। चोट, सूजन, मोच, रगड़ इत्यादि व्याधियों पर इसके पत्तों को गरम करके बाँधते हैं।

सन्धिवात, विस्फोटक, खुजली तथा उपदंश की वजह से पैदा होने वाले रक्तविकारों पर यह सारसापरेला की तरह लाभ पहुँचाती है और ऐसे रोगों में इसकी दो तोला जड़ को ७ काली मिर्च के साथ पीसकर ६० तोला पानी में उबालते हैं। जब ५ तोला पानी शेष रह जाता है, तब उसको पिलाया जाता है।

इसकी जड़ में से बहुत गहराई पर एक कन्द निकलता है। ऐसा कहा जाता है कि इस कन्द को घिसकर पानी के साथ पिलाने से उल्टी होकर साँप का विष तत्काल नष्ट हो जाता है। इसी से इसका नाम संस्कृत में पाताल गरुड़ी रक्खा गया है।

इसके सिवाय इस औषधि में एक और महत्वपूर्ण गुण पाया जाता है। जिन लोगों को अफीम खाने का व्यसन पड़ जाता है और वह किसी प्रकार नहीं छूटता, उन लोगों को अगर धीरे-धीरे अफीम कम करते हुए उसके बदले में छिरेटे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

की जड़ का चूर्ण दिया जाय तो धीरे-धीरे अफीम का व्यसन छूट जाता है। यह चूर्ण शुरू में १ तोले की मात्रा में देना चाहिये और इसके पश्चात् धीरे-धीरे कम करते जाना चाहिये। इस औषधि के सेवन से सिर में चक्कर आते हैं और उल्टी भी होती है। इसलिये इसके ऊपर मिश्री मिले हुए दूध में १॥, २ रत्ती जायफल का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रकार एक दो मास लगातार इस औषधि का प्रयोग करने से २० वर्ष का पुराना अफीम का व्यसन भी छूट जाता है।

इस वनस्पति में दूसरा चमत्कारिक गुण यह बतलाया जाता है कि इसके जरिये पारे की अग्नि स्थाई गोली बनाई जा सकती है। इसकी तरकीब इस प्रकार है—

छिरेटे के पत्ते और आकड़े के कुछ कच्चे और पके पत्ते समान भाग लेकर उनका १ सेर रस निकाल लेना चाहिये। उसके बाद मिट्टी की एक सरावली लेकर उसे चूल्हे पर रखकर नीचे धीमी आँच लगाना चाहिये। फिर उसमें उस रस का कुछ हिस्सा डालना चाहिये। जब रस गरम होकर उफान देकर नीचे बैठ जाय तब उसमें ७ तोला पारा डाल देना चाहिये। जैसे-जैसे नीचे का रस जलता जाय वैसे-वैसे ऊपर से नया रस डालते जाना चाहिये। इस प्रकार जब सब रस जल जाय तब उस सरावली को नीचे उतार लेना चाहिये। इस प्रकार १० दिन में १० सेर रस पचा देने के पश्चात् पारे की गोली बन जाती है। ऐसा कहा जाता है। [जंगलनी जड़ी बूटी]

उपयोग—सुजाक—छिरेटा के २ तोले पत्तों को पानी में पीसकर छान लें और प्रातःकाल पी लें। ऊपर से २, ३ माशे मिश्री चबा लें। पथ्य में बिना नमक की रोटी और थूली खूब घी के साथ खायें। ७ दिन तक इसका सेवन करने से सुजाक जड़ से जाता रहता है।

उपदंश और गठिया—इसकी ताजा जड़ के २ छटांक क्वाथ में बकरी का २॥ छटांक दूध मिलाकर उस पर कुछ काली मिर्च का चूर्ण डालकर, प्रातःकाल पिलाने से गठिया और गर्मी की वजह से होनेवाले दूसरे उपद्रव मिटते हैं।

हाजमे की कमजोरी—इसके ६ माशे चूर्ण में शक्कर और सोंठ मिलाकर देने से पित्त की वजह से पैदा हुई हाजमे की कमजोरी मिटती है।

नारू—इसको पानी के साथ पीसकर पिलाने से नारू मिट जाता है।

मात्रा—इसकी जड़ के रस की मात्रा ४ माशे तक और पत्तों की मात्रा ४ माशे से ७ माशे तक है।

छोंकर (खेंजड़ा)

नाम—संस्कृत—शमी, भादरा, दुरितदामिनी, हविरगन्धा, केशहन्त्री, लक्ष्मी, पापनाशिनि, शक्तुफला, शान्ता, शिवा इत्यादि। हिन्दी—छोकर, छिकुर, खेजड़ा, सफ़ेद कीकर। गुजराती—खेजड़ी, खीजड़ो। बंगाल—शाई गाछ, छुइ बाबला। मराठी—शमी, लघुशमी। पंजाब—जंड, जड़ी। बम्बई—शमी, शंबरी। मारवाड़ी—खेजड़ा, कजरा। तेलगू—जंबी, जांबी, प्रियादर्शिनी। तामिल—जम्बू, कलिसम। अंग्रेजी—Spunge Tree [स्पंज ट्री] लेटिन—Prosopies Spicigera [प्रोसोपिस स्पिकीगेरा]।

वर्णन—यह वृक्ष पंजाब, सिन्ध, राजपूताना, गुजरात, बुन्देलखण्ड इत्यादि प्रान्तों में बहुत अधिक तादाद में होता है। खेजड़े के वृक्ष १५ से लेकर ३० फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके फूल कुछ सफेदी लिये हुए पीले रंग के और लम्बी कलगी की तरह आते हैं इसके पापड़े सफेद रंग के ४ से लेकर ८ इञ्च तक लम्बे होते हैं। एक-एक पापड़े में १० से लेकर १५ तक बीज निकलते हैं। ये पापड़े थोड़ी मात्रा में बैलों के लिए पौष्टिक खाद्य होते हैं। अधिक मात्रा में ये नशीले और जहरीले हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से खेजड़ा कड़वा, चरपरा, शीतल, कसैला, रोचक, हलका तथा कफ, खाँसी, भ्रम, श्वास, कोढ़, बवासीर और कृमि को दूर करता है। इसका फल पित्तजनक, रूखा, बुद्धिवर्धक और केशों को नष्ट करने वाला होता है। (भावप्रकाश)

खेजड़ा—रूखा, कसेला, शीतल, हलका, कड़वा, चरपरा, दस्तावर तथा रक्तपित्त, अतिसार, कुष्ठ, बवासीर, श्वास, खाँसी, कफ, भ्रम, कम्प और थकावट को नष्ट करने वाला है। इसका फल तीक्ष्ण, पित्तजनक, मेधाजनक, भारी स्वादिष्ट, रूखा, गरम और केशनाशक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसकी छाल खुश्क, कसेली, कटु और तेज स्वाद वाली होती है। यह शीतल कृमिनाशक और पौष्टिक है। कोढ़, पेचिश, वायु नलियों का प्रदाह, दमा, धवल रोग, बवासीर, मस्तिष्क की विक्रांति और मज्जाओं के कम्पन में यह लाभदायक है। इसके पत्तों का धुआँ नेत्रों की तकलीफ में उपयोगी है।

सुश्रुत और योगरत्नाकर के मतानुसार यह वृक्ष साँप के विष पर लाभदायक है। सुश्रुत के मतानुसार इसका छिलटा बिच्छू के काटने पर भी उपयोगी है।

केस और महस्कर के मतानुसार इस वनस्पति के सब हिस्से सर्प विष में निरुपयोगी हैं।

पंजाब के अन्दर इसका पापड़ा संकोचक माना जाता है। मध्यप्रदेश में इसकी छाल सन्धिवात के उपयोग में ली जाती है।

हब्स बूलर के मतानुसार झलवान के सरूमा नामक गाँव में गर्भवती स्त्रियाँ इसके फूलों को शक्कर के साथ लेती हैं, जिससे गर्भपात होने का डर नहीं रहता।

उपयोग— आग से जलने पर—खेंजड़े के पाले को पीसकर दही में मिलाकर लेप करने से अग्नि से जले हुए स्थान पर शान्ति मिलती है।

नख और दाँतों के जहर पर— खेंजड़ा, नीम की छाल, वड़की छाल, तीनों को पीसकर लेप करने से नख और दाँतों से पहुंचे हुए जंगम विष पर लाभ पहुँचता है।

प्रमेह— खेंजड़े के कोमल कोंपले १ तोला लेकर उसमें ३ माशे जीरा मिलाकर बारीक पीस लेना चाहिये। उसके बाद गाय का कच्चा दूध पाव भर लेकर उसमें उसको मिलाकर कपड़े में छान लेना चाहिये। फिर उसमें सफेद जासूद की जड़ आधा तोला और मिश्री दो तोला मिलाकर पी लेना चाहिए। इस प्रकार १४ दिन तक पीने से प्रमेह नष्ट होता है। यह योग गर्मी के अन्दर भी लाभ पहुँचाता है।

[वनौषधि गुणादर्श]

छिरवेल

नाम—संस्कृत—अर्कपुष्पी, दुर्धर्षी, जलकांडका, जीवन्ती, क्षीरोदधि, शीतला, शीतपर्णी, सूर्यवल्ली। हिन्दी—छिरवेल। बम्बई—दूदोली, सीदोरी, तुलतुली। गुजराती—खरनेर, खीरवेल। मराठी—शिरदोड़ी, तुलतुली, खानदोड़की। मुंडारी—अपंग। संथाल—अपंग, भोटो राख। तेलगू—पले किरे। तामील—पलपुर। लेटिन—Holostemma Rheedii [होलोस्टेमा रेडी]

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय, बरमा और कोकण में बहुत पैदा होती है। यह एक बड़ी जाति की झाड़ीनुमा वेल होती है। इसके पत्ते गिलोय के समान मोटे, गोल, नोकदार और जाड़े, फूल लाल और सफेद तथा सुगन्धित और उनके ऊपर छत्रो के आकार के तुर्रे रहते हैं। इसके पत्ते मोड़ने से दूध निकलता है। इसकी डोड़ी नुकीली होती है। इसके बीज लम्बे और पतले रहते हैं। इसकी जड़ें खाकी रंग की और जड़ों की छाल मोटी होती है।

इसी वेल की तरह दीखने वाली एक और दूसरी वेल होती है। जिसको विषदोड़ी, भुइ दोड़ी तथा लेटिन में टायलोफोरा-फेसिक्यूलेटा कहते हैं। यह वेल बहुत जहरीली होती है इसलिए छिरवेल के बदले में यह न आ जाय, इसकी पूरी सावधानी रखनी चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—यह वनस्पति मीठी, धातु परिवर्तक, आँतों को सिकोड़ने वाली शीतल, मूत्रल और सूजन को नाश करने वाली होती है।

नये सुजाक में इसकी जड़ों का काढ़ा जीरा मिश्री और दूध के साथ देने से मूत्र नलियों की जलन कम होती है। पेशाब अधिक होता है और सुजाक मिट जाता है। इसकी जड़ों को पीसकर उसका लेप आँखों पर करने से नेत्र रोगों में लाभ होता है। अनैच्छिक वीर्यस्राव में इसकी जड़ को सुखाकर पीसकर दूध और शक्कर के साथ दिन में दो वक्त दिया जाता है।

इसके पत्ते को पीसकर और तेल में मिलाकर गले पर बांधने से गले की गठानों की जलन कम होती है। वे जल्दी पक कर फूट जाती हैं और उनका जखम जल्दी भर जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

संयाल जाति के लोग इसके काढ़े को खांसी और अण्डकोष की सूजन में उपयोग में लेते हैं। मुंडा जाति के लोग इसको पेट के दर्द में काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ें शीतल और धातु परिवर्तक होती हैं। ये आँख की बीमारी में काम में ली जाती हैं।

नाम—संस्कृत—सप्तपर्ण, शारद, गृहनाश, सूतिपत्र, मदगन्ध, देववृक्ष, बहुपर्ण, शाल्मलिपत्रक, गन्धपर्ण, इत्यादि। हिन्दी—छतिवन, सतवन, सतोना, छातियान, शैतान का भाड़। बङ्गाल—छाटीन, छतिनगाछ। गुजराती—सातवण वृक्ष, सप्तपर्ण। मराठी—सातविण। वरमा—लेटोप, टोंगमियोक। कनाड़ी—एलेलेहेल, हाले, जंत्रहेन, कोडेल, मुधोल, मुडी-हाले। अंग्रेजी – Dita Bark [डिटा बार्क]। लेटिन—Alstonia Scholaris [अलस्टोनियां स्कालेरिस]।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष है, जो भारतवर्ष के दक्षिणी हिस्सों में और सिलोन में बहुत पैदा होता है। इसकी पैदावार विशेषकर सूखे जङ्गलों में होती है। इसके पत्ते सेमर के पत्तों की तरह होते हैं। इसी से प्राचीन जमाने में इसका नाम सप्तच्छद रक्खा गया था। इसका दूध कड़वा होता है। इसकी छाल भूरी और खुरदरी होती है। इसके पत्ते कटी हुई किनारों के लम्बे, गोल, ऊपर की बाजू गहरे हरे और नीचे की बाजू फीके हरे रहते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिए हुए सफेद रंग के रहते हैं। इसका फल लम्बगोल रहता है और इसमें बीज रहता है। औषधि प्रयोग में इसकी छाल काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से छतिवन कड़वा, कसैला, उष्णवीर्य, स्निग्ध, भूख बढ़ानेवाला, मृदु-विरेचक, कृमिनाशक और दूध बढ़ानेवाला होता है, यह हृदयरोग, दमा, धवलरोग, व्रण, रक्तविकार, त्रिदोष, अर्बुद और पुराने घावों को नष्ट करता है। दाँतों की सड़ान में भी यह लाभ पहुँचाता है।

इस वृक्ष की छाल संकोचक, पौष्टिक, कृमिनाशक, धातु परिवर्तक और ज्वर नाशक है। जीर्णातिसार या पुराने पेचिश में भी यह लाभदायक है। इसका दूध व्रण पर लगाने से व्रण जल्दी भर जाता है। इसे तेल के साथ मिला कर कान में डालने से कान का दर्द मिटता है। इसके नाजुक पत्तों को भूँजकर पानी में पीसकर पुल्टिस बनाकर खराब फोड़ों पर बाँधने से फायदा होता है।

फिलीपाईन द्वीप समूह में यह एक बहुत ही लोकप्रिय औषधि है। वहाँ इसे ज्वर और पेचिश के अन्दर काम में लेते हैं। कम्बोडिया में इसकी छाल संकोचक, पेचिश को नाश करने वाली और ऋतुस्राव नियामक मानी जाती है। इसे यकृत सम्बन्धी शिकायतों में, पुराने उदर रोगों में और तिल्ली की शिकायतों में काम में लेते हैं।

सुश्रुत और योगरत्नाकर के मतानुसार इसकी छाल अन्य औषधियों के साथ सर्पविष को नष्ट करने के लिये दी जाती है। केस और महस्कर के मतानुसार सर्प और बिच्छू के विष में इसकी छाल बिलकुल निरुपयोगी है।

मलेरिया ज्वर और सतवन वृक्ष—उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त आधुनिक युग में इस औषधि के अन्दर मलेरिया ज्वर को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति का पता लगता है। आजकल मलेरिया ज्वर को नष्ट करने के लिए प्रत्येक स्थान पर क्विनाइन का उपयोग करने का रिवाज बहुत प्रचलित है, मगर उसमें यह कठिनाई होती है कि क्विनाइन उसी हालत में रोगी को दी जा सकती है जब कि उसके अन्दर ज्वर का अंश न हो चढ़े हुए ज्वर में उसका कोई उपयोग नहीं होता। इसलिए कई स्थानों पर क्विनाइन निरुपयोगी हो जाती है। इसके अतिरिक्त क्विनाइन की प्रतिक्रियायें भी बहुत खराब होती हैं अगर उसको कुछ अधिक मात्रा में कुछ अधिक समय तक दिया जाय तो कान में बहरापन, पेट में मन्दाग्नि इत्यादि कई उपद्रव खड़े हो जाते हैं। मगर सतवन के उपयोग से ये सब खराबियाँ पैदा नहीं होतीं। कलकत्ता के मनिला अस्पताल में मलेरिया के अनेकों रोगियों पर इसके परीक्षण किये जा चुके हैं और उन परीक्षणों में यह औषधि बहुत सफल साबित हो चुकी है और यह सिद्ध हो चुका है कि मलेरिया ज्वर में यह कुनेन के समान ही फायदा पहुँचाती है। मगर कुनेन से होने वाला नुकसान इससे नहीं होता।

डाक्टर ग्रूप ने इस वृक्ष की छाल से डिटेनिन नामक सत्व की खोज की है। यह सत्व भी ताजी छाल की तरह निरुपद्रव ढंग से मलेरिया ज्वर पर अपना प्रभाव बतलाता है।

सर जार्ज वाट अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "दी इकानॉमिक प्राडक्ट्स ऑफ इण्डिया" में लिखते हैं कि इस वृक्ष की छाल ग्राही, पौष्टिक, रक्त सुधारक और कृमिनाशक होती है। यह एकांतरा, तिजारी, चौथिया इत्यादि मलेरिया के कीटाणुओं

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

से सम्बन्ध रखने वाले ज्वरों पर उपयोग में ली जाती है। इसकी छाल में से निकलने वाला डिटेनिन नामक सत्व क्विनाइन के बदले में मलेरिया ज्वर पर सफलतापूर्वक दिया जा सकता है।

इण्डियन प्लांट्स एण्ड ड्रग्स के लेखक डॉक्टर नाँडकरनी लिखते हैं कि डिटेनिन इस वृक्ष की छाल में पाया जाने वाला गुणकारी तत्व है जिसमें कि ऊँची से ऊँची जाति के सल्फेट ऑफ क्विनाइन के समान ही मलेरिया ज्वरों को रोकने की शक्ति है। क्विनाइन से होने वाली प्रतिक्रियाएँ भी इससे नहीं होतीं।

डाक्टर कोमान के मतानुसार इस वनस्पति की छाल एक तेज, पौष्टिक और ज्वरनिवारक पदार्थ मानी जाती है। इसके सत्व और इसके काढ़े मलेरिया ज्वर के कई रोगियों पर अजमाये गये और उनका परिणाम सन्तोषजनक रहा। यद्यपि क्विनाइन के मुकाबिले में इससे अधिक समय में फायदा होता है, किन्तु इसमें ज्वरनाशक गुण निश्चित पाया जाता है। अदरक के साथ में यह पौष्टिक औषधि का काम करती है।

प्रसूतिकाल में अगर पहले दिन से ही इसकी छाल को दूसरे सुगन्धित और ज्वरनाशक द्रव्यों के साथ दिया जाय तो प्रसूता को ज्वर नहीं होता, अन्न भली प्रकार पचता है और दूध खूब छूटता है। ज्वर के पश्चात् अथवा प्रसूतिकाल के पश्चात् जब थकावट मालूम होती है, अन्न नहीं पचता है और शरीर में फीकापन रहता है, ऐसी हालत में सतवन के प्रयोग से अच्छा लाभ होता है।

त्वचा के ऊपर भी इस औषधि की अत्यन्त प्रत्यक्ष और उत्तेजक क्रिया होती है। इसलिये चर्म रोगों में भी यह औषधि अच्छा लाभ पहुँचाती है। पुराने व्रणों के ऊपर इसकी छाल का लेप किया जाता है। सड़े हुए व्रणों के ऊपर इसके कोमल पत्तों को गरम करके उनको पीसकर उनका लेप करने से अच्छा लाभ होता है। रक्त-पित्त में इसका घन क्वाथ चोबचीनी के साथ दूध के अनुपान से दिया जाता है।

यह वनस्पति आमाशय की शक्ति को बढ़ाकर पाचन-क्रिया को दुरुस्त करती है। इसलिए जीर्णज्वर के साथ होने वाले अजीर्ण में उसकी छाल के चूर्ण को १० रत्ती की मात्रा में काली-मिर्च और सेन्धे नमक के साथ देने से बहुत लाभ होता है। जीर्ण अतिसार और आँव रोग में भी इसका काढ़ा एक मूल्यवान औषधि है। जीर्ण आमवात और सन्धियों की सूजन में इसकी छाल का लेप करने से फायदा होता है।

मात्रा—इसकी छाल के चूर्ण को २ तोले की मात्रा में लेकर उसका क्वाथ या शीत निर्यास बनाकर देना चाहिये। छाल के चूर्ण की मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक की है। इसकें सत्व-डिटेनिन की मात्रा ५ रत्ती से १० रत्ती तक की है। इसके घनसत्व की मात्रा १॥ माशे से ६ माशे तक की है।

बनावटें—ज्वर नाशक क्वाथ—छतिवन की छाल, नीमगिलोय, अडूसे के पत्ते, नागरमोथा, भोजपत्र, खेर की छाल और नीम की अन्तर छाल—इन सब चीजों को समान भाग लेकर कूटकर ४ तोले की मात्रा में लेकर ६४ तोला पानी में औटाना चाहिये। जब ८ तोला पानी शेष रह जाय तब उसको सवेरे के टाइम में पिलाना चाहिये। जिन रोगियों को सतत ज्वर रहता हो, शरीर में से बुखार नहीं निकलता हो, उसका बुखार इस औषधि से बिलकुल निकल जाता है।

छोटा चांद (सर्पगन्धा)

नाम—संस्कृत—चन्दसुरा, चन्द्रिका, नागगन्धा, नकुलेष्टा, रक्तपत्रिका, सुगन्धा, सुरसा, वसुपुष्पा, विषनाशनि, अहिलता, अहिमर्दिनी, भाद्रा। हिन्दी—सर्पगन्धा, छोटा चांद, हरकई चांद, नकुलिकन्द, इसरोल। बंगाल—चन्द्र, छोटा चांद। बम्बई—चन्द्र, छोटा चांद, अमेलपोदी। बिहार, उड़ीसा—धान मरवा, धानवरुआ। कनाड़ी—चन्द्रिका, गरुड़ पाटला, शिव नामी, सूत्रनामी। मराठी—मुगसावेल, सापसन, मुडारि—नागवेल। तामिल—सोअन्नमिवोरी। तेलगू—दुम परसन, पाटलगन्धि, पाटला गरुड़। लेटिन—Rauwolfia Serpentina [रौलफिया सर्पेंटिना]।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में सरहिन्द से पूर्व की तरफ बरमा, अण्डमान, कोंकण, उत्तरी केनेडा, मद्रास, सिलोन और जावा में होती है। मैदानों में मुरादाबाद से सिक्किम तक ४००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। दक्षिणी घाट में ट्रावनकोर से सिलोन तक और उत्तरी बिहार, पटना और भागलपुर के जंगलों में पैदा होती है। यह एक प्रकार की पराश्रयी झाड़ीनुमा लता है। इसकी छाल फीके रंग की होती है। इसके पत्ते ७½ से १८ सेन्टीमीटर तक लम्बे और २-५ से ६·३ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। ये बर्छी आकार के तीखी नोक वाले रहते हैं। इसका फल पकने पर बैंगनी या काले रंग का होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ कड़वी, कसेली, गरम, तेज और चरपरी होती है। यह कृमिनाशक, त्रिदोष में फायदा पहुँचाने वाली और सर्प तथा बिच्छू के विष को नष्ट करने वाली होती है।

भारतवर्ष और मलाया प्रायद्वीप के अन्दर बहुत पुराने समय से इसकी जड़ें जहरीले सर्प तथा जहरीले कीटाणुओं के विष पर उपयोग में ली जाती है। इसे बहुत से स्थानों पर ज्वर निवारक वस्तु की तौर पर भी काम में लेते हैं। यह गर्भाशय की सिकुड़न को उत्तेजित करती है और गर्भस्थ सन्तान को बाहर निकाल देती है।

सर्पगन्धा और पागलपन—आधुनिक युग में नवीन खोजों के अन्दर इस वनस्पति में एक और बहुत महत्वपूर्ण गुण का पता लगा है। निद्रानाश, वहम और पागलपन के लिये यह एक बहुत उपयोगी दवा साबित हुई है। यद्यपि इसके इन गुणों का पता प्राचीन औषधि-ग्रंथों में नहीं है, फिर भी बिहार के रहने वाले गरीब लाग इन गुणों को बहुत समय पहले से ही जाने हुए हैं। वहाँ पर छोटे बच्चों को सुलाने के लिए इस औषधि का उपयोग अब भी किया जाता है। संयुक्त प्रान्त और बिहार में यह दवा पागलपन की दवा के नाम से बेची जाती है। इसका उपयोग देशी वैद्यों में अब भी सर्वसामान्य रूप से किया जाता है। यह औषधि कितनी लोकप्रिय है, इसका अन्दाज इसी बात से किया जाता है कि सिर्फ बिहार में ही यह प्रतिवर्ष कई मनों की तादाद में बेची जाती है।

रसायनिक विश्लेषण—देशी औषधियों में इसकी तारीफ अधिक होने के कारण कई लोगों ने इसके रासायनिक तत्वों के विषय में जाँच पड़ताल की है। सन् १९३१ में सेन और बोस ने इसकी जड़ में दो उपचार पाये। ये उपचार इसमें काफी तादाद में पाये जाते हैं। इनका अनुपात सूखी जड़ों में १ प्रतिशत रहता है। इसके अतिरिक्त इसकी जड़ों में रेजिन, पोटेशियम कारबोनेट, फासफेट सिलिसेट, लोहा और मेगनेशिया भी पाये जाते हैं।

एस. सिदीकी और आर० एच० सिदिकी ने सन् १९३१ में इसमें ५ नये उपक्षार पाये। इन पांचों ही उपक्षारों के नीचे लिखे हुए ५ नाम रक्खे—

(१) अजमे लाइन—यह ·१ प्रतिशत पाया जाता है।
(२) अजमेली नाइन—यह ·०५ प्रतिशत पाया जाता है।
(३) अजमेली साइन—यह ·०२ प्रतिशत पाया जाता है।
(४) सर्पेण्टाइन—यह ·०८ प्रतिशत पाया जाता है।
(५) सर्पेंटिनाइन—यह ·०८ प्रतिशत पाया जाता है।

कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन और हाइजिन के रसायन विभाग में इसके परीक्षण चल रहे हैं। सिर्फ एक ही उपक्षार अभी तक पृथक किया गया है। यह अलकोहल, ईथर, क्लोरोफार्म और बेंझिल में घुल जाता है। मगर गरम पानी में बहुत कम घुलता है। इसका हाइड्रोक्लोराइड ठंडे पानी में अच्छी तरह घुल जाता है।

सिद्दिक और सीद्दीकी ने इसके क्रियाशील तत्वों का अध्ययन करके जाहिर किया है कि इसमें पाये जाने वाले सफेद और पीले दोनों प्रकार के तत्वों में भिन्न-भिन्न गुण हैं। अजमेलाइन वर्ग के तीनों सफेद तत्व हृदय के ऊपर अवसन्नताकारक प्रभाव डालते हैं। ये श्वास-प्रश्वास की क्रिया और स्नायु-मण्डल पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। दूसरे सर्पेण्टाइन वर्ग के पीले तत्व हृदय पर तो उत्तेजक प्रभाव डालते हैं। किन्तु स्नायु-मण्डल और श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर निष्क्रियता का प्रभाव डालते हैं। ये परिणाम मेढकों के ऊपर इसको अजमाकर निकाले गये हैं। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मनुष्यों के ऊपर भी इसके इसी किस्म के प्रभाव नजर आवेंगे या नहीं।

सेन और बोस ने बड़ी जाति के प्राणियों पर भी इसके परीक्षण किये। उन्होंने इसे बिल्लियों पर भी अजमाया। वे इस निर्णय पर पहुँचे कि इस सारी वनस्पति के जलीय तत्व जो प्राणियों के शरीर में पहुंचाये गये, उनका कोई चमत्कारिक प्रभाव नजर नहीं आया। इसके रेजिन्स को अलग करके उनको भी अजमाया गया किन्तु इनका भी कोई विशेष प्रभाव नजर नहीं आया। सिर्फ गर्भाशय के मज्जाओं को कुछ उत्तेजना पहुँची। लेकिन इसके उपक्षारों की परीक्षा की गई और उनका निश्चित असर पाया गया। इनसे रक्तभार (Blood Pressure) कुछ गिरा हुआ दिखलाई दिया और श्वासोच्छ्वास की क्रिया उत्तेजित पाई गई।

हृदय के मज्जातन्तु भी इससे कुछ अवसन्न हो गये और छोटी आंत तथा गर्भाशय में कुछ ढीलापन पाया गया। यह वनस्पति मुँह से ली जाने पर या इन्जेक्शन के द्वारा पहुँचाई जाने पर कोई नुकसान नहीं पहुँचाती। राय ने सन् १९३१ में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यह बात सिद्ध की कि मामूली खुराक में ली जाने पर यह कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचाती अगर खुराक अधिक मात्रा मे ली जावे तो गहरी नींद आती है। धीरे-धीरे चैतन्यता कम होती जाती है और श्वासक्रिया के निष्क्रिय बन जाने पर मृत्यु हो सकती है।

इस वनस्पति को बहुत पुराने समय से पागलपन की दवा मानते हैं। सेन और बोस ने इस वनस्पति को मानसिक विकृति के रोगियों पर और जिनका रक्तभार अधिक था ऐसे लोगों पर अजमाया। इसकी पीसी हुई जड़ को दिन में दो बार २० से ३० ग्रेन तक की मात्रा में देने से न केवल शांतिदायक असर होता है बल्कि रक्तभार भी घट जाता है। एक सप्ताह के अन्दर ही बीमार का दिमाग ठीक हो जाता है। बहुत से केसों में समय अधिक लगता है। हाई ब्लडप्रेशर में भी इन लोगों ने इस औषधि को संतोषजनक पाया। खास करके फेफड़ों की तकलीफ जिसमें मौयुद है और हृदय के तन्तुओं में कुछ फोड़े पाये जाते हों, यह विशेष लाभदायक है। ज्वर में भी इसकी उपयोगिता बतलाई जाती है। किन्तु अभी तक इस विषय में जोरदार प्रमाण नहीं मिले हैं, सूतिका ज्वर में भी इसकी तारीफ की जाती है किन्तु इस विषय में भी इसे अजमाने की जरूरत है।

अभी तक जो प्रमाण उपलब्ध हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि पागलपन में, स्नायुमण्डल की जलन में और हाई ब्लडप्रेशर में यह एक चमत्कारिक औषधि है।

डिपार्टमेंट आफ फारमेकेलाजी स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडेसिन में इस औषधि पर और भी परीक्षण चल रहे हैं और इसके लिये और भी परिणाम निकलने की शीघ्र ही सम्भावना है।

छोटाकूट

नाम—बंगाल—छोटोकूट, मुयामुयां। मुंडारि—हुरिगंद में। लेटिन—Sagittaria Sagittifolia [सेगिटेरिया सेगिटिफोलिया]।

वर्णन—यह वनस्पति हिन्दुस्तान के सभी मैदानों में पैदा होती है। इसके पत्ते बहुत कोमल, मुलायम और तीखी नोक वाले होते हैं। ये ५ से लेकर २० सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल अक्सर सफेद होते हैं। ये गुच्छों में लगते हैं। फूलों की पंखड़ियाँ लम्बी और गुलाई लिये हुए होती हैं इसकी मंजरी लम्बगोल होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह औषधि प्रसूति काल के पश्चात् गर्भाशय से जो स्राव होता है उसे उत्तेजित करने के काम में ली जाती है। चर्मरोगों में और जरायु के फूल की रुकावट के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

जख्मेहयात (हेमसागर)

नाम—संस्कृत—पर्णबीज, हेमसागर। हिन्दी—जखमहयात, अहिरावण, महीरावण। बंगाल—कोपाटा। कनाड़ी—काडूसले। तेलगू—सिमाजमुदु। मराठी—घाइमारी। द्राविड़ी—मलैकल्ली। फारसी—जखमेहयात। लेटिन—Bryophyllum Calycinum [ब्रायोफिलम केलसीनम]।

वर्णन—यह बहुवर्षायु मांसल क्षुप विशेष रूप से दक्षिणी बंगाल में और साधारण रूप से सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इसका पिंड सीधा, मोटा और पोला, पत्ते किनारेदार, आमने-सामने लगे हुए और फूल बड़े होते हैं। इसकी डालियां जहाँ पृथ्वी को छूती हैं वहीं बीज गिरकर झाड़ खड़े हो जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति व्रणशोधक, व्रणरोपक और रक्त संग्राहक होती है। यह एक दिव्य औषधि है। इसके रस की क्रिया बारीक धमनियों पर होती है। इससे धमनियों का संकोचन होकर उनसे बहने वाला रक्त बन्द हो जाता है। फिर वह रक्त चाहे त्वचा के रस्ते से निकलता हो, चाहे दस्त के, चाहे बवासीर के और चाहे नाक या मुँह के रास्ते से गिरता हो।

रक्त मिश्रित अतिसार के अन्दर इसके पत्तों का रस ३ माशा, जीरा ३ माशा और घी ६ माशा मिलाकर देने से दस्तों से खून का गिरना बन्द हो जाता है और आंतों को उत्तेजना मिलती है। चोट, मोच, रगड़, जखम और व्रण के ऊपर इसके पत्तों को जरा कूटकर गरम करके बाँधने से सूजन, लाली और वेदना कम हो जाती है और घाव जल्दी अच्छा हो जाता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है । दूसरी चिकित्सा की अपेक्षा इसके पत्तों को जखम पर बांधने से बहुत जल्दी लाभ होता है । नये जख्मों पर तो इसके मुकाबिले की दूसरी औषधि नहीं है । हर एक जखम इतनी आसानी से और इतनी जल्दी भरता है कि उसका निशान भी सहसा नजर नहीं आता ।

उपयोग—नेत्ररोग—इसके ताजा पानी में काला सुरमा तीन रोज खरल करके आंखों में आंजने से नेत्र पीड़ा शान्त होती है ।

हैजा—इस बूंटी को पीसकर पिलाने से हैजे में लाभ होता है ।

बवासीर—(१) काली मिर्च के साथ इस बूंटी को पीसकर पिलाने से खूनी और बादी बवासीर में लाभ होता है ।

(२) इसकी छोटी जाति के पत्तों को छाया में सुखाकर पीस लें । रात में सोते समय सात तोला गुड़ खाकर सो जायँ । सबेरे इसके चूर्ण को हथेली भरकर ठंडे पानी के साथ खा लें । इस प्रकार सात दिनतक सेवन करने से बवासीर के मस्से मुरझा कर हमेशा के लिए आराम हो जाते हैं । दवा लेते समय खटाई और बादी की चीजों से पहरेज करें ।

मूत्रावरोध—इस वनस्पति को काली मिरच के साथ पीसकर पिलाने से सुजाक का जख्म, पेशाब की जलन और मूत्रावरोध दूर हो जाते हैं ।

कुष्ठ और उपदंश—पहले कोई उत्तम जुलाब से कोठा साफ करके बाद में इस वनस्पति को काली मिरच के साथ चालीस दिनों तक पिलाने से कुष्ठ और उपदंश के घाव अच्छे हो जाते हैं ।

चर्मरोग—इसके पत्तों को गरम करके चोटपर बांधने से सूजन उतर जाती है । जखम पर बांधने से जख्म भर जाता है । इसके पत्तों का लेप करने से बिगड़े हुए फोड़े आराम हो जाते हैं, और चमड़े का रंग बदलना बन्द हो जाता है । मोच खाई हुई और आग से जली हुई जगहों पर भी इसका लेप लाभदायक है ।

जंगली बादाम

नाम—हिन्दी—जंगली बादाम । बम्बई—जंगली बादाम, पन । कोंकण—कनवेम, रुक, विरोइ । मराठी—गोलदारू, जंगली बादाम । नगलकुड़ा । लेटिन—Sterculia Foetida [स्टेरक्यूलिया फोइटिडा] ।

वर्णन—यह वनस्पति कोंकण, मद्रास प्रांत के समुद्री किनारे पर और मलाया प्रायद्वीप में पैदा होती है । यह एक बड़ी जाति का वृक्ष है । इसकी छाल सफेद, लकड़ी खाकी, पत्ते जुड़मा, फूल लाल और पीले, बीजकोष लम्बा और पकने पर चमकीला लाल रङ्ग का होता है । प्रत्येक बीजकोष में १० से १५ तक बीज रहते हैं । औषध प्रयोग में इसकी छाल और इसका तेल काम में आता है । इसके बीजों में ४० प्रतिशत तेल रहता है ।

गुण दोष और प्रभाव—इसकी छाल पसीना लानेवाली, मूत्रल और विरेचक होती है । यह आमवात और उदर रोगों में उपयोगी मानी जाती है । इसके बीजों से निकाला हुआ तेल साधारण मृदुविरेचक होता है । यह पेट के आफरे को दूर करने वाला और शांतिदायक होता है । अगर इसके बीज असावधानी से निगले जायँ तो वमन और सिर में चक्कर पैदा करते हैं ।

जावा में इसका फल सुजाक में उपयोगी माना जाता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मृदुविरेचक, पसीना लाने वाली और मूत्रल है ।

जंगली अरंडी

नाम—हिन्दी—जंगली एरंडी, उंदर बीबी । संस्कृत—निकुम्भा । बङ्गाल—लाल भेरंड । बम्बई—जंगली एरंडी, उंदर बीबी । तामिल—अदलई, कटमनाकु, दुलिया मनाकू । तेलगू—नेलमिदि । कनाड़ी—करितरू, तोतला बिदर । मलयालम—अतला, नाकदन्ती । फारसी—बेदी अंजीरा । उर्दू—जङ्गली एरंड । लेटिन—Jatropha Glandulifera [जेट्रोफा ग्लेन्ड्यू-लिफेरा] ।

वर्णन—यह वनस्पति दक्षिण में तथा कलकत्ता में पैदा होती है । इसका झाड़ अरंडी की तरह ही होता है । इसके पत्ते लाल रंग के होते हैं । इसके फूल हरे पीले और फली १-३ सेन्टीमीटर लम्बी, गोल, फिसलनी और बीज काले तथा चमकीले होते हैं ।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते ऋतुस्राव नियामक, वेदना शून्यता पैदा करने वाले और खराब स्वाद वाले होते हैं। इसकी जड़ बवासीर में लाभदायक है, इसके पत्ते बिच्छू के काटने पर लगाये जाते हैं और तत्काल असर करते हैं। ये प्रदाह, दमा, वायुनलियों का प्रदाह, कटिवात और पक्षाघात में भी लाभ पहुँचाते हैं। इसके बीज विरेचक होते हैं।

इसकी जड़ को पानी के साथ पीसकर देने से बच्चों का बढ़ा हुआ पेट जुलाब लगकर हलका हो जाता है और ग्रन्थियों की सूजन कम हो जाती है।

इस वनस्पति का रस आँखों की बीमारी में भी लाभदायक है इसके प्रयोग से आंखों में कीचड़ का आना भी बन्द हो जाता है।

इसके बीजों में पाया जाने वाला स्थायी तेल विरेचक गुण वाला होता है। इसको मज्जाओं के व्रण पर, दुष्ट घावों पर, संधिवात और पक्षाघात पर लगाने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति विरेचक है और इसे पुराने व्रण पर लगाने के काम में लेते हैं।

जङ्गली अखरोट

नाम—हिन्दी—जङ्गली अखरोट, अपोला। मराठी—जङ्गली अक्रोड़। बंगाल—अकोला। जंगली अक्रोट। बम्बई—अक्रोट, जंगली अक्रोट। कनाड़ी—नाट्क्रोड्ड। तामिल-तेलगू—नाट्ट अखरोट्ट। लेटिन—Aleurites Moluceana [अलोरटस मोल्यूसीएना]।

वर्णन—यह एक अखरोट की जाति का बड़ा वृक्ष होता है। इसके झाड़ों की कर्नाटक में खेती की जाती है। इसके पत्ते गोल और बर्छी आकार के होते हैं। इसका फल अखरोट की तरह ही लम्बगोल सख्त और मोटा रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसका फल मीठा, तूरा, शीतल, कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है। यह भूख को बढ़ाता है, वात को नष्ट करता है, हृदय रोग और जलन में उपयोगी है, यह कफ और पित्त को बढ़ाता और कब्जियत पैदा करता है। इसके फल का मगज पौष्टिक, तेल विरेचक और फलों की छाल स्तम्भक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौष्टिक, कामोद्दीपक, पेट के आफरे को दूर करने वाला और कफ निस्सारक है। दिमाग, हृदय और यकृत के लिए यह लाभदायक है। वायु नलियों के प्रदाह, बवासीर, आँख से पानी का निकलना, पागल कुत्ते का विष, रगड़न तथा दाद में यह मुफीद है। इसका तेल कामोद्दीपक तथा हृदय को पुष्ट करने वाला होता है। इसके बीजों से प्राप्त किया हुआ तेल १ से २ औंस तक की मात्रा में एक नरम और निश्चित विरेचक है। इससे ३ से लेकर ६ घण्टे के अन्दर दस्त शुरू हो जाती है। इसके प्रभाव की निश्चितता में यह अरण्डी के तेल से मिलता-जुलता है। किन्तु यह अरण्डी के तेल से कई बातों में उत्तम है। यह दुर्गन्धपूर्ण और बदजायका नहीं होता और इसके विरेचन में वमन की प्रवृत्ति नहीं होती।

जंगली सूरण [मदन मस्त]

नाम—संस्कृत—अरण्य सूरण, वज्रकन्द। हिन्दी—मदनमस्त, जंगली सूरण। लेटिन—Amorphophallus Sylvericus [एमोर्फोफेलस सिलवेरिकस]।

वर्णन—यह सूरण की एक जंगली जाति है। इसकी छाल निकाल कर उसके टुकड़े करके उनको डोरी में पिरोकर मदन मस्त के नाम से बेचा जाता है। ये टुकड़े खाकी रंग के होते हैं और पानी में डालने से फूल कर नरम हो जाते हैं। इनका स्वाद कुछ कड़वा और तीखा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह वस्तु अत्यन्त वाजीकरण और कामोद्दीपक होती है। इसकी २० से लेकर ३० रत्ती तक मात्रा दूध और शक्कर के साथ देने से मुत्र मार्ग में बहुत उत्तेजना होती है। कामेन्द्रिय में खुजली छूटती है और उसमें बहुत जोर से उद्दीपन होता है। इस वस्तु के साथ चिकने और पौष्टिक पदार्थ पथ्य में खाने को देना चाहिये नहीं तो कभी-कभी बड़ा त्रास होता है। सुजाक, पथरी, उपदंश इत्यादि मूत्रपिंड के रोगियों को यह औषधि नहीं देना चाहिये।

कोंकण में इसके बीजों को पानी के साथ पीसकर बार-बार ग्रन्थियों के बढ़ने पर लगाने के काम में लेते हैं। चोपरा के मतानुसार यह दन्त रोग और ग्रन्थियों के बढ़ने पर काम में ली जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

एक और जंगली सूरन की जाति जिसे मराठी में बज्रमुत, गोआ में उजोमुत और लेटिन में Synantherias Hylvatica कहते हैं, होती है। यह तिक्त, कृमि नाशक और गरम होती है। देशी वैद्य इसके कुचले हुए बीजों को दांतों की पीड़ा दूर करने के लिए रुई में रख कर पोले दांत में भर देते हैं। इस वनस्पति से स्नायु सम्बन्धी पीड़ा तत्काल शान्त हो जाती है। इसी पीड़ा नाशक गुण के कारण यह रगड़ या मोच लगने पर बाह्य उपचार में भी काम में ली जाती है।

जंगली हलदी

नाम—संस्कृत—बन हरिद्रा। हिन्दी—जंगली हल्दी, बन हल्दी। बंगाल—बन हल्द। बम्बई-कोचीन-हल्द, जंगली हलद। मराठी—बेटी हलद, राण हलद। तामिल—कस्तूरी मंजल। तेलगू—कस्तूरी पसुलु। लेटिन—Curcuma Aromatica [करक्यूमा एरोमेटिका]।

वर्णन—यह हल्दी ही की जाति का एक क्षुप होता है। इसके क्षुप प्रायः जंगलों में लगते हैं। कोचीन और मैसूर प्रान्त में यह बहुत पैदा होता है। इसके पत्ते कोमल होते हैं। बरसात के पूर्व इसके नवीन पत्ते फूटते हैं और उनके साथ ही फूल आते हैं। इसकी जड़ की गठानें खाद और पानी देने पर मुट्ठी के बराबर मोटी हो जाती हैं। इसकी खुशबू हलदी की अपेक्षा अधिक उग्र और कपूर की तरह होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से वन हलदी रुचिकारक, कड़वी, अग्नि दाहक तथा कुष्ठ और रक्तवात को नष्ट करने वाली है।

सर्प विष के अन्दर इसको कूट, अपामार्ग और मेंसिल के साथ देने से लाभ होता है। विस्फोटक, खुजली, मोच, सूजन इत्यादि पर इसका लेप किया जाता है। यह शक्तिदायक भी मानी जाती है।

कोंकण के अन्दर विस्फोटक ज्वर के फोड़े फुन्सियों पर इसका लेप किया जाता है। चोट और रगड़ पर भी दूसरे संकोचक द्रव्यों के साथ इसको लगाया जाता है। गीली खुजली पर और माता के दानों पर भी इसका लेप किया जाता है।

मुसलमान हकीम सर्पदंश के कुछ निश्चित केसों में इस वनस्पति को एक बहुमूल्य औषधि मानते हैं। केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पदंश में उपयोगी नहीं है।

जंगली अदरख

नाम—संस्कृत—बनार्द्रकम्, पेऊ, अरण्याद्रका। हिन्दी—जंगली अद्रक, बन आदा। गुजराती—बन आर्दु। मराठी—रान आलें, मालाबारी हलद। पंजाब—जंगली अदरक। तेलगू—करपुप्पू। लेटिन—Gingibar Cassumunar [झिंझीबार केस्यूमनर]।

वर्णन—जंगली अदरक का पौधा बड़े कुलिंजन के पौधे की तरह होता है, पर इसके पत्ते उससे बड़े होते हैं। इसकी गठानें अदरक या हल्दी की गठानों के समान होती हैं। इसमें कपूर के समान तीव्र गन्ध आती है। इसका स्वाद चरपरा और कुछ कड़वा होता है परन्तु सूख जाने पर ये सब बातें कम हो जाती हैं। यह असाढ़-सावन में फूलता है और कार्तिक-अगहन में फलता है।

गुण दोष और प्रभाव-कोंकण के वैद्य इस वनस्पति को सर्पविष को दूर करने के प्रयोग में लेते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर के अन्दर वे कई दफे इसे पिलाते हैं और दंश-स्थान पर लगाते हैं। पुराने चर्म रोगों में इसको अरीठे और गोमुत्र के साथ उबालकर लगाते हैं और उसके बाद स्नान करवा देते हैं। इस लेप को आँखों के अन्दर जाने से बचाया जाता है। कॉलिक उदरशूल और अतिसार के अन्दर भी इसका उपयोग किया जाता है।

स्त्रियों का आवेश रोग मिटाने के लिये इसके रस में नमक मिलाकर पिलाना चाहिये। शरीर का अगर कोई अंग संज्ञाशून्य हो जाय तो उस पर काली मिरच के साथ इसका लेप करना चाहिये। पेट का आफरा मिटाने के लिए इसके कंद को भोबल में भूनकर छीलकर नमक के साथ खिलाना चाहिये। धनिये के साथ इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से अतिसार मिटता है। इसके रस में गुड़ मिलाकर सुंघाने से अपस्मार रोग मिटता है।

जंगली जायफल

नाम—संस्कृत—कामुक, मलाटी—हिन्दी, यूनानी—जंगली जायफल। मराठी—रान जायफल। तामिल—कट्टुचेदी। मलयालम—पनम पक्ल। लेटिन—Myristica Malabarica [मिरिस्टिका मलाबारिका]।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—जंगली जायफल का वृक्ष कोंकण, कर्नाटक और उत्तरी मलाबार में पैदा होता है। इसके फल को जंगली जायफल, रामफल के नाम से पहिचानते हैं। इसी प्रकार इसकी पत्तियों को रामपत्री या बंबई की जायपत्री कहते हैं। जंगली जायफल दूसरे जायफल की अपेक्षा लम्बा और मोटा होता है। असली जायफल की अपेक्षा इसमें सुगन्धि और तेल थोड़ा पाया जाता है। इसकी जायपत्री पीलापन लिए हुए लाल रंग की होती है। इसमें असली जायपत्री की अपेक्षा खुशबू और स्वाद की कमी रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—जंगली जायफल के साधारण गुण असली जायफल की तरह मगर उनसे कुछ हलके दर्जे के होते हैं। इसके तेल की मालिश करने से गठिया मिटता है। इसको पीसकर लेप करने से बादी का दर्द मिटता है। इसको भूनकर पीसकर दिन में २।३ बार देने से आँव के दस्त बन्द हो जाते हैं। इसको पीकर शहद में चाटने से नींद आ जाती है।

जंगली मदनमस्त

नाम—हिन्दी—जंगली मदनमस्त। मलयालम—तोदमरम। तामिल—पइदुं। लेटिन—Cycas Rumphii [साइकास रंफी] Cycas Circinalis [साइकास सिरसीनेलिस]।

विवरण—यह एक हमेशा हरा रहने वाला खजूर की भाँति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते वृक्ष के सिरे पर ही लगते हैं। ये १५ से लगाकर २५ सें० मी० तक लम्बे होते हैं। इसका फल लम्बगोल होता है। इसका आकार मुर्गी के अण्डे सरीखा होता है। यह रंग में नारंगी या पीला होता है।

उत्पत्तिस्थान—यह ब्रह्मा, मलाया प्रायद्वीप, अण्डमान और निकोबार में होता है। इसे भारत के बगीचों में भी बोते हैं। यह मोरक्को, न्यूगायना और उत्तरी आस्ट्रेलिया में भी पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—कुर्ज के मतानुसार इसका गोंद दुष्ट व्रणों पर लगाया जाता है। इससे बहुत कम समय में ही मवाद पैदा हो जाता है।

कम्बोड़िया में इसकी गठानों को पानी के या चावल के पानी के साथ पीसकर फोड़ों पर, सूजी हुई ग्रन्थियों पर और व्रण वाले घाव पर लगाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह उत्तेजक, कामोद्दीपक और निद्रा लाने वाला होता है। इसमें ग्लूकोसाइड्स रहते हैं।

जटामांसी

नाम—संस्कृत—जटामांसी, जठी, पेशी, लोमशा, जटिला, मांसी, तपस्विनी, चक्रवर्त्तिनी, भूतजटा, भिसी, मिसिका, मृगभक्षा। हिन्दी—जटामांसी, बालछड़। बंगाल—जटामांसी। मराठी—जटामांसी। गुजराती—जटामांसी, बालछड़। तेलगू—जटामांही। पहाड़ी—भूतकेश। यूनानी—सुबुल हिन्दी। लेटिन—Nardostachys Jatamansi [नारडोस्टेकस जटामांसी]।

वर्णन—जटामांसी का क्षुप छोटा, घने पत्तों वाला और बहुवर्षजीवी होता है। यह हिमालय पहाड़ पर बरफीले मैदानों में पैदा होती है। कहीं-कहीं तो यह १७ हजार फीट की ऊँचाई तक भी पैदा होती हुई देखी जाती है। केदारनाथ से लेकर कुमाऊँ और सिक्किम तक तथा नेपाल, भूटान में भी यह पैदा होती है। इसके पत्ते १५ सेन्टीमीटर से २० सेन्टीमीटर तक लम्बे और २ से लेकर ५ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। फूल गुलाबी होते हैं। जो गुच्छों में लगते हैं। इसका फल बड़ा और रुयेंदार होता है। इसकी जड़ें रूओं से ढकी हुई रहती हैं। बाजार में जो जटामांसी बिकती है उसमें बहुत-सी नकली मिलावट की रहती है। इसलिए लेते वक्त इसकी जाँच कर लेनी चाहिये।

इसकी दो जातियाँ और होती हैं जिनमें एक को आकाशमांसी और दूसरी को गन्धमांसी कहते हैं। यह वस्तु खुशबूदार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जटामांसी कड़वी, कसैली, मेधाजनक, कांतिकारक, पौष्टिक, रुचिवर्धक, शीतल, त्रिदोष नाशक और रक्त विकार, जलन, अग्निविसर्प, चर्मरोग, गले की बीमारी और अर्बुद को नष्ट करनेवाली होती है। यह शरीर के सौंदर्य को भी बढ़ाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसकी दूसरी जाति गन्धमांसी कड़वी शीतल, कफ नाशक, रक्त पित्त को मिटाने वाली और विष, भूत बाधा और ज्वर में लाभ पहुँचाने वाली होती है। यह भी सौंदर्य वर्धक है। इसके और सब गुण जटामांसी के तुल्य ही हैं। अन्तर इतना ही है कि इसकी क्रिया मज्जा तन्तुओं पर विशेष होती है।

इसकी तीसरी जाति आकाशमांसी शीतल, सूजन को मिटाने वाली और सौन्दर्यवर्धक है। यह वात नाशक, शीतल तथा भूत बाधा, रक्त पित्त, मसूरिका [शीतला], नाड़ी व्रण [नासूर] और विस्फोटक रोग में लाभदायक है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौष्टिक, उत्तेजक, मूत्र निस्सारक, ऋतुस्राव नियामक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, अग्नि वर्धक और विरेचक होती है। यह आँखों की ज्योति को बढ़ाती है, बालों को काला करती है, खाँसी, पुरातन प्रमेह, सीने के रोग, अंतड़ियों की सूजन और मूत्राशय तथा कटि सम्बन्धी रोगों को दूर करती है। यह घाव को सुखाती और भूख को बढ़ाती है।

इसकी जड़ें सुगन्धित होती हैं। ये कड़वी पौष्टिक और आक्षेप निवारक होती हैं। इनका उपयोग प्रायः मृगी की बीमारी में किया जाता है। गुल्म वायु में भी यह उपयोगी सिद्ध हुई है। हृदय की धड़कन में भी इसका उपयोग किया जाता है।

इस वनस्पति में वेलेरिन [Valerien] नामक औषधि के सब गुण मौजूद हैं। यह आक्षेप निवारक और उदर शूल में मुफीद है। इसका सम्मेलन उन औषधियों के साथ किया जाता है जिनका उपयोग वायुनलियों के प्रदाह में धूम्रपान करने में देते हैं। कोमान का कथन है कि इसके मत का उपयोग उदर शूल और कब्जियत के अन्दर किया गया और उसमें यह उपयोगी पाई गई है।

रावर्ट के मतानुसार इसकी जड़ें पानी के साथ पीसकर वेहोशी के अन्दर आँखों में लगाई जाती हैं।

हिन्दू चिकित्सा शास्त्र में इस वनस्पति का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से किया जा रहा है। इस देश में यह वस्तु सुगन्धित द्रव्य के रूप में काम में ली जाती है। सुश्रुत में इस औषधि को अपस्मार रोग के उपचार में बहुत लाभदायक बतलाया है। भारतीय वैद्य इसको स्नायुमण्डल के रोगों में और पेट के आफरे को दूर करने के उपयोग में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें एक काला राल के समान पदार्थ ६ प्रतिशत, गोंद ९ प्रतिशत तथा भीमसेनी कपूर के समान एक प्रकार का कपूर, एक अम्लद्रव्य और एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है। यह उड़नशील तेल इसमें $\frac{1}{4}$ प्रति सैंकड़ा रहता है। यह तेल ही इसमें पाया जानेवाला सबसे प्रधान द्रव्य है। इसका रंग फीका-पीला और कुछ हरी झाँई लिये हुए होता है। इसमें तीव्र गन्ध आती है।

डॉक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार जटामांसी भूख बढ़ाने वाली, पाचनक्रिया को दुरुस्त करने वाली और कब्जियत से बचाने वाली होती है। इसको खाने पर पेट में कुछ गरमी मालूम होती है, डकार आती है, पसीना छूटता है, पेशाब होता है और नाड़ी सुधर जाती है। अधिक मात्रा में इसको लेने से वमन होती है, पेट में मरोड़ देकर दस्तें होती हैं, मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं पर इसकी पौष्टिक और उत्तेजक क्रिया होती है। थोड़ी मात्रा में इसको अधिक दिन तक लेने से मन शान्त होता है, काम करने का हौंसला बढ़ता है और नाड़ी की गति व्यवस्थित रहती है।

मस्तिष्क और मज्जा तन्तुओं के रोगों पर जटामांसी बहुत लाभ पहुँचाती है।

अतिशय मानसिक परिश्रम की वजह से अथवा और किसी कारण से अगर मन अस्थिर हो गया हो, उसमें थकावट मालूम होती हो, नाड़ी छोटी और शीघ्रता पूर्वक चलती हो तो ऐसी स्थिति में जटामांसी को देने से नाड़ी सुव्यवस्थित होकर मन शान्त होता है। किसी भी प्रकार का मानसिक आघात लगने से अथवा अत्यधिक मानसिक परिश्रम की वजह से पैदा हुए चित्तभ्रम में जटामांसी बहुत शीघ्रता के साथ असर पहुँचाती है। ऐसे रोगों में हींग, [illegible] वगैरह औषधियों की अपेक्षा जटामांसी की क्रिया अधिक शीघ्र, अधिक सुनिश्चित और अधिक उत्तम होती है। भूत प्रेतों की बाधा में जटामांसी को ब्राम्ही के स्वरस, बच और शहद के साथ देना चाहिये।

रक्ताभिसरण क्रिया की खराबी में भी जटामांसी बहुत उत्तम औषधि है। मस्तिष्क में रक्ताभिसरण क्रिया की अधिकता से रक्त भरा हुआ सा दीखने लगता है और पागलपन के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ऐसी स्थिति में इस वनस्पति को देने से प्रत्यक्ष लाभ दिखाई देता है। इसी प्रकार रक्ताभिसरण क्रिया की कमी से जब चक्कर आना, मूर्च्छा, आंखों के आगे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अंधेरा आना, इत्यादि चिन्ह नजर आने लगते हैं, ऐसी हालत में भी जटामांसी को देने से रक्ताभिसरण की गति सुधरकर ये सब लक्षण मिट जाते हैं। मतलब यह कि यह औषधि रक्ताभिसरण की अधिकता और कमी दोनों को मिटाकर उसको सुव्यवस्थित कर देती है। हृदय की शिथिलता, हृदय की धड़कन व हृदय रोग की वजह से पेट में वायु का संचय हो जाता है। ऐसी स्थिति में जटामांसी का रक्ताभिसरण पर होने वाला यह प्रभाव खास हृदय के ऊपर, रक्तवाहिनियों के ऊपर और मज्जा तन्तु और रक्ताभिरण के केन्द्र स्थान पर होता है। इसके सेवन से रक्त वाहिनियों का संकोचन होता है, जिससे रक्त-पित्त, विसर्प और रक्तस्राव के ऊपर भी इस औषधि से लाभ होता है।

बालकों के उदरशूल और पेट फूलने पर और सुशिक्षित लोगों और नाजुक स्त्रियों को होने वाले सूक्ष्म उदर शूलपर तथा बदहजमी और पाचन-नलिका के रोगों पर जटामांसी को नौसादर और दूसरे सुगंधित द्रव्यों के साथ देने से पित्त का संचालन व्यवस्थित हो जाता है और पाचन प्रणाली सुधर जाती है।

ज्वर में अथवा शोथज्वर में जब त्रिदोष कुपित हो जाते हैं और सन्निपात के चिन्ह दीखने लगते हैं, ऐसे समय में जटामांसी मन्त्रशक्ति की तरह काम करती है। इससे रक्ताभिसरण क्रिया सुधरती हैं, मज्जातंतुओं को उत्तेजना मिलती है, गले में और श्वास-नलियों में कफ छूटने लगता है, शरीर की दाह कम होती है और सूजन बिखरने लगती है। ऐसे समय में मालूम होता है कि प्राचीन आचार्यों ने इसको जो त्रिदोषजित् की संज्ञा दी है, वह कितनी युक्तियुक्त है।

चर्म रोगों के अन्दर भी इस औषधि को उपयोग करने का बड़ा रिवाज है। जखम पर या फोड़ों पर इसका लेप करने से दाह और पीड़ा की कमी होती है। विसर्प, कुष्ठ और रक्तपित्त रोगों में जटामांसी को खिलाने से और उसका लेप करने से रोग दूर होकर त्वचा की कांति सुधरती है।

कष्टप्रद मासिकधर्म में जटामांसी को देने से कष्ट की कमी होकर मासिक धर्म शुद्ध होने लगता है। स्त्रियों का मासिक-धर्म बन्द होने के समय या बन्द होने के पश्चात् जो उपद्रव होते हैं, उनको दूर करने में जटामांसी बहुत उपयोगी है।

शरीर की जीवन विनिमय क्रिया बिगड़कर पेशाब में शक्कर या एलब्यूमन जाने लगता है। जटामांसी को देने से पेशाब के अन्दर शक्कर और मूत्रक्षार की कमी हो जाती है और जीवन विनिमयक्रिया सुधर कर शरीर का छीजना बन्द हो जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ों का सत गुल्मवायु, आक्षेप, हृदय की धड़कन और कंपवात में विशेष रूप से लाभदायक होता है।

मात्रा—इसकी जड़ की मात्रा १० से लेकर २० रत्ती तक की है।

उपयोग—रक्त विकार—जटामांसी के शीत निर्यास में शहद मिलाकर पिलाने से रुधिर शुद्ध होकर रक्त विकार मिटता है।

दिल की धड़कन—जटामांसी को पानी में पीसकर लेप करने से दिल की धड़कन मिटती है।

मस्तक पीड़ा—इसको पानी के साथ पीसकर मस्तक या ललाट पर लेप करने से मस्तक पीड़ा मिटती है।

दन्त शूल—इसके चूर्ण का मंजन करने से दन्तशूल मिटता है।

हृदय और कफ के रोग—जटामांसी का शरबत बनाकर पिलाने से हृदय और कफ के रोग मिटते हैं।

कफ की वमन—पौने चार माशे जटामांसी को पानी में पीसकर छान कर पिलाने से कफ की वमन बन्द होती है।

जलोदर—जटामांसी और निमक को सिरके के साथ पीसकर लगाने से जलोदर में लाभ होता है।

अनेक रोग—इसके सेवन से बांयठे, अपस्मार, स्त्रियों का आवेश रोग, मासिक धर्म का कष्ट, मूत्रनली के रोग, पाचन-नली के रोग, श्वास नली के रोग, कामला, गले के रोग और विप-दोष मिटते हैं।

अपस्मार और गुल्म वायु—जटामांसी का चूर्ण १० रत्ती, कपूर १॥ रत्ती, दालचीनी २॥ रत्ती—इन सब चीजों का चूर्ण बनाकर भोजन से पहले लेने से अपस्मार और गुल्म वायु में बहुत लाभ पहुँचाता है। यह औषधि वेलेरियन के मुकाबले ही फायदा करती है। यह इसकी एक मात्रा है।

जदवार

नाम—संस्कृत—अपविषा, अविषा, निर्विषा, विषाभावा, विषहंत्री, इत्यादि। हिन्दी—जदवार, निर्बिषी। मराठी—

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जदवार, निर्वीशी। गुजराती–निर्विशी। सिमला–मनीला। नेपाल—नीलोबिक। अरबी, फारसी व उर्दू–जदवार। लेटिन–Delphinium Denudetum [डेलफिनियम डेन्यूडेटम]।

वर्णन—यह एक क्षुप जाति की वनस्पति है। इसका पौधा नागरमोथे के पौधे के समान और इसका कन्द अतीस के समान होता है। यह नेपाल और तिब्बत में विशेष पैदा होता है। इसके पत्ते ३ से लेकर ३·७ सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल वसन्त ऋतु के आरम्भ में आते हैं। इसकी जड़ कुछ कालापन लिए हुए खाकी रंग की होती हैं। यूनानी मत से इसकी ६ जातियाँ होती हैं। पहली जाति वह होती है जिसकी जड़ ऊपर से मटमैली और भीतर स कुछ ललाई लिए हुए नीली होती है। इसका स्वाद पहले मीठा और बाद में कड़वा मालूम होता है। इस जाति को जदबार खताई कहते हैं। यह सबसे उत्तम होती है। दूसरी जाति भीतर और बाहर दोनों तरफ मटमैले रंग की, पीलापन लिए हुए होती है। यह स्वाद में कड़वी होती है। पहली जाति से यह गुणों मे भी कुछ कम होती है। तीसरी जाति बाहर और भीतर स काला होती है। उसको पानी में घिसने से पानी का रंग नीला हो जाता है। गुणों में यह तीसरे नम्बर का है। ये तीनों जातियाँ तिब्बत और नेपाल के जंगलों में पैदा होती हैं। चौथी जाति दक्षिण के पहाड़ों मे पैदा होती है। इसका स्वाद कड़वा होता है और यह जैतून के फल के बराबर होती है। पाँचवीं जाति को अन्तला कहते हैं। यह एक बालिश्त के बराबर लम्बा, काली, नरम और स्वाद में कड़वी होती है। क्योंकि यह विशेष कर बच्छनाग के साथ पैदा होता है। ऐसा कहा जाता है कि इसको पास रखने से बच्छनाग का जहर असर नहीं करता। जिन स्थानों पर यह पैदा होती है, वहाँ के लोग इसको पास रखकर ३ रत्ती तक खा लेते हैं। इसकी छोटी जाति सफेद, मीठी और खुशबूदार होती है। इसमें थोड़ी-सी तेजी भी होती है।

जो जदवार खुरासान के पूर्व की तरफ के पहाड़ों में पैदा होती है वह छोटी, फीके रंग की और सफेदी लिए हुए होती है। इसमें विष को नाश करने की बहुत शक्ति, होती है। जो जदवार तिब्बत के पहाड़ों में पैदा होता है, वह बड़ी और ताकतवर होती हैं। इसमें विष को नष्ट करने की शक्ति जदवार खताई के बराबर ही होती है। यह हिन्दुस्तान में पैदा होने वाली जदवार से उत्तम होती है। हिन्दुस्तान की जदवार खुरासान वगैरह दूसरे देशों की जदवार से उत्तम होती है।

असली जदवार की पहचान—जदवार के अन्दर कई प्रकार की मिलावटें होती हैं। उसमें से असली जदबार को छाँट लेना बड़ा मुश्किल होता है। कई लोग बच्छनाग की जड़ों को दूध में जोश देकर उनका जहर कम करके जदवार के बदले में बेच देते हैं। इसलिए जदवार को लेते समय उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये।

बच्छनाग और जदवार का फरक—

१—बच्छनाग अक्सर जदवार से पतला और छोटा होता है। उसका रंग लाल होता है।

२—अगर बच्छनाग को तोड़कर जबान पर रक्खें तो जबान में जलन और शून्यता पैदा हो जाती है। कभी-कभी जबान पर छाला भी पड़ जाता है। जदवार से ये बातें नहीं होती।

३—जबान पर बच्छनाग को रखने से जो छाला व जलन पैदा होती है उस पर अगर जदवार को मल दें तो बच्छनाग से पैदा हुई तकलीफ दूर हो जाती है।

४—जदवार और बच्छनाग के स्वाद में भी अन्तर है। जदवार में कड़वापन होता है मगर बच्छनाग में नहीं होता।

५—नकली जदवार ऊपर से खुरदरी और चरसदार होती है, असली जदवार चिकनी और साफ होती है।

६—नकली जदवार ऊपर से रंगीन और भीतर से सफेद होती है, मगर असली जदवार भीतर और बाहर एक रंग की मटमैली या नीली होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जदवार कड़वी, शीतल, व्रण को भरने वाली तथा कफ, वात, रुधिर विकार और विष को नष्ट करने वाली होती है।

इसको गोमूत्र में औटाकर सूजन पर लगाने से सूजन दूर होती है। दाँतों पर मलने से दाँतों का दर्द दूर होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह मूत्रल, शक्ति बर्द्धक, उत्तेजक और ज्ञान तन्तुओं को बल देने वाली है। इसके सेवन से दिल, दिमाग और जिगर को ताकत मिलती है, आँख की ज्योति बढ़ती है, कामेन्द्रिय को बल मिलता है, पेशाब अधिक होता है, सूजन बिखर जाती है, मृगी, लकवा, फालिज इत्यादि ज्ञान तन्तुओं से सम्बन्ध रखने वाले लोगों में लाभ पहुँचाती हैं। जलोदर पीलिया, उदर शूल और मूत्रकष्ट में भी यह लाभदायक है। जहरीले

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

जानवरों के जहर और बच्छनाग के जहर को भी यह दूर करती है, गुर्दे और मसाने की पथरी को तोड़ देती है, कफ के बुखार में लाभदायक है, अगर बच्चा माँ के पेट में मर गया हो और उसका जहर माँ के शरीर में फैल गया हो अथवा बच्चा पैदा होने के समय जच्चा कमजोर हो गई हो और उसका खून अधिक गिरा हो तो उस हालत में जदवार को थोड़ी मात्रा में नोहार मुँह ७-८ दिन तक खिलाने से अच्छा लाभ होता है।

बच्चों को होने वाली मृगी, धनुर्वात इत्यादि दिमाग सम्बन्धी बीमारियों में इसको दूध में पीसकर देने से फायदा होता है। बवासीर के मस्सों पर इसको लगाने से वहाँ की सूजन उपर जाती है। इसको रुई में तर करके बच्चों के गुदाद्वार में रखने से गुदाद्वार के सब कीड़े मर जाते हैं और फिर पैदा नहीं होते हैं।

गिलानी के मतानुसार यह औषधि जहर को दूर करने के लिए एक हुक्मी वस्तु है। इसको सिरके में पीसकर लेप करने से चेहरे की झाई और सफेद दाग दूर हो जाते हैं। इस प्रकार की सूजन फिर वह चाहे वात, पित्त या कफ किसी भी वजह से क्यों न हुई हो, इसके भीतरी और बाहरी प्रयोग से नष्ट हो जाती है। गले की हर किस्म की सूजन भी चाहे वह कण्ठमाला या गण्डमाला से हुई हो, चाहे हलक की खराबी से हुई हो। इसके सेवन से मिट जाती है। सर्दी की सूजन में इसको काली मिरच के साथ और गर्मी की सूजन में धनियाँ के ताजे पत्तों के साथ देनी चाहिये।

इसको पीसकर ताजा और पुराने जख्मों पर छिड़कने से जख्म बहुत जल्दी भर जाता है। हृदय को शान्ति और शक्ति देने के लिए भी यह औषधि बहुत कारगर है। अगर किसी का हृदय सर्दी की वजह से कमजोर हो तो उसको रोजाना ६ रत्ती से १२ रत्ती तक जदवार नीलोफर के शर्बत या गावजबान के अर्क के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचता है। हृदय को शान्ति देने के सम्बन्ध में यह एक दिव्य औषधि है। अगर इसको ४ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन शिकंजवीन के साथ लिया जाय तो जिगर की ऐसी कमजोरी जिससे कि जलोदर पैदा होने का अन्देशा रहता है, मिट जाती है।

अगर किसी का पेशाब रुका हुआ हो और मसाने में फोड़ा हो गया हो तो जदवार के चूर्ण को गोखरू, मकोय, ककड़ी के बीज, और खरबूजे के बीज के साथ शीत निर्यास बनाकर देने से पेशाब खुल जाता है और गुर्दे का दर्द तथा पथरी नष्ट हो जाती है।

काले सर्प के विष में इसको २। माशे की मात्रा में देने से फायदा होता है ऐसा कहा जाता है मगर इसके लिये कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा ४ से १२ रत्ती तक की होती है। जलोदर के रोग में कुछ लोग इसको ३ माशे तक की मात्रा में देते हैं। कामेन्द्रिय की शक्ति को बढ़ाने के लिये इसको २ माशे तक की मात्रा में देते हैं। इससे अधिक मात्रा में लेने से आँतों के अन्दर जख्म पैदा हो जाता है।

मुजिर—यह वनस्पति गरम और खुश्क मिजाज वालों को हानिकारक है। ऐसे लोगों के अन्दर यह सिर दर्द पैदा करती है तथा आँतों में जख्म भी पैदा कर देती है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नष्ट करने के लिये धनियाँ, दूध, कतीरा और शिकंजबीन मुफीद है।

जफ्त बहरी

नाम—यूनानी—जफ्तबहरी।

वर्णन—यह एक प्रकार का काले रंग का तरल पदार्थ होता है जो मिट्टी के तेल की तरह जमीन से निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह वायु को बिखेरता है। सूजन को मिटाता है। लकवा, ग्रन्थिवात, गृध्रसी और जोड़ों के दर्द में लाभदायक है। इसका लेप कुष्ठ में फायदा करता है। टूटी हुई हड्डी पर भी इसको लगाना मुफीद है। यह फेफड़े को नुकसान पहुँचाता है। इसका दर्पनाशक कतीरा है। इसकी मात्रा ७ माशे तक है। [ख० अ०]

जफ्ततर

नाम—यूनानी—जफ्ततर।

वर्णन—यह जंगली सनोवर के पेड़ से टपकने वाला मद है। इसका रंग काला होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। वात, पित्त और कफ के दोषों को फुलाकर निकाल देता है। गले को साफ करता है। कामेन्द्रिय पर इसका लेप करने से उसकी मोटाई और लम्बाई बढ़ती है और उसमें उत्तेजना पैदा होती है। जख्मों पर इसको लगाने से जख्म भर जाते हैं। शक्कर के साथ इसको लेने से पुरानी खाँसी और कफ के साथ खून जाने की बीमारी में लाभ होता है। इसको मोम में मिला कर नाखूनों में लगाने से नाखूनों की सफेदी मिट जाती है। जिस दाद में से पीव बहता हो उस दाद पर इसको लगाने से लाभ होता है। इसको जो के आटे में मिलाकर सिर की गंज पर लगाने से नये बाल जम जाते हैं। हड्डी उखड़ जाने पर इसके लेप से फायदा होता है।

इसको जो के आटे के साथ बच्चे के पेशाब में पकाकर लेप करने से कंठमाला अच्छी हो जाती है। फालिज और गठिया पर भी इसके लेप से फायदा पहुँचता है। इसको जलाकर उससे काजल बनाकर उस काजल को आँखों में आँजने से आँख की ज्योति तेज होती है। आँख से पानी का बहना बन्द हो जाता है और आँख की जलन मिट जाती है।

कड़वी बादाम के तेल में इसको मिलाकर कान में टपकाने से कान का दर्द मिट जाता है। कान के कीड़े भी मर जाते हैं और पीव का बहना भी बन्द हो जाता है। इसको आग पर गरम करके उसमें बराबर वजन का चूना मिलाकर कीड़े से खाये हुए दाँतों में भर दें तो दाँत गिरने से बच जाता है।

इसको शक्कर और बादाम के साथ खाने से दमा और साँस की तंगी मिट जाती है। छाती में जमा हुआ कफ निकल जाता है। कफ के साथ खून और पीव का आना भी इससे रुक जाता है। निमोनियाँ में भी यह लाभ पहुँचाता है। छाती और फेफड़े में अगर कोई फोड़ा हो तो उसमें भी इससे लाभ पहुँचता है।

इसको योनि में रखने से गर्भ का बच्चा मर जाता है। स्त्री सम्भोग के पहले अगर पुरुष इसको अपनी इन्द्रिय पर लगा ले तो स्त्री को गर्भ नहीं रहता और हमेशा लगाते रहने से स्त्री बन्ध्या हो जाती है।

इस औषधि में विष नाशक गुण भी रहता है। अफाई नामक विषैले सर्प के विष को यह दूर करता है। इसी प्रकार स्थावर विषों के ऊपर भी यह लाभदायक है। कीड़ों-मकोड़ों के काटने की जगह पर इसको नमक के साथ लगाने से फायदा होता है। इसकी मात्रा ३ माशे तक की है। [ख० अ०]

जफ्त आफरीद

नाम—यूनानी—जफ्त आफरीद।

वर्णन—यह एक रोइदगी है। इसका पौधा रेती के मैदानों में पैदा होता है। इसके पत्ते चने के पत्तों से छोटे और शाखाएँ बारीक तथा घनी होती हैं। इस वनस्पति की पैदाइश स्याम और रूम में होती है। वहाँ के लोग इसे छोटी सालम मिश्री कहते हैं। मगर यह सालम मिश्री से भिन्न वस्तु है। इतना जरूर है कि कामेन्द्रिय की शक्ति को बढ़ाने में यह सालम मिश्री से भी ज्यादा ताकतवर है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और तर है। किसी-किसी के मत से गरम और खुश्क है। यह कामेन्द्रिय को शक्ति देती है, पेट की मरोड़ को मिटाती है, गठिया रोग में मुफीद है, इसके बीजों को हलवे के साथ पकाकर लगातार २ हफ्ते तक लेते रहने से हर किस्म के जलोदर में बहुत लाभ होता है। शक्कर और शहद के साथ इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है। वह भी बहुत कामोद्दीपक है। [ख० अ०]

जन्ब अलखरूप

नाम—यूनानी—जन्ब अलखरूप।

वर्णन—यह एक रोइदगी है। इसकी जड़ पतली होती है। डालियाँ ऊपर से सफेदी लिए हुए अन्दर से पोली होती हैं। इसके पत्ते दूर-दूर लगते हैं। ये पत्ते रासना के पत्तों की तरह और फूल सरसों के फूल की तरह होते हैं। इसके बीज छोटे-छोटे होते हैं। इसके पंचांग का स्वाद कुछ तेज और कड़वा होता है। इसको तोड़ने से इसमें से कुछ चिकना चेप निकलता है। यह वनस्पति स्याम में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके पत्तों के रस को आँखों में लगाने से आँखों की सफेदी जाती रहती है। इसके खाने से पेट में होने वाली वायु की मरोड़ मिट जाती है और बढ़ी हुई तिल्ली कट जाती है। पागल कुत्ते के विष पर यह मुफीद है। [ख० अ०]

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जन्ब अलसब्बा

नाम—यूनानी—जन्ब अलसब्बा।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का पौधा है। जो खेतों में पैदा होता है। इसकी ऊँचाई दो गज के करीब होती है। इसके पत्ते गाबजबां के पत्तों से मिलते-जुलते मगर उनसे कुछ छोटे, रूयेंदार और सफेदी लिए हुये होते हैं। इनके किनारों पर छोटे-छोटे कांटे होते हैं। इसके पिंड के नीचे का हिस्सा तिकोना और ऊपर का हिस्सा गोल होता है। इसके पिण्ड पर भी मुलायम कांटे होते हैं। इस वनस्पति के अन्दर से एक प्रकार का दूधिया चेप निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह औषधि पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क है। किसी-किसी के मत से यह सर्द है। यह दवा कब्जियत करती है। इसकी ताजी जड़ को छीलने से जो लुआब निकलता है उस लुआब को शरीर के किसी भी अंग में होने वाले दर्द पर मलने से दर्द फौरन जाता रहता है। टूटी हुई हड्डी पर इसकी जड़ को लगाने से और चार माशे की खुराक में खिलाते रहने से हड्डी जुड़ जाती है। गठिया के दर्द में भी यह मुफीद है।

मात्रा—इसकी मात्रा ४ माशे तक है। [ख० अ०]

जम्बेअलखील

नाम—यूनानी—जम्बेअलखील।

वर्णन—यह एक हमेशा हरी रहने वाली वनस्पति है जो स्याम और अरब में तर जमीन के पास और पानी के किनारे बहुत पैदा होती हैं। इसकी डालियाँ घोड़े की पूँछ की तरह होती हैं। इसका स्वाद कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में सर्द और खुश्क है। कब्जियत और खुश्की पैदा करती है। इसके पत्तों को बारीक पीसकर बड़े-बड़े जख्मों पर लेप करने से जख्म भर जाते हैं। कैसा ही खराब फोड़ा हो उस पर इसके पत्तों को सिरके में पीसकर लगाने से वह सूख जाता है। शरीर किसी जगह से कट जाय या फट जाय तो इसके पत्तों को लगाने से बहुत फायदा होता है। गर्मी की ऐसी सूजन जिसमें बहुत जलन हो इसके पत्तों के लेप से मिट जाती है। इसके पत्तों के रस को नाक में टपकाने से और पेशानी पर लेप करने से नाक से बहता हुआ खून बन्द हो जाता है। मुँह से आता हुआ खून भी इसके पीने से रुक जाता है। इसकी जड़, पत्ते और डालियों को पीसकर पीने से गर्मी की पुरानी खाँसी मिट जाती है। आँतों, गुरदे और मसानों के जख्मों में इसे शराब के साथ पीने से बहुत लाभ होता है। स्त्रियों के मासिक धर्म की अधिकता में भी यह फायदा करती है। मेदा और जिगर की सूजन व जलोदर में भी यह लाभदायक है।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि अंजुवार है।

मात्रा—इसकी मात्रा ३ माशा तक है।

जबर जद

नाम—यूनानी—जबरजद।

वर्णन—यह जमरुंद की किस्म का एक कीमती पत्थर है और उसी की खान में पैदा होता है। कहीं-कहीं सोने की खदान में भी यह निकलता है। यह हरे और पीले रंग का होता है। बढ़िया वह माना जाता है जिसमें हरे रंग की धारियाँ हों, जो साफ हो और न टूट सके।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। यह बहते हुए खून को रोकता है। रुके हुए पेशाब को खोलता है। पथरी को तोड़कर निकाल देता है। आँखों की ज्योति को बढ़ाता है। मिरगी में लाभ पहुँचाता है। इसको पीसकर खाने से दिल को ताकत मिलती है। इसको पीने से जहर का असर दूर होता है। इसकी अंगूठी में जड़वाकर पहिनने से प्रेत बाधा, नजर का लगना, क्षय और प्रसव काल का कष्ट दूर होता है।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि जमरुंद है।

मात्रा—इसकी मात्रा ३ माशे तक की है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जसमत

नाम—यूनानी—जसमत।

वर्णन—यह एक कीस्म का कम कीमती जवाहिरात होता है। इसका रंग सफेद, लाल और नीला होता है मगर, उसमें लाल सबसे अच्छा होता है। इसको अरबी में अलमास तुवरी और टर्की में जङ्गूम कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके बरतन में शराब भरकर पीने से शराब का नशा नहीं आता। इसको तकिये के नीचे रखकर सोने से खराब स्वप्न नहीं आते हैं और न स्वप्नदोष ही होता है। इसका नगीना अँगूठी में रखकर पहनने से मान और प्रतिष्ठा होती है और ग्रन्थिवात का रोग भी नहीं होता। इसकी अँगूठी पहनने से दिल धड़कन, बेहोशी, जी का मिचलाना और सुस्ती मिटती है। इसके लेप करने से आँख की सूजन और आँख के पपोटे की सूजन मिटती है।

मात्रा—इसकी मात्रा १ माशे तक की है। [ख० अ०]

जमरासी [भूतराशी]

नाम—हिन्दी—जमराशि, वृक। बंगाल—राजेहुल। बम्बई—अरन, भूतकेशी, ताम्रुज। अलमोड़ा—पूनियाँ, सोनी। बुन्देलखंड—मामरी। मध्यप्रदेश—जमरासी, जम, कंलमुखा, रासि, रोहि। गढ़वाल—घेवरी। संथाल—नेवरी। मराठी—अरन, भूतपला, भूतपल, तमरज। मुंडारि—निरी, निरखिन। पंजाब—बाकरा, जमोआ, मिरन्दू, मोरेन्दू, पादरियम्। तामिल—द्रूसगोलि, चेल्लुपमर, मरुपुआ। तेलगू—नारीजा, भूतमुकुसानु। कोकण—बुरकास। लेटिन—Elaeodendron Glaucum [इलिओडेण्ड्रोन ग्लोकम]।

वर्णन—यह वृक्ष हिमालय की तलहटी में ६००० फीट की ऊँचाई तक होता है। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड, बिहार, मध्यप्रांत, कोंकण, पश्चिमीघाट, दक्षिण और कर्नाटक में भी यह पैदा होता है। यह एक मध्यम आकार का वृक्ष होता है। इसके पत्ते आमने-सामने लगते हैं। ये अणीदार, लम्बगोल, कटीकिनारों के, दोनों बाजू चिकने तथा ६-३ से १५ सेंटीमीटर तक लम्बे और २·५ से ३·६ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल पीले, छोटे और झूमकों में लगते हैं। इसके फल पीले, बेर की तरह तथा जड़ की छाल मोटी, तूरी और कड़वी होती है। औषधि प्रयोग में इसकी छाल और पत्ते काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—स्त्रियों को गुलमवायु और हिस्टीरिया से जो मूर्च्छा आ जाती है, उस मूर्च्छा को दूर करने के लिए इसके पत्ते और इसकी छाल बहुत उपयोगी है। इसके पत्तों को धूनी देने से व उसका धुआँ पिलाने से अथवा उसको सुंघाने से साधारण सिर दर्द भी दूर हो जाता है।

इसकी छाल को पानी में उबालकर, पीसकर सूजन के ऊपर उसका लेप करते हैं, जिससे सब प्रकार की सूजन मिट जाती है। इसकी जड़ सर्प विष की एक उत्तम दवा है। इस काम के लिए देहाती लोग इसकी छाल को उपयोग में लेते हैं। इसकी छाल एक प्रकार का तीव्र विष है।

मुंडा जाति के लोग इसकी जड़ का टुकड़ा जो कि उँगली के समान मोटा होता है, पीसकर पानी में गला देते हैं। फिर उसको पानी में छानकर वमन कारक औषधि की तरह पिलाते है। जिससे वमन होकर विष दूर होता है। साधारण खुराक से अधिक मात्रा में होने पर इस औषधि से मृत्यु तक हो जाती है। इसका लेप छाती पर करने से निमोनियाँ में लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि संकोचक और सर्प विष में उपयोगी है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प विष में निरुपयोगी है।

जमाल गोटा

नाम—संस्कृत—जयपाल, सारक, दन्तीबीज मलद्रावि, बीजरेचन, कुम्भी बीज, घंटाबीज, शोधनी बीज, चक्रदन्ती बीज। हिन्दी—जमाल गोटा, जैपाल। मराठी—जैपाल। बंगला—जैपाल। गुजराती—नेपाली। करनाटकी—जैपाल।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

अरबी—हब्बुज सलातीन। फारसी—तुख्मे बेदम, जीर खताई। तेलगू—नेपलमु, नेपलबेमु। अंग्रेजी—Parging Broton [पारजिंग ब्रोटन]। लेटिन—Croton Tiglium [क्रोटन टिग्लियम]।

वर्णन—जमालगोटे का झाड़ छोटा होता है। इसके पत्ते थूलर के समान और फूल महुए के समान होते हैं। इसकी छाल राख के रंग की होती है। इसके बीज अण्डी के बीज की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जमालगोटा चरपरा, गरम, कृमिनाशक, विरेचक, दीपन, कफ वात नाशक और अनिसार को दूर करने वाला है। इसके बीजों का तेल उग्र विरेचक, शोथ नाशक और आफरा, उदर रोग, सिर दर्द, सन्यास रोग, धनुस्तंभ, ज्वर, उन्माद, आमवात और खांसी को दूर करता है।

जमाल गोटा यह एक तीव्र विरेचक पदार्थ है। तीव्र विरेचक द्रव्यों में इसका नम्बर सबसे पहिला है। अधिक मात्रा में यह विष है। इसके तेल की एक बूंद देने से ५।२५ पानी के समान दस्तें हो जाती हैं और पेट में बहुत मरोड़ी चलती है। यहाँ तक कि अँतड़ियों की श्लेष्मत्वचा में कुछ सूजन भी हो जाती है।

जिन लोगों के रक्त में से पानी का अंश जल्दी निकाल देने की जरूरत होती है अथवा हृदयोदर के समान रोगों में पानी का दबाव कम करने की आवश्यकता होती है वहाँ जमाल गोटे का उपयोग किया जाता है।

डाक्टर वामन गणेश देशाई के मतानुसार जब रक्त में का पानी कम करना हो या हृदयोदर में कोई वक्त पानी का दाब कम करना हो तो उस वक्त जमाल गोटा देते हैं। मस्तक में की शिरा टूट के जो अर्द्धाङ्ग वायु होता है तब जमाल गोटा देकर यदि रक्त में से पानी कमी नहीं किया तो मेदे पर रक्तस्राव ज्यादा बढ़ता रहता है और रोगी के अच्छे होने की सम्भावना बिलकुल नहीं रहती। रोगी बेसुध हो तो इसके तेल [जमाल गोटे का तेल] की एक बूँद मक्खन में मिलाकर जबान पर घिसना चाहिये। हृदयोदर में जमाल गोटे से बहुत फायदा होता तो है लेकिन कभी-कभी जुलाब बन्द नहीं होता है। यह ध्यान में रखना चाहिये। ऐसे समय में इसके दर्प नाशक पदार्थ पानी में घिसा हुआ कत्था व नीबू का रस देना चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार पागलपन, मृगी, आक्षेप इत्यादि रोगों में जिनमें कि रक्त भार बढ़ जाता है। इसके बीजों को तेज जुलाब देने के उपयोग में लेते हैं। ऐसी हालत में इसकी मात्रा ८ ग्रेन से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। इसे शहद के साथ मिलाकर देते हैं। इसका तेल सन्धिवात, पक्षाघात और अन्य प्रकार के जोड़ों के दर्द में उपयोग में लिया जाता है। यह सन्धि के रोगों में लाभदायक है। इससे छाले उठ जाते हैं।

रासायनिक संगठन—इसके तेल में क्रोटोन ओलिक एसिड्, टिगलिक एसिड्, एक उड़नशील तेल और स्निग्ध तत्व पाये जाते हैं।

मात्रा—इसकी पीसी हुई जड़ १० से लेकर ३० ग्रेन तक की मात्रा में दी जाती है। इसका तेल एक बूंद की मात्रा में दिया जाता है। इसके शुद्ध किये हुए बीजों का गूदा १ रत्ती से २ रत्ती तक देना चाहिये।

बाह्य प्रयोग—जमाल गोटे का तेल चमड़े पर लगाने से जलन पैदा करता है। इससे चमड़े पर फफोले पैदा हो जाते हैं। यह जोड़ों के दर्द पर जलन मिटाने के उपयोग में लिया जाता है मगर आज कल इसको इस उपयोग में बहुत कम लेते हैं, क्योंकि इससे जलन बहुत ज्यादा होती है और इससे जो घाव पड़ जाते हैं, उनके चिह्न हमेशा के लिए कायम रह जाते हैं। वे नहीं मिटते। इन घावों से मवाद वगैरह के बहुत घृणित दृश्य दिखलाई देने लगते हैं। [सन्याल और घोष]

अन्तः प्रयोग—यह मुँह के द्वारा खाने से पेट व अँतड़ियों में जलन पैदा करता है। इसके तेल की १ बूंद को मक्खन या शक्कर में मिलाकर जबान पर रखकर तुरन्त निगल जाना चाहिये, जिससे ज़बान पर यह जलन पैदा न कर सके। कमजोर बीमारों को, गर्भवती स्त्रियों को, बच्चों को, बवासीर के रोगियों को, वाकस्थली के रोगियों को और आन्त्रिक प्रदाह से पीड़ित रोगियों को यह नहीं देना चाहिये।

चरक के मतानुसार इसकी जड़ का छिलका ठण्डे पानी या पुराने गुड़ के साथ मिलाकर पीलिया के रोगियों को दिया जाता है। अगर इसकी जड़ के छिलके को पुल्टिस के रूप में विद्रधि पर बाँधा जाय तो विद्रधि फूट जाती है।

जमाल गोटे को शुद्ध करने की विधि—जमाल गोटे का छिलका निकाल कर उसको बीच में से चीर कर उसमें जो पत्ते की तरह वस्तु रहती है उसको निकाल देना चाहिये और उसमें आठवाँ हिस्सा सुहागे का चूर्ण मिलाकर दूध के अन्दर डोला-

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यन्त्र में शुद्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकार तीन बार करने से जमाल गोटा शुद्ध हो जाता है। जिस दूध में इसको शुद्ध करे, उस दूध को ऐसी जगह फेंक देना चाहिये जहाँ कोई उसे पी नहीं सके।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके मगज चौथे दर्जे में गरम और खुश्क हैं। इसकी जड़ दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह वस्तु बहुत तेज दस्तावर है। शरीर के अन्दर फैले हुए गर्मी के जहर को यह निकाल देती है। उपदंश, कोढ़, और दूसरे चर्म रोगों में यह लाभ पहुँचाती है। गुर्दे और मसाने की पथरी को यह तोड़ देती है। कफ से पैदा हुए जलोदर, कमर के दर्द और पीलिया रोग में भी यह मुफीद है। हिन्दुस्तान की बहुत-सी औरतें जब बच्चे को डिब्बा या मृगी की बीमारी हो जाती है तब बच्चे की हैसियत और जरूरत को देखकर जमाल गोटे की मगज को अदरक के रस या माँ के दूध में घिसकर थोड़ा-सा पिला देती हैं, जिससे ४-६ दस्त होकर बच्चा खुल जाता है।

इसका जुलाब दिमाग, पेट, जोड़ इत्यादि शरीर के दूर-दूर हिस्सों में फैली हुई गन्दगी को खींचकर दस्त की राह निकाल देता है। इससे गठिया और लकवे के समान भयंकर रोगों में भी फायदा होता हुआ देखा जाता है। यह मुँह के खराब जखमों को भर देता है। इसको पीसकर रोगन खेरी में मिलाकर कान में टपकाने से कान के कीड़े मर जाते हैं। इसको दाँतों पर रखने से दाँतों का दर्द भी जाता है।

यह वस्तु गरम और मौसिम में गरम मुकामों पर और गरम प्रकृति के लोगों को कभी नहीं देना चाहिये। देशकाल के अनुसार भी इस औषधि के प्रभाव जुदा-जुदा होते हैं। कई पहाड़ी लोग इसके बीजों को चार-चार पाँच-पाँच की गिनती में खा जाते हैं और उनको सिर्फ एक या दो दस्त होते हैं, मगर देहली और लखनऊ के तरफ रहने वाले लोग इसका आधा भी खालें तो उनकी बुरी हालत हो जाती है। राजपुताना के रहने वाले बहुत से मजबूत लोग इसको १ रत्ती से लेकर २ दाने तक की मात्रा में खा लेते हैं और उनको मामुली दस्तें होती हैं। इसलिए इस वस्तु का उपयोग करते समय देशकाल और प्रकृति का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये।

जमाल गोटे के पेड़ की जड़ बहुत तेज गरम होती है। यह खून, पित्त और कफ के उपद्रवों को दूर करती है, जलोदर और सूजन की बीमारी में फायदेमन्द है, पेट के कीड़ों को मारती है, चर्मरोग सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुंचाती है। गृध्रसी और गठिया में लाभदायक है। ग्रन्थिवात [Gout] फोड़े फुन्सी और रक्त विकार में भी यह उपयोगी है। जमाल गोटे की गिरी को पानी में घिसकर नारू पर लगाने से नारू एक दिन में आराम हो जाता है मगर यह दवा बहुत जलन पैदा करती है। इसलिये लगाने वाले की अपनी सहनशक्ति का अन्दाज करके लगाना चाहिये। बिच्छू के विष पर भी इसके मगज को पीसकर लगाने से फायदा होता है। साँप के विष पर आधे जमाल गोटे को पानी में घिसकर आँखों में आंजने से साँप का जहर ज्यादा असर नहीं करता मगर इस प्रयोग से आँख को बहुत नुकसान और असह्य वेदना होती है। इसलिये कभी यह प्रयोग कर लिया जाय तो बकरी के दूध में रूई का फाया भिगोकर आँख पर बाँधना चाहिये। [ख० अ०]

जमाल गोटे की विषशान्ति के उपाय—अगर जमाल गोटे से नुकसान पहुंचने की नौबत आवे और इसका जहर फैल जावे और शरीर में गर्मी व जलन पैदा हो तथा दस्त और मरोड़ी अधिक आने लगे और वमन हो तो दूध में घी मिलाकर पिलाना चाहिये और तुख्म खुरफा, इसबगोल, बबूल का गोंद, मालतुलसी के बीज इत्यादि किसी भी लुआबदार चीज को पानी में गलाकर उसका लुआब तैयार करके उस लुआब में बादाम का तेल और रोगन गुल मिलाकर पिला दें। शीरा, मगज तुख्म कद्दू या शीरा तुख्म खुरफा खिलावें। लुआबदार चीजों का एनीमा लगावें। कभी ज्यादा दस्तें होने की हालत में ठण्डे पानी के टब में बिठाने से भी लाभ होता है। नीबू के रस में शक्कर मिलाकर पिलाने से भी इसके विष में लाभ होता है।

उपयोग—दमा—जमाल गोटे की मगज को चिराग की लौ में जलाकर उसका धुआँ नाक के जरिये पीने से दमा जाता रहता है। इसकी मगज को चिराग की लौ में जलाकर उसका चौथा हिस्सा पान में रख कर खिलाने से भी दमा मिटता है।

हिचकी—जमाल गोटे के मगज को हुक्के में भर कर पीने से बादी की हिचकी बन्द होती है।

सिरदर्द—जमाल गोटे की मगज को पानी में पीसकर कनपटियों पर लेप करने से सिर और आँख का दर्द मिटता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

सर्प विष—सर्प के काटे हुए को शुद्ध किए हुए जमाल गोटे की मगज खिलाने से तथा उसको घिस कर आंख में आंजने से विष का असर बहुत कम होता है।

बनावटें—जमाल गोटे की गोलियाँ—गुलबनफशा १७ माशा, गुलाब के फूल १७ माशा, खुरपे के बीज साफ किए हुए १७ माशा, कद्दू के बीजों की मगज १० माशा, ककड़ी के बीजों की मगज १० माशा, मगज वेदना १० माशा, गुलनीलोफर १० माशा, कशनीज साफ किया हुआ ७ माशा, मस्तगी ७ माशा, वंशलोचन ७ माशा, कतीरा ७ माशा, मगज जमाल गोटे का शुद्ध किया ३ तोला, इन सब चीजों को पीसकर इसबगोल के लुआब में मिलाकर चने के बराबर गोलियाँ बनालें।

ये गोलियाँ १ माशे से २ माशे तक की मात्रा में गुलाब के शरबत के साथ देनें से अच्छा जुलाब लग जाता है। इन गोलियों से जमाल गोटे से होने वाले सब फायदे तो मिल जाते हैं मगर उसकी उग्रता और उसके नुकसान से रोगी बच जाता है। क्योंकि इसमें जमाल गोटे के दर्प को नाश करने वाली बहुत-सी औषधियाँ मिली हुई रहती हैं।

जमीकन्द (सूरणकन्द)

नाम—संस्कृत—अर्शोघ्न, बहुकन्द, सूरणकन्द, कन्दुला, स्थूलकन्दक, कन्दी, तीव्रकण्ठ, वातारि, ओल, इत्यादि। हिन्दी—सूरणकन्द, जमीकन्द, कन्द। बंगाल—ओल। मराठी—गोड़ासूरण, खाजेरासूरण। गुजराती—सूरण। बम्बई—सूरण। कच्छ—पूरण। कोंकण—सुमा सूरण। तेलगू—मचीकन्दा, दलकन्दा, कन्द गोदा। तामिल—करुनइ कलङ्ग। फारसी—जमीकन्द, ओल। लेटिन—Amorphophallus Campanlatus [एमरोफोफेलस कम्पेन्यूलेटस]।

वर्णन—जमीकन्द या सूरण एक मशहूर वनस्पति है जो हिन्दुस्तान के सभी भागों में तरकारी बनाने और औषधि प्रयोग में काम में आती हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक जंगली और दूसरी लगाई हुई। इसका कन्द चपटा और लम्बगोल होता है। यह २० से लगाकर २५ सेन्टीमीटर के आकार का होता हैं। इसका रंग गहरा बादामी होता है। इसके पत्ते फूलों के बाद में लगते हैं। ये ३० से लगाकर ६० सेन्टीमीटर तक चौड़े होवे हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से जमीकन्द रूखा, कसेला, तीक्ष्ण और खुजली पैदा करने वाला होता है। यह रुचिवर्द्धक और क्षुधावर्द्धक होता है, कफ को नष्ट करता है, बवासीर में बहुत लाभ पहुंचाता है, प्लीहा और गुल्म रोगों को नष्ट करता है, वायु नलियों के प्रदाह, वमन, पेट की पीड़ा, रक्त रोग और श्लीपद में यह लाभदायक है।

इसके बीज जलन पैदा करते हैं। संधिवात की सूजन और उसके दर्प को मिटाने के लिए इसके कन्द और इसके बीजों का लेप लाभदायक होता है। इसके कन्द का मुरब्बा या अचार पेट का आफरा उतारने वाला और शान्तिदायक माना जाता है। इसके कन्द में कुछ कसैला और जहरीला रस रहता है जो गर्मी के द्वारा इससे अलग किया जा सकता है।

इसकी जड़ चक्षुरोग में उपयोग में ली जाती है।

इसे फोड़ों पर भी लगाने के काम में लेते हैं। ऋतुस्राव नियामक वस्तु की तौर पर भी यह काम में लिया जाता है।

छोटा नागपुर की मुण्डा जाति के लोग इसके फल को पीसकर तीव्र संधिवात या जोड़ों की सूजन पर लेप करने के काम में लेते हैं।

सूरण की तरकारी से यकृत की क्रिया सुधरती है और दस्त साफ होता है। इन दो कारणों से बवासीर के अन्दर से बहने वाला खून बन्द हो जाता है। इसके प्रयोग से गुदा के अन्दर रहने वाली रक्त वाहिनियों का संकोचन होता है। इसी से खूनी बवासीर के अन्दर यह औषधि बहुत हितकारी होती है और इसी कारण संस्कृत में रक्खा हुआ इसका नाम 'अर्शोघ्न' सार्थक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, शक्तिदायक और पेट का आफरा उतारने वाली है। बवासीर में यह बहुत लाभ पहुँचाता है।

उपयोग—गठिया—सूरण कन्द का गूदा और उसके बीजों को पीसकर लेप करने से गठिया में लाभ होता है।

खूनी बवासीर (१) सूरण कन्द को इमली के पानी और धान के तुसों के साथ उबालकर, धोकर शाग बनाकर खाने से खूनी बवासीर मिटता है।

(२)—सूरण कन्द पर कपड़ मिट्टी करके उसे आग में भूनकर उसकी कपड़-मिट्टी हटाकर उसमें नमक और तेल मिलाकर खाने से बवासीर मिटता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

(३)—इसके टुकड़ों को छाया में सुखाकर उनका चूर्ण बनाकर १० माशे की मात्रा में प्रातःकाल लेने से बवासीर में लाभ होता है।

बिच्छू का विष—सूरण कन्द का पुल्टिस बांधने से बिच्छू का और दूसरे जहरीले कीड़ों का विष उतरता है।

बनावटें—बृहत् सूरण मोदक—सूखे जमीकन्द चूर्ण १६ तोले, चित्रक की जड़ की छाल ८ तोले, सोंठ ४ तोले, काली मिर्च २ तोले, त्रिफला १२ तोले, पीपलामूल ४ तोला, तालीसपत्र ४ तोला, शुद्ध भिलामा ४ तोला, बायबिडङ्ग ४ तोला, मुलेठी ८ तोला, सफेद मूसली ४ तोला, विधायरे के बीज १६ तोले, दालचीनी २ तोले—इन सब चीजों को कूटपीस छानकर चूर्ण बना लेना चाहिये। जितना चूर्ण का वजन हो उससे दूना पुराना गुड़ मिलाकर आधी छटांक के लड्डू बना लेना चाहिये। प्रतिदिन सवेरे शाम अपनी शक्ति के मुआफिक इन लड्डुओं का सेवन करने से और पथ्य में हलका भोजन करने से बिना आॉपरेशन और क्षारकर्म के ही बवासीर जड़ से नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस पाक का सेवन करने वाले मनुष्य की जठराग्नि, पाचनशक्ति और मैथुन शक्ति भी अत्यन्त प्रबल हो जाती है। इसी प्रकार श्लीपद [हाथी पांव] सूजन, कफ वात की संग्रहणी, हिचकी, श्वास, खांसी, राजयक्ष्मा और प्रमेह में भी इससे लाभ पहुँचता है। बवासीर की यह एक सुप्रसिद्ध दवा है।

जयन्ती

नाम—संस्कृत—जया, जयन्ती, नादेयी, वैजयन्ती। हिन्दी—जयन्ती, जूझन, झीजन, रासिन, जेत। बंगाल—जयन्ती। बम्बई—जेत, जञ्जन, शेवरी, शेवारी। पोरबन्दर—जयन्ति। तामिल—करुनजेंबी, सगुदइ, सेंबई, करुशेवै, चंपई। उर्दू—जैत। तेलगू—जतुगु, सोमिन्ता। उरिया—जोयोन्त्री। मुंडारि—लीलदारू। फारसी—सीसीबन। लेटिन—Sesbania Egyptiena [सेसबेनिया इजिप्सियाना]।

वर्णन—इन वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान अमेरिका है। यह प्रायः सभी गरम देशों में बोई जाती है। यह एक छोटा नरम लकड़ी का झाड़ होता है। इसकी दो जातियां होती हैं। एक लाल फूलवाली, दूसरी पीले फूलवाली।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार इसकी जड़ गरम, कड़वी, पेट का अाफरा उतारने वाली, धातु परिवर्तक और कृमिनाशक होती हैं। क्षय जनित ग्रन्थियों में, ज्वर में, व्रण में, मधुमेह में, धवल रोग में और गले के रोगों में यह बहुत उपयोगी है। कफ, पित्त और प्रदाह को यह दूर करती है। बिच्छू के काटने पर यह उत्तम दवा है। इसकी छाल संकोचक होती है। प्लीहा और तिल्ली की वृद्धि में और अनार्तव में इसके बीजों को देने से बड़ा लाभ होता है। माता की बीमारी में भी इसके बीजों का लेप करने से लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते विरेचक, कृमिनाशक और शान्तिदायक होते हैं। ये जलाबुंद तथा सभी प्रकार के दर्द और प्रदाह में फायदा पहुँचाते हैं। इसके बीज ऋतुस्राव नियामक, उत्तेजक और संकोचक होते हैं। ये पुराने व्रण और फोड़े को भर देते हैं। तिल्ली की बीमारी, अतिसार और अत्यधिक रजःस्राव में ये लाभदायक हैं।

पंजाब में इसके बीजों को आटे के साथ मिलाकर खुजली के ऊपर लेप करते हैं। ढाका में इसके ताजे पत्तों का रस कृमिनाशक वस्तु की तौर पर उपयोग में लिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज और इसका छिलका अतिसार में लाभदायक है। ये अत्यधिक रजस्राव और चर्मरोग में उपयोग में लिए जाते हैं। उसके पत्ते संधिवात में उपयोगी हैं।

जरेशक

इस औषधि का विशेष वर्णन आगे के भाग में दारूहलदी के प्रकरण में देखिये। दारूहल्दी के झाड़ के फल को ही जरेशक कहते हैं।

जरर

नाम—यूनानी—जरर।

वर्णन—यह एक रोइदगी [क्षुप] होती है, इसका पौधा १ बालिश्त तक का घास की तरह होता है। इसका फूल पीला और गोल होता है। इस वनस्पति में थोड़े मुलायम कांटे भी होते हैं। इसके पत्ते सफेद और जड़ १ फुट लम्बी होती है। रंगरेज लोग इसके फूलों को कपड़े पर पीला रङ्ग चढ़ाने के काम में लेते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति सर्द और खुश्क है, कुछ गरमी की तासीर भी इसमें होती है, यह कब्जियत मिटाती है, सूजन को बिखेरती है, पेशाब और मासिक धर्म को साफ करती है। चमड़े पर पड़े हुए निशान को मिटाती है। मुनक्का के साथ इसका काढ़ा करके पीने से बढ़ी हुई तिल्ली, जलोदर और पिलिया में लाभ पहुँचाता है। इसके काढ़े में जौ का आटा मिलाकर गर्मी की सूजन पर बाँधने से लाभ होता है। इसकी राख को खुजली, दाद और जखम पर लगाने से शान्ति मिलती है। इसका प्रतिनिधि मजीठ है।

दर्पनाशक—शिकंजबीन।

मात्रा—१ तोले से १॥ तोले तक की जिसका काढ़ा बनाकर देना चाहिये।

जरविंद-इ-तवील

नाम—यूनानी—जरविंद-इ-तवील, जरविंद दराज। लेटिन—Aristolochia Longa [एरिस्टोलोकिया लोंगा]।

वर्णन—यह एक पेड़ की जड़ है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक नीली और दूसरी सुनहरी। पहली जाति की जड़ उँगली के बराबर लम्बी और उँगली से कुछ पतली होती है। इसका रंग सुर्खी माइल नीला और स्वाद कड़ुवा होता है। इसके पत्ते इश्कपेंचा के पत्तों की तरह होते हैं मगर उनसे कुछ चौड़े और लम्बे होते हैं। इसकी डालियाँ एक-एक बालिश्त के बराबर और पतली होती हैं। इसका फूल नीले रंग का और दुर्गन्ध पूर्ण होता है।

इसकी दूसरी जाति का रंग लाल और सुनहरा होता है। यह पहली जाति से बड़ी होती है। इसकी डालियाँ भी पतली होती हैं। इसके पत्तों की गोलाई पहली जाति के पत्तों से अधिक होती है। इसके फूल सद्दाब के फूल की तरह होते हैं। इसकी जड़ मोटी और केसरिया रंग की होती है। उसमें सुगन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। इसकी पहिली जाति विषैले जानवरों के जहर को दूर करती है, सर्दी की सूजन को बिखेर देती है, कफ को छाँटती है, पथरी को तोड़कर निकाल देती हैं, गालों के रंग को साफ करती है, नाक को नष्ट करती है, पेशाब और मासिक धर्म को जारी करती है, पेट के कीड़े को निकाल देती है, फाजिल और कंपवात में मुफीद है, मृगी में फायदा करती है। इसकी बत्ती बनाकर योनि में रखने से मासिक धर्म साफ हो जाता है। इसको ७ माशे की खुराक में पीसकर शराब के साथ लेने से बिच्छू के डंक पर इसका लेप करने से बिच्छू का जहर उतर जाता है। इसका लेप करने से बवासीर की सूजन उतर जाती है, इसके काढ़े से बालों को धोने से जुएँ मर जाती हैं, इसे पीस कर दांतों पर मलने से दाँत साफ हो जाते हैं और मसूड़ों का मवाद निकल जाता है। इसको ४ माशे की मात्रा में शराब के साथ लेने से मृगी और धनुर्वात में बहुत लाभ होता है। शिकंजबीन के साथ इसको लेप करने से तिल्ली की सूजन मिटती है और काली मिर्च के साथ इसको लेने से प्रसव के बाद गर्भाशय में रही हुई खराबी दूर हो जाती है।

इसकी दूसरी जाति के गुणदोष भी इससे मिलते हुए हैं मगर इससे कुछ प्रभावशाली हैं।

जरविंद-ई-गिर्द

नाम—यूनानी—जरविंद-ई-गिर्द। जरविंद—मुदहर्ज। लेटिन—Artstolochia Rotunda (एरिस्टोलोकिया रोटुन्डा)।

वर्णन—यह एक पौधा होता है जिसकी डालियाँ जमीन से ही फूटती हैं। इस पौधे के पिंड नहीं होता। इसकी डालियाँ १ गज या इससे कुछ अधिक लम्बी होती हैं। इसके पत्ते जरविंद-इ-तवील के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ छोटे और नरम होते हैं। ये खुशबूदार और स्वाद में कुछ तेज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। वायु की सूजन को बिखेरती है, वात पित्त और कफ के दोषों को मुलायम करती है, सीने और फेफड़े को साफ करती है, जहरीले जानवरों के जहर को दूर करने की इसमें खास तासीर है। सर्दी की वजह से होने वाला सिर दर्द, आधा शीशी, मृगी, पागलपन, विस्मृति, हिचकी इत्यादि रोग जो कि पित्त और कफ से पैदा हुए हों उनमें यह फायदेमन्द है। दमा, पुरानी खाँसी, सीने का दर्द, गठिया,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गृध्रसीवात और ग्रंथिवात में इसको शहद के साथ देने से लाभ पहुँचता है। शरीर में काँटा लग गया हो तो इसका लेप करने से बाहर आ जाता है। टूटी हुई हड्डी पर भी इसका लेप करने से लाभ होता है। इसको खाने से तोतलापन मिट जाता है, पुराने और बदबूदार जख्मों पर इसे लगाने से जख्म साफ हो जाते हैं और बदबू मिट जाती है। इसके खाने और लगाने से कुष्ठ और सफेद दागों में भी फायदा होता है। दिमाग की खराबी और गरदन की अकड़न को दूर करने के लिये इसको चाटते हैं। इसके काढ़े को कान में टपकाने से बहरापन मिट जाता है और कान की फुन्सियाँ साफ हो जाती हैं। इसको पीस कर गाय के घी में मिलाकर साढ़े तीन माशे की टिकिया बनाकर उसमें से १ टिकिया हुक्के में रखकर पीने से दमें का दौरा फौरन आराम हो जाता है। तिल्ली, जिगर, गर्भाशय की खराबी और बिच्छू के विष पर इसको जरविंद-ई-तवील की तरह ही दिया जाता है।

प्रतिनिधि—इसका प्रतिनिधि जरविंद-ई-तवील और नरकचूर है।

मात्रा—इसकी ४ माशे से ७ माशे तक की है।

जरायुप्रिया

नाम—संस्कृत—जरायुप्रिया, मक्षिकविषा, पालिता। लेटिन—Erigeron Canadensis [एरीजिरोन केनेडेन्सिस]।

वर्णन—यह एक बहुशाखी छोटा झाड़ होता है। इसके पत्ते २.५ से ७.५ सेंटीमीटर तक लम्बे और रुएँदार होते हैं। फूल पीले, फूलों की डण्डी गुलाब और उनकी खुशबू पोदीने की तरह रहती है। इसका स्वाद तूरा और कुछ कड़वा होता है। यह वनस्पति पश्चिमी हिमालय, पंजाब के मैदान, उत्तरी गंगा के मैदान और सभी गर्म देशों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार यह वनस्पति रक्तस्रावरोधक, मूत्रल और संकोचक होती है। इसकी क्रिया गर्भाशय के ऊपर विशेष रूप से होती है।

यह औषधि आमातिसार के ऊपर उपयोगी है। कफ रोगों में इससे बहुत लाभ होता है। गर्भाशय से बहने वाला खून भी इसके प्रयोग से बन्द हो जाता है। रक्त प्रदर और वस्तिशोथ में भी यह लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति अतिसार, पेचिश और गर्भाशय के रक्तस्राव में लाभदायक है। इसका तेल नजले में जिसके साथ वायुनलियों का प्रदाह भी हो, लाभदायक है। मूत्राशय के प्रदाह में भी यह लाभ पहुँचाती है। इसमें उड़नशील तेल पाया जाता है।

जरूल

नाम—हिन्दी—जरूल। बंगाल—जरूल। आसाम—अजहार। बम्बई—तामण, बोंदरा। कोंकण—तामण। मराठी—बुन्द्रा, तामण। मुन्डारी—गरसेकरी, कुइरी। संथाल—सेकरा। तेलगु—बरगोबू। तामिल—पोंबले, मुक्की। लेटिन—Lagerstroemia Flosreginae [लेगरट्रोमिया फ्लोसरेजिनी]।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष है। इसकी डालियाँ बहुत फैलने वाली होती हैं। इसकी छाल फिसलनी और फीके रंग की रहती है। इसके पत्ते १० से लेकर २० सेंटीमीटर तक लम्बे और ३.८ से ८.५ सेन्टीमीटर तक चौड़े रहते हैं। हरएक पत्ते में १० से लेकर १२ तक नसें रहती हैं। इसके फूल पाँच से लगाकर ७.५ सेन्टीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसका फल लम्बगोल लाल रंग का और बीज फीके बादामी रंग के रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इसको उत्तेजक और बुखार को दूर करने वाली मानी जाती है। यह एक संकोचक वस्तु की तरह काम में ली जा सकती है। इसकी छाल और इसके पत्ते विरेचक होते हैं। इसके बीज नींद लाने वाले होते हैं।

अंडमान में इसके फल को मुँह के छालों पर लगाने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज, पत्ते और छाल नींद लाने वाले होते हैं।

यूनानी मत से यह पहले दर्जे में खुश्क और दूसरे दर्जे में सर्द है। यह पित्त के विकार को शान्त करता है। खून की गर्मी को मिटाता है। शरीर को मोटा करता है। भूख पैदा करता है। पीला जरूल कफ की बीमारियाँ पैदा करता है और

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

देर से हजम होता है। मगर लाल रंग का जरूल मेदा और जिगर को ताकत देता है। कब्जियत पैदा करता है। बूँद-बूँद पेशाब आने के मर्ज को दूर करता है और कामेन्द्रिय को शक्ति देता है। इसका दर्पनाशक सौंफ और गुलकन्द है। इसका प्रतिनिधि खट्टी सेव है। इसके रस की मात्रा ७ तोले तक और चूर्ण की मात्रा १ माशे से ४ माशे तक है।

जरी

वर्णन—यह एक बूटी है जो प्रायः समुद्री किनारों पर पैदा होती है। इसके पत्ते गोल, हलके पीले और स्वाद में कड़वे होते हैं।

चोधारा

नाम—संस्कृत—ओष्टफल, बैकुण्ठ, स्रवका। हिन्दी—चोधारा। बम्बई—चौधारा। गुजराती—धोलूं चोधारो, मखमली चोधारो। मराठी—पांढ़रा चोधारा, सुन्दारा, सुन्दरा, कपूरि माधुरी। तामिल—पेई मरुति। तेलगू—मगबिरा, मोनभेरी। कनाड़ी—करितुम्बे। अंग्रेजी—Malabar Catumind [मलाबार केटूमिंड]। लेटिन—Anisoneles Malabarica [एनिसोनेलेस मलेबारिका]।

वर्णन—यह एक रूएँदार झाड़ीनुमा पौधा होता है। इस पौधे की ऊँचाई २।३ फीट तक होती है। इसके पत्ते बहुत आड़े, लम्बगोल और कुछ शल्याकृति होते हैं। इसके फूल हलके पीले रंग के और फल अण्डाकार, चपटे और बदामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति पसीना लाने वाली, शीतनाशक, उत्तेजक और तीव्र होती है। दक्षिणी भारत में यह अत्यन्त लोकप्रिय और घरेलू औषधि मानी जाती है। इसके सुगन्धित कटु तत्वों का शीतनिर्यास पेट और आँतों की पीड़ा में बहुत उपयोग में लिया जाता है। पर्यायिक ज्वर और जुकाम में भी यह बहुत उपयोगी है। ज्वर की चिकित्सा में इसे अन्तः प्रयोग में तो लेते ही हैं मगर साथ में इसके गरम काढ़े की भाप को नाक के द्वारा सूँघा भी जाता है। ऐसा करने से ज्वर उतर जाता है। इसके पत्तों का शीतनिर्यास बच्चों के उदरशूल, अग्निमांद्य और दाँत निकलने के समय के उपद्रवों में लाभदायक माना जाता है। इसका काढ़ा और इसके पत्तों से प्राप्त किया हुआ उड़नशील तेल सन्धिवात में बाह्य उपचार के तौर पर काम में लिया जाता है।

कोमान का मत है कि इस वनस्पति का निर्यास दाँत निकलने के समय होने वाले उपद्रवों पर बच्चों को दिया गया और वह उपयोगी पाया गया।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति उदरशूल, अग्निमांद्य तथा साँप और बिच्छू के जहर पर उपयोगी मानी जाती है। इसमें उड़नशील तेल रहता है।

चौलाई

नाम—संस्कृत—तंडुलीय, मेघनाथ, कांडेर, तंडुलीबीज, विषघ्न, वहुवीर्यं, कंचट, इत्यादि। हिन्दी—चौलाई का शाग। मराठी—तांदलजा, चंवलाई। गुजराती—तांदलजो। फारसी—सुपेजमर्ज। बंगाल—चपनतिया। तेलगू—मोलाकुरा, कुइकोरा। तामिल—कपिकिरी। अंग्रेजी—Hermaphrodite Amaranthus (हरमेफ्रोडाइड एमेरेन्थस)। लेटिन—Amaranthus Teenifolius [एमेरेन्थस टेनिफोलियस]।

वर्णन—यह एक मशहूर शाग है जो सारे भारतवर्ष में सब दूर बोई जाती है और सब दूर खाई जाती है। इसे सब कोई जानते हैं। इसलिए इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से चौलाई हलकी, शीतल, रूखी, पित्त कफनाशक, रक्त विकार नाशक, मलमुत्र निःसारक, रुचिकारक, दीपन और विषहारक है। यह रसविपाक में मधुर, अत्यन्त शीतल, रूखी तथा तृषा, अरुचि, दाह, पित्त, रुधिर विकार और विष को नष्ट करती है।

चौलाई के पत्ते छूने में शीतल और अर्श, रक्त पित्त, विष तथा खांसी को नष्ट करते हैं। ये मलरोधक, पचने में मधुर और दाह तथा सूजन को नष्ट करने वाले हैं।

चौलाई की जड़ गरम, कफ नाशक, रज रोधक तथा रक्तपित्त और प्रदर दूर करने वाली है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जल चौंलाई कड़वी हलकी और रक्त पित्त तथा वात को नष्ट करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है मगर इसकी लाल जाति बहुत गरम और खुश्क होती है। यह हजम होने में हलकी और मीठी होती है। इसके पञ्चांग का रस पिलाने से सांप का विष नष्ट होता है। इसकी जड़ का काढ़ा पिलाने से वायु से पैदा हुआ उदरशूल मिटता है। इसकी जड़ को घोट छानकर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है। इसकी जड़ को पीसकर लेप करने से बदगांठ और दूसरे फोड़े जल्दी पक जाते हैं। इसके पत्तों को गरम पानी में भिगोकर मल छानकर पिलाने से मुत्रनाली की जलन मिट जाती है। इसकी जड़ को घिसकर लेप करने से बिच्छू का जहर उतर जाता है। इसकी जड़ को रसोत, शहद और चावलों के धोवन के साथ पिलाने से स्त्रियों का श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर मिटता है। चौंलाई के पत्ते और नीम के पत्तों को पीसकर कनपटी पर लेप करने से नकसीर बन्द होता है। इसकी तरकारी को हमेशा खाते रहने से पथरी गल जाती है। इसकी जड़ों को पीसकर नारू पर बांधने से नारू गल जाता है। इसके पंचांग की राख पर लेप करके थोड़ी देर धूप में बैठने से मुँह की झांई मिट जाती है।

तालीफ शरीफ नामक ग्रंथ के मतानुसार चौंलाई पित्त, कफ और खून के फसाद को मिटाती है। पेशाब अधिक लाती है। शरीर की गन्दगी दस्तों की राह निकाल देती है। रक्त पित्त के दोषों को मिटाती है। प्रमेह में लाभ पहुँचाती है, खांसी को दूर करती है, पित्त से पैदा हुए बुखार और पागलपन में लाभ पहुँचाती है। सर्पविष में यह लाभदायक है। लाल चौंलाई की जड़ को पानी में पीसकर प्रातःकाल रोजाना पीने से गर्भाशय से बहने वाला खून रुक जाता है। अगर किसी के कफ में खून आता हो तो उसके लिए भी यह लाभदायक है। इसके पत्तों को घी में पीसकर मकड़ी के जहर पर लगाने से लाभ होता है। इसकी जड़ का रस निकालकर उसमें ४॥ माशे रसोत और एक माशा नागकेशर का चूर्ण मिलाकर जंगली बेर के बराबर गोलियां बांध लें। इनमें से एक गोली प्रतिदिन खाकर उसके ऊपर चौंलाई की जड़ के शीत निर्यास का एक प्याला पी लिया करें। इस प्रयोग से कुछ दिनों में खूनी बवासीर मिट जाता है। मगर ऐसी चीजें न खायँ जो बवासीर को बढ़ाने वाली होती हैं।

मात्रा—इसकी जड़ के क्वाथ की मात्रा २॥ तोले से ५ तोले तक की है।

छरीला

नाम—संस्कृत—शैलाख्य, शैलेयक, वृद्ध, सुभग, शिलापुष्प, शिलामय, काबानुसारिवा, हिन्दी—छरीला, छार छरीला, भूरि छरीला, पत्थर का फूल। बङ्गाल—शैलजा। मराठी—दगड़ फूल। फारसी—दहोल। अरबी—आसीना, उस्ना। गुजराती—पत्थर फूल। पंजाब—छार छरीला, अस्नेहा। कर्नाटकी—कलहू। तेलगू—रति पति। तामिल—कलाहू। उर्दू—हवाकरमनी। लेटिन—Parmelia Perforata [परमेलिया परफोरेटा]।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से छरीला शीतल, हृदय को हितकारी, कफ पित्तनाशक, हलका और खुजली, कुष्ठ, पथरी, दाह, विष और गुदा के रक्तस्राव को दूर करनेवाला है।

निघंटु रत्नाकर के मतानुसार छरीला चरपरा, शीतल, सुगन्धित, हलका, हृदय को हितकारी, रुचिकारक तथा कफ दाह, तृषा, वमन, श्वास, घाव, खुजली, कोढ़, पथरी, विष, ज्वर, रुधिर, विकार, वातरोग और खूनी बवासीर को नष्ट करनेवाला है।

यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और खुश्क है। यह सुगन्धित, कब्ज करने वाला, संकोचक, पौष्टिक, धातुपरिवर्तक पेट के आफरे को दूर करने वाला और कामोद्दीपक है। यकृत और तिल्ली की सूजन और गुर्दे तथा मसाने की वायु को यह बिखेरता है। दिल की धड़कन, मृगी, वमन, जी मिचलाना, यकृत के रोग, गर्भाशय के रोग और मासिक धर्म सम्बन्धी बीमारियों में यह मुफीद है। यह कामेन्द्रिय को ताकत देता है और पथरी को बिखेरता है। हृदय के लिये यह एक बहुत पौष्टिक वस्तु है। इसको जलाकर इसका धुआं नाक में पहुँचाने से मृगी, सिर दर्द, आधा शीशा और हिस्टीरिया में लाभ पहुँचता है। इसे आँखों में लगाने से आँखों को ताकत मिलती है और उनकी ज्योति तेज होती है। आँखों की सूजन को चाहे वह सर्दी की वजह से हुई हो या गर्मी की वजह से, यह बहुत फायदा पहुँचाता है। इसका लेप करने से शरीर के ढीले अंग कठोर होते हैं। जोड़ों के दर्द में भी यह वस्तु लाभ पहुँचाती है। इसको पीसकर घाव पर छिड़कने से घाव जल्दी भर जाता है। यह आमाशय और आँखों को ताकत देता है और हिचकी को मिटाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

दर्प नाशक—इसका दर्प नाशक अनीसून है।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि बालछड़ और अजखर हैं।

मात्रा—यूनानी मत से इसकी मात्रा एक माशे तक की है।

अनुभूत चिकित्सा सागर के मतानुसार छरोला कामला रोग में बहुत उपकारी है। कुत्ते के विष को उतारने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसके सेवन से मन्दाग्नि मिटती है। फेफड़े के रोगों में भी इसका सेवन बहुत लाभदायक है। इसके चूर्ण को सूंघने से मस्तक पीड़ा मिटती है। व्रण और घाव पर इसको लगाने से बहुत लाभ होता है। कष्टदायक मासिक धर्म, वमन, पथरी, नाक से गाढे पीव का निकलना तथा यकृत, गर्भाशय और आमाशय की पीड़ा में यह उपयोगी है। गले और दाँतों के रोगों को भी यह मिटाता है। इसको पानी में औटाकर, पीसकर पुल्टिस बनाकर, गुर्दे और कमर पर बाँधने से पेशाब की रुकावट मिटकर पेशाब साफ होता है।

छत्री

नाम—हिन्दी—छत्री। पंजाब—कीग्राइन। लेटिन—Polyporus Officinalis [पोलोपोरस आफसिनेलिस] अंग्रेजी—Larc Agaric [लार्क एगेरिक]।

वर्णन—यह वनस्पति पंजाब के अन्दर पैदा होती है। ऐसा मालूम होता है कि यूनानी की सुप्रसिद्ध दवा गारीकून जिसका वर्णन इस ग्रन्थ के तीसरे भाग में दिया गया है, इसीसे तैयार होती है। यद्यपि इसका को मजबूत प्रमाण नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—यह मूत्रल, मृदुविरेचक और कफ निःसारक होती है। इसे स्नायुमंडल को पुष्ट करने के काम में लेते हैं। यह वनस्पति प्राचीन काल से ही ग्रीक और रोमन चिकित्सकों की अत्यन्त प्रिय औषधि रही है। मध्यकाल से यूनानी हकीमों ने इसकी इसी उपयोगिता के कारण इसे जीवन में अमृत तुल्य समझ कर इसके सम्बन्ध में काफी खोज की है। उनके मतानुसार इस औषधि में निम्नलिखित गुण हैं।

यह घाव को पूरती है। शरीर में गर्मी पैदा करती है। गिरने से मोच आजाने पर और हड्डी के टूट जाने पर भी यह लाभ पहुँचाती है। ज्वर में इसे शहद और पानी के साथ देते हैं। यकृत की शिकायतों में तथा दमा, पिलिया, पेचिश, गुर्दे के रोग, मूत्र नाली के रोग और उन्माद में भी यह बहुत उपयोगी है। क्षय में इसको अंगूर की शराब के साथ देते हैं। तिल्ली के रोगों में इसको शहद और सिरके के साथ दिया जाता है। पानी के साथ इसको देने से खून का बहना बन्द हो जाता है। मृगी में इसको शहद और सिरके के साथ देने से लाभ होता है। सर्प विष और दूसरे जहरों पर इसको शराब के साथ देने से फायदा पहुँचाता है।

जल

नाम—संस्कृत—सलिल, नीर, अम्बु, तोय, वारि, उदक, इत्यादि। हिन्दी—जल, पानी। बंगाल—जल। मराठी—उदक, पाणी। तेलगू—नीरू। फारसी—आब। अरबी—माया। अंग्रेजी—Water [वाटर]। लेटिन—Aqua [एक्वा]।

वर्णन—जल या पानी प्राणी मात्र के दिन-रात काम आने वाली चीज है। आयुर्वेदिक दृष्टि से यह दो प्रकार का होता है। एक दिव्य और दूसरा भौम। दिव्य जल के फिर ४ भेद होते हैं। धारा जल, करका जल, तोषार और हेम। इनमें धारा जल सबसे अधिक गुणकारी होता है। धारा जल स्वच्छ पथरीली या बालुकामय भूमि का होना चाहिये। यह धारा जल दो प्रकार का होता है। पहला गंगा जल और दूसरा समुद्र जल। इसकी परीक्षा करने का तरीका यह है कि सोने, चाँदी अथवा मिट्टी के पात्र से चावल डालकर उनमें जल भर दें। यदि उन चावलों का रंग न बदले और वे नहीं बिगड़ें तो उसे गंगा जल समझना चाहिये और अगर वे चावल सड़ जावें या उनका रंग बदल जावे तो उसको समुद्र जल समझना चाहिये। गंगा जल सर्वदोषनाशक, हलका, शीतल, रसायन, तृप्तिजनक, आनन्दवर्धक, पाचक, बुद्धिवर्धक और मूर्च्छा, तन्द्रा, दाह, श्रम और तृषा को नष्ट करता है। समुद्र जल सर्वदोषकारक, खारा नमकीन, शुक्र, दृष्टि और बल को नष्ट करने वाला, दुर्गन्धयुक्त, दोषकारक और सब कामों में अहितकर है। किन्तु आश्विन के महीने में इसके दोष कम हो जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

करका जल—दिव्य वायु और बिजली के संयोग से ताड़ित हुआ जो जल ओलों के रूप में आकाश से गिरता है वह करका जल कहलाता है। ओलों का जल शीतल, श्रमनाशक, रूखा, वात, कफ कारक और मूर्च्छा, मोह, सिर की पीड़ा और हिचकी को दूर करता है। यह सूजन तथा व्रण रोगियों के लिये अहितकर है और पित्त की प्रकृति वाले मनुष्यों को हितकारी है।

तौषार जल—तुषार का जल हलका, शीतल, श्रमनाशक, पित्त की पीड़ा को शान्त करने वाला, दोष निवारक, जल के रोगों को हरने वाला तथा कुष्ठ, श्लीपद, मकड़ी का विष, पारा और विसर्प रोग को नष्ट करने वाला है। यह क्षीण क्षत रोगों और शोथ रोगियों के लिए विशेष हितकारी है।

हिमजल—हिम के समान शीतल पर्वतों से जो बर्फ गल-गल कर जल टपकता है, उसको हिमजल कहते हैं। हिम-जल—धन, मधुर, कफकारी और मूर्च्छा, श्रम, भ्रम, रक्तपित्त, रक्तविकार और क्षत रोगों को नष्ट करता है।

भौमजल—जांगल, आनूप और साधारण के भेद से तीन प्रकार का होता है। जिस देश में थोड़ा जल और थोड़े वृक्ष हों और जहाँ के प्राणी पित्त तथा रुधिर के रोगी अधिक हों, उस देश को जांगल देश कहते हैं और वहाँ के जल को जांगल जल कहते हैं। जिस देश में बहुत जल और बहुत वृक्ष हों उस देश को अनूप देश कहते हैं। और वहाँ के जल को अनूप जल कहते हैं। इन दोनों के मध्यवर्ती देश को साधारण देश और वहाँ के जल को साधारण जल कहते हैं।

जांगल जल—रूखा, नमकीन, हलका, पित्तनाशक, जठराग्नि को प्रबल करने वाला और अनेक प्रकार के विकारों को दूर करने वाला होता है। अनूप जल स्वादिष्ट, स्निग्ध, भारी, जठराग्नि नाशक वृष्य और अनेक प्रकार के विकारों को पैदा करने वाला होता है। साधारण जल—मधुर, दीपन, शीतल, हलका और तृषा, दाह, मद, वमन और त्रिदोष को नष्ट करने वाला होता है।

इन भेदों के अतिरिक्त नदी का जल, कुएँ का जल, तालाब का जल, सरोवर का जल, बावड़ी का जल इत्यादि जलों के गुण, धर्म में भी थोड़ा-थोड़ा फर्क है। नदी का जल—मधुर, हलका, रूखा, गरम, वात को शान्त करने वाला, अग्निदीपक, बलकारक और पथ्य होता है। ये गुण शीघ्र बहने वाली नदियों के जल में ही समझना चाहिये। इस जल को शीत ऋतु के प्रारम्भ में और शिशिर ऋतु में ही सेवन करना चाहिये।

झरने का जल—पहाड़ों में से जो जल झरकर बहता है, उसको झरने का जल कहते हैं। झरने का जल रुचि-कारक, कफनाशक, दीपन, हलका, मधुर, कटुपाकी, वातजनक और पित्तनाशक होता है।

चौंड्य जल—जो गड्ढा चारों ओर से शिलाओं से घिरा हुआ हो, जिसका जल नील अंजन के समान निर्मल हो उसको चौंड्य जल कहते हैं। चौंड्यजल जठराग्नि बढ़ाने वाला, रूखा, कफनाशक, हलका, मधुर, पित्तनाशक, रुचिकारक और पाचक होता है।

कुएँ का जल—मीठा, त्रिदोष नाशक पथ्य और हलका होता है। कुएँ का खारा जल, कफ वात नाशक, दीपन और पित्तकारक होता है।

तालाब का जल—तालाब का जल स्वादिष्ट, कसैला, कटुपाकी, वातवर्धक, मल और मूत्र को बाँधने वाला तथा रक्तपित्त और कफ को नष्ट करने वाला होता है।

सरोवर का जल—सरोवर का जल बलकारक, तृषानाशक, मधुर, हलका, रोचक, कसैला, रूखा और मल तथा मूत्र को बाँधनेवाला होता है।

आयुर्वेद और जल चिकित्सा—ऊपर हम आयुर्वेद की दृष्टि से सब प्रकार के जलों के भेद और उनके साधारण गुण दोषों का वर्णन कर चुके हैं। मगर इसके सिवाय जल के द्वारा अनेक रोगों को दूर करने की पद्धति प्राचीन काल से इस देश में चली आ रही है और प्राचीन शास्त्रों में इसका विशद विवेचन किया गया है। उनमें से १।२ पद्धतियों का नीचे वर्णन किया जाता है।

आठ कटोरी जल का प्रयोग—आजकल के पाश्चात्य रसायन शास्त्रियों का ख्याल है कि प्राणी मात्र का जीवन एक प्रकार के रासायनिक फेरफार का ही परिणाम है। इस रासायनिक फेरफार के लिए शरीर में एक निश्चित परिणाम में गर्मी का होना आवश्यक है। शरीर के अन्दर पाई जाने वाली यह कुदरती गर्मी जब कम हो जाती है तब कई प्रकार

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

की व्याधियाँ खड़ी होती हैं। यह गर्मी जब बिल्कुल नष्ट हो जाती है तब जीवधारी की मृत्यु हो जाती है। इसलिए जीवन को सुरक्षित रखने के लिए शरीर में इस गर्मी को संचित रखने वाले पदार्थों की आवश्यकता होती रहती है। ऐसे पदार्थों में जल सबसे उत्तम पदार्थ है। क्योंकि इससे किसी भी प्रकार का नुकसान न होते हुए शरीर को जितनी गर्मी की आवश्यकता होती हैं, उतनी गर्मी उसे दी जा सकती है।

हमारे प्राचीन आर्यों ने भी इस विज्ञान को बहुत प्राचीन काल से समझा हुआ था और इसके लिए उन्होंने पानी का एक बहुत सादा उपचार निर्माण किया था। यह उपचार आठ कटोरी पानी के प्रयोग के नाम से प्रसिद्ध है। जब मनुष्य को भयंकर रीति से ज्वर चढ़ रहा हो, वायु बहुत बढ़ गया हो, मूर्च्छा आ गई हो, दस्त-उल्टी वगैरह होती हो, शरीर ठण्डा पड़ गया हो अथवा इसी प्रकार की जिन्दगी को जोखम में डालने वाले दूसरे लक्षण दिखाई देते हों और केशर कस्तूरी, स्प्रिट, एमोनिया, एरोमेटिक, हेमगर्भ, हिरण्यगर्भ, चन्द्रोदय, इत्यादि बहुमूल्य औषधियाँ जवाब दे चुकी हों, ऐसी हालत में यह आठ कटोरी जल का प्रयोग काम कर देता है।

इस आठ कटोरी जल को बनाने की रीति इस प्रकार है—एक मिट्टी के बरतन में आठ कटोरी भर पानी डालकर उसमें सूँठ, मिरच, पीपर, तज, लौंग, बायबिडंग, प्रत्येक डेढ़-डेढ़माशा और तुलसी तथा बेल के पत्ते दो-दो तोला डालकर आँच पर चढ़ाना चाहिये। जब जलते-जलते एक कटोरी पानी शेष रह जाय तब उसको छान कर रोगी को पिला देना चाहिये। इस प्रकार दिन में ३ बार पानी तैयार करके रोगी को पिलाने से चाहे जैसा ज्वर रोगी को चढ़ा हो तो उतर जाता है। अगर ज्वर का वेग बहुत ज्यादा हो और आठ कटोरी पानी के प्रयोग से शान्ति न पड़ती हो तो आठ कटोरी की जगह उस मिट्टी के बर्तन में १६, ३२ अथवा ६४ कटोरी पानी डालकर उबालते-उबालते जब एक कटोरी पानी रह जाय तक उसको छानकर पिलाना चाहिये। यह और भी अधिक गुणकारी सिद्ध होता है। कभी-कभी बिलकुल असाध्यावस्था में प्राप्त हुए रोगी के शरीर में भी इससे ऐसी गर्मी पैदा हो जाती है कि वह एक बार तो मरण-शय्या से उठकर बात करने में समर्थ हो जाता है।

उषा जलपान—

शरीर में पैदा हुई अनेक व्याधियों को नष्ट करने के लिए जिस प्रकार गरम जल का प्रयोग उपयोगी होता है, उसी प्रकार शरीर में बढ़े हुए दोषों को समानता पर लाने के लिए और प्रकृति को स्वस्थ बनाने के लिए उषाकाल या बड़े सवेरे ठण्डा जल पीने से बड़ा लाभ होता है। वह जल कैसे और कितना पिया जाय। इस विषय का विवेचन करते हुए निघण्टु रत्नाकर में लिखा है कि प्रातःकाल रविमण्डल के उदय के पहले अरुणोदय के समय अर्थात् डेढ़ घण्टा रात शेष रहने पर पेशाब करने के पहिले बिछौने पर ही बैठे हुए जो मनुष्य रात्रि को ताँबे के बर्तन में भरकर रखा हुआ आठ अंजली जल पीता है उस मनुष्य के बढ़े हुए वातपित्त और कफ तीनों दोषों की शान्ति हो जाती है और उसमें अनेकों स्त्रियों के रमण करने के योग्य बल पैदा हो जाता है।

जल और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—

आधुनिक चिकित्साशास्त्र में भी सिर्फ जल के द्वारा मनुष्य शरीर में होने वाली तमाम व्याधियों की चिकित्सा करने की पद्धति ने बहुत महत्व धारण किया है। इस पद्धति का मूल जन्मदाता विंसेंज प्रिसनिज [Vincenz Priesntz] नामक एक अशिक्षित किसान था। उसने सन् १८२९ में ग्रेफ्नेनवर्ग में एक चिकित्सागृह की स्थापना की। यह एक बड़ा सूक्ष्मदर्शी और अन्तर्दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति था। वह पहिले अस्वस्थ रहा करता था और अपने को पुनः स्वस्थ बनाने के लिए प्रयत्नशील हो रहा था। इसी सिलसिले में उसने ठण्डे जल में रोगों को दूर करने की अद्भुत शक्ति का अनुसन्धान किया। इसका उसने अपने सेनेटोरियम के रोगियों पर भीतरी और बाहरी दोनों तरह का प्रयोग किया। कुछ ही समय में उसका स्वास्थ्यगृह रोगियों और पीड़ितों के लिये तीर्थ-स्थान बन गया। उपचार के लिए दूर-दूर से झुण्ड के झुण्ड लोग वहाँ पहुंचने लगे। उसके पश्चात् जे० स्क्राथ नामक चिकित्सक ने जल चिकित्सा पद्धति को अपनाकर शुरू में प्रबल विरोध और अन्त में महान कीर्ति को सम्पादित किया। सन् १८४९ में प्रिटम वर्ग के ड्यूक का पैर बुरी तरह से जख्मी हो गया और उनकी हालत नाजुक हो गई। तत्कालीन डाक्टर उसको अच्छा नहीं कर सके और उन्होंने उसका पैर काट डालने की व्यवस्था दे दी। तब ड्यूक स्क्राथ की संस्था में पहुंचे और यहाँ से कुछ ही महीनों के पश्चात् वे अपना चङ्गा पैर लेकर घर लौटे।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इसके पश्चात् फादर नीट, अर्नाल्ड रिक्ली, डाक्टर हेनरिच् लेवेन इत्यादि लोगों ने इस पद्धति को अपनाकर इसका विकास किया। मगर यह निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि जल चिकित्सा के सबसे बड़े आश्चर्य जर्मनी में डाक्टर लुई कुने हुए। सिर्फ २० साल की अवस्था में ही उनका स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो गया और उन्होंने डाक्टरों की चिकित्सा से ऊब-कर प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली जिससे उनका स्वास्थ्य शीघ्र ही सुधर गया और वे इस पद्धति के भक्त बन गये। उन्होंने कई वर्ष तक इस पद्धति का अध्ययन करके सन् १८८३ में लिपजिग में स्वास्थ्य गृह की स्थापना की और वहाँ से हजारों असाध्य रोगियों को उन्होंने जल और धूप की चिकित्सा के द्वारा स्वास्थ्य प्रदान किया। उन्होंने रोगों को नष्ट करने के लिए कुछ स्नानों की आयोजना की।। इन स्नानों का विशेष वर्णन जल चिकित्सा के किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ में देखना चाहिये। यहाँ पर उनको अत्यन्त प्रिय ३।४ स्नानों का संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

बाष्प स्नान [Steam Bath]—मिट्टी अथवा ताँबे के ४ या ५ ऐसे बर्तन जिसमें १०।१५ सेर पानी समा सके, लेकर उनमें स्वच्छ ताजा जल भरकर औटाना चाहिए। जब पानी खूब खोलने लगे और उसमें आवाज के साथ भाप निक-लने लगे तब रोगी के सब वस्त्र उतार कर उसको एक ऐसी चारपाई पर जिसमें चारों तरफ छेद हो और जिसमें भाप आसानी से जा सके सुला देना चाहिये। उसके पश्चात् चारपाई को चारों तरफ कम्बल से इस प्रकार ओढ़ा देना चाहिये कि वह कम्बल उस चारपाई के चारो ओर जमीन तक ढिक जावे और उसमें से भाप बाहर निकलने की गुञ्जाइश न रहे। उसके पश्चात् खौलते हुए पानी के बर्तन में से दो बर्तन लेकर उन बर्तनों को चारपाई के नीचे इस प्रकार रखना चाहिये कि एक बर्तन रोगी की पीठ के न चे और दूसरा बर्तन रोगी के सिर के नीचे रहे। उसके पश्चात् उस कम्बल के चारों कोनों को ऐसे दबा देना चाहिये जिससे भाप को बाहर जाने की गुञ्जाइश न रहे। पानी के बर्तनों पर ढक्कन की सुविधा भी रहनी चाहिये। जिससे अगर कभी भाप को कम ज्यादा करने की जरूरत हो तो की जा सके। रोगी को जितनी भाप सहन हो उतनी ही देना चाहिये। १०-१५ मिनट मे रोगी का सारा शरीर पसीने से तर बतर हो जायगा. उसमें कुछ कमी मालूम हो तो उन बर्तनों को निकाल कर उनके बदले में दूसरे ताजे बर्तन रख देना चाहिये। जिससे सारे शरीर का विजातीय द्रव्य पसीने की राह बाहर निकल जायगा और रोगी को परम शान्ति का अनुभव होगा।

जिन लोगों के पेट में विजातीय पदार्थ एकत्रित हो गये हों, आमाशय खराब हो गया हो, आँतें कमजोर पड़ गई हों, हमेशा कब्जियत रहती हो, उन लोगों को सिर्फ पेट और पीठ के भाग पर यह स्नान देना चाहिये। जिन लोगों की छाती में दर्द रहता हो, हृदय कमजोर पड़ गया हो, फेफड़े में विकार हो गया हो उनको सिर्फ छाती और पीठ पर यह स्नान देना चाहिए। मूत्राशय की बीमारी और प्रदर तथा प्रमेह के रोगियों को पेड़ू के ऊपर और मस्तक, कान, नाक, वगैरह के रोगियों को सिर के ऊपर बाष्प स्नान लेना चाहिये। जिस अङ्ग पर वाष्प स्नान लेना हो उसी अंग को कम्बल से ढँक कर उसके नीचे भाप का बर्तन रख कर उसको चारो तरफ से बन्द कर देना चाहिये। शेष अंग को खुला रखना चाहिये। बाष्पस्नान के बाद प्रत्येक व्यक्ति को कटिस्नान आवश्यक होता है। उसकी विधि इस प्रकार है।

कटिस्नान—कटिस्नान के लिये ठडे पानी से भरे हुए एक लम्बे टब की आवश्यकता होती है। इस टब में स्वच्छ ठंडा जल इतना भरा हुआ होना चाहिये जिसमें मनुष्य की नाभि से नीचे का भाग और उसकी जंघाएँ उसमें डूब सकें। नाभि से ऊपर का शरीर का भाग और जंघाओं से नीचे का पैरों का भाग पानी से बाहर रहना चाहिए। टब के बाहर एक ऐसी तिपाई रखना चाहिये जिससे टब के बाहर वाला पैरों का भाग आसानी से उस तिपाई पर रक्खा जा सके। जल कुएँ का स्वच्छ और ताजा होना चाहिये। वह इतना ठंडा न हो कि सहन न हो सके। उसकी गर्मी ६८ से लेकर ८१ डिग्री फॉरेनहाइट तक होना चाहिये। कुए का ताजा जल प्रायः इसी गर्मी वाला होता है। जिस जगह यह स्नान लेना हो वह जगह साफ, हवादार और एकान्त होना चाहिये। पेट भर कर भोजन किये के बाद या बिलकुल भूखे पेट यह स्नान नहीं लेना चाहिये। शरीर के वस्त्रों को दूर करके टब में बैठकर पैरों को बाहर की तिपाई पर रख देना चाहिये। पैरों के सूखे भाग पर और सिर पर ऊन के गरम वस्त्र ढक देना चाहिये।

टब में बैठने के पश्चात् खादी का एक भींगा हुआ टुवाल लेकर उससे नाभि के नीचे वाले पेड़ू के भाग को जल्दी-जल्दी भली प्रकार घिसना चाहिये। जिससे वहाँ के रोम-कूप खुलकर जल के परमाणु उनके अन्दर आसानी से जा सकें। सारे शरीर में ठण्डक का संचार होने तक यह स्नान लेना चाहिये। शुरू-शुरू में ५ से १० मिनट तक यह स्नान काफी होता

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

है। अभ्यास होने पर धीरे-धीरे आधा घण्टा या उससे भी अधिक समय तक यह स्नान लिया जा सकता है। कमजोर मनुष्यों के लिये ३।४ मिनट का ही स्नान काफी होता है। इस स्नान के पश्चात् शरीर कुछ ठंडा पड़ जाता है। इसलिये पुनः गर्मी का संचार करने के लिये मनुष्य को खेल-कूद या हलके व्यायाम करना चाहिये और निर्बल मनुष्य को कपड़े पहिन कर, ओढ़कर कुछ देर बिछौने में सो जाना चाहिये।

शरीर का बलाबल और ऋतु का विचार कर के दिन में १।२ या ३ बार यह स्नान लिया जा सकता है। इस कटि-स्नान के लेने से ढोल के समान फूला हुआ पेट कुछ दिनों में पतला पड़ जाता है। जलोदर, कब्जियत, मंदाग्नि, अतिसार, हैजा, शूल, संग्रहणी इत्यादि उदर और आँतों से सम्बन्ध रखने वाले रोगों के भयंकर आक्रमण के समय यह कटि-स्नान जितना फायदा पहुँचाता है उतना कोई दूसरी दवा नहीं पहुँचा सकती। कमर का दर्द, मूत्राशय और मलाशय के रोग और पथरी में भी इससे बड़ा लाभ होता है। अगर किसी का पेशाब बन्द हो गया हो या सूजाक की असह्य जलन हो रही हो तो मामूली गरम पानी में इस प्रकार १० मिनट बैठने से पेशाब साफ होकर जलन कम हो जाती है।

मेहनस्नान—यह स्नान मनुष्य की गुह्येन्द्रिय का स्नान है। मूत्राशय और गर्भाशय के रोग इस स्नान से बहुत जल्दी आराम होते हैं। यह स्नान मासिक धर्म के समय नहीं लेना चाहिये। बल्कि मासिक धर्म से शुद्ध होने के पश्चात् इसको लेना चाहिये। ऊपर बताये हुये कटिस्नान के टब में एक छोटी तिपाई रखकर उसमें इतना पानी भरना चाहिये कि उस तिपाई की बैठक की जगह के बराबर वह पानी आ जाय। उसके पश्चात् रोगी को उस तिपाई पर बैठा देना चाहिये और खादी का एक मुलायम टावेल पानी में भिगोकर उससे योनि के मुख को बहुत धीमे-धीमे मलना चाहिये। बार-बार टावेल को पानी में भिगोकर उसको मलते रहना चाहिये। इस स्नान में गुह्य भाग के सिवाय मनुष्य का सारा भाग पानी के बाहर रहता है। सबेरे पहला पेशाब करने के बाद ही यह स्नान शुरू कर देना चाहिये। १० मिनट से लेकर १ घण्टे तक यह स्नान किया जा सकता है। इस स्नान से सिर्फ बाहरी शुद्धि ही नहीं होती परन्तु अन्दर के सब रोग भी दूर हो जाते हैं। योनि की खुजली, योनिकन्द, योनिभ्रंश, वगैरह रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं। जो स्त्रियाँ गुह्यांग के रोगों से अत्यन्त पीड़ित हैं और जो सन्तान पैदा होने की आशा छोड़ चुकी हैं वे अगर नियमित रूप से इस स्नान का प्रयोग करें तो कुछ दिनों में अवश्य रोग मुक्त होकर सन्तान सुख को प्राप्त कर सकती हैं।

स्त्रियों ही की तरह पुरुषों के लिये भी यह स्नान बड़ा उपयोगी है। ऊपर बतलाये अनुसार टब में पानी भर कर उसमें तिपाई रखकर उसपर पुरुष को बैठना चाहिये। फिर बायें हाथ में कामेन्द्रिय को लेकर उसका चमड़ा आगे खींचकर सुपारी को ढक देना चाहिये। फिर कामेन्द्रिय का अगला भाग पानी में डूबा हुआ रखकर दाहिने हाथ में एक मुलायम कपड़ा लेकर पानी में भिगोकर उससे धीरे-धीरे कामेन्द्रिय के अगले हिस्से को मलना चाहिये। यह क्रिया शुरू में १० मिनिट से लेकर बढ़ते-बढ़ते पचास मिनिट तक की जा सकती है। उसके पश्चात् १० मिनिट तक क्रिया बन्द करके कामेन्द्रिय को पानी में डूबी हुई रखना चाहिये। इस स्नान में कामेन्द्रिय को छोड़कर मनुष्य का सारा शरीर सूखा रहता है।

इस प्रकार यह स्नान करने से लिंगेन्द्रिय की निर्बल हुई नसों में शक्ति संचार होता है। कुसंग की वजह से जो लोग अपने जीवन को नष्ट कर चुके हैं अथवा हस्त मैथुन के द्वारा जो अपनी नसों को बेकार कर चुके हैं उनके लिये यह स्नान आशीर्वाद स्वरूप है। लगातार एक महीने तक यह स्नान करते रहने से नपुंसकता, इन्द्रिय का टेढ़ापन, धातुस्राव, वगैरह रोग नष्ट होकर आनन्दमय जिन्दगी प्राप्त होती है।

निद्रा-दायक स्नान—अगर किसी रोगी को अच्छी तरह से नींद न आती हो तो सोने के कुछ समय पहले उसके दोनों पैरों को साधारण गरम जल में रख कर सिर के ऊपर ठण्डे जल की धार देना चाहिये। ऐसा करने से रक्त की गति सिर की तरफ से नरम पड़ के पैरों के तरफ जाती है। जिससे उसे थोड़ी देर में सुखमय निद्रा आ जाती है।

गीले कपड़े का स्नान—अच्छे गरम जल में बन्नात के एक बड़े टुकड़े को डुबो कर भिगो लेना चाहिये। उस समय उसमें से गरम-गरम भाप निकलती है। उस कपड़े को शरीर पर लपेट लेना चाहिये और उसके ऊपर एक और सूखा गरम कपड़ा लपेट कर रोगी को सुला देना चाहिए। आधे घण्टे के बाद इन सब कपड़ों को दूर कर देना चाहिए। इस समय

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रोगी को हवा नहीं लगने देना चाहिए और साफ कपड़े से उसके शरीर को पोंछ देना चाहिए। ज्वर चढ़ने को बहुत समय होने पर भी अगर वह नहीं उतरता हो अथवा त्रिदोष इत्यादि व्याधियों से फेफड़े में वरम आ गया हो तो यह क्रिया लाभदायक होती है।

इसी प्रकार सन के कपड़े को ठंडे पानी में भिगोकर एक कम्बल अथवा रजाई के ऊपर फैला दिया जाता है और उस पर रोगी को सुला देते हैं। उसके पश्चात् उसके हाथ ऊंचे करके नीचे बिछे हुए गीले कपड़े के आजू-बाजू का भाग उसके शरीर पर लपेट देते हैं। उसके बाद रोगी को रजाई ओढ़ाकर सुला देते हैं। जिससे भीतर गर्मी पैदा होकर पसीना आने लगता है। आधे घण्टे के पीछे इन सब कपड़ों को दूर कर दिया जाता है। यह सब प्रयोग करते समय खून का जोश मस्तिष्क में न चढ़ जाय, इसके लिये रोगी के सिर के ऊपर ठंडे पानी में भींगा हुआ रुमाल रक्खा जाता है। उत्तप्त ज्वर वाले रोगी के लिये जिसका सारा शरीर जल रहा हो और जिसको ओढ़ना बिलकुल न सुहाता हो, यह बहुत लाभदायक है।

सारे शरीर पर यह पट्टा न बांधते हुए अगर शरीर के खास-खास अंगों पर इसको बांधा जाय तो कई बीमारियों में बड़ा लाभ होता है। विशेष अंगों पर बांधते समय पट्टे को २।३ तह करके बाँधना चाहिये और इसके ऊपर सूखा गरम कपड़ा लपेट देना चाहिये। अगर पेट के ऊपर ऐसा पट्टा बाँध कर रात को रोगी को सुला दिया जाय तो टाइफाइड ज्वर में बहुत लाभ होता है। कब्जियत के रोगियों पर यह प्रयोग करने से उनको साफ दस्त आने लगता है। धातुस्राव के रोगियों पर पट्टे को चढ़ाने से स्वप्न में होने वाला वीर्यस्राव बन्द हो जाता है। गर्भाशय और मूत्राशय के रोग भी इससे मिट जाते हैं।

गले के आस-पास इस प्रकार का पट्टा बाँधने से टांसिल और गले की सूजन दूर हो जाती है। छाती के ऊपर ऐसा पट्टा चढ़ाने से फेफड़ों की सूजन में लाभ होता है। इसके अतिरिक्त हथियार से पड़े हुए घाव, दूसरे जखम, गरमी की सूजन, कमर का दुखना, संधियों की सूजन, मोच, लचक इत्यादि रोग भी दूसरी दवाइयों की अपेक्षा ऐसे पट्टों से जल्दी आराम हो जाते हैं।

बरफ के प्रयोग—कुछ रोग ऐसे होते हैं कि जिनकी शांति के लिये अत्यन्त शीतल जल की आवश्यकता होती है। ऐसे टाइम पर पानी के बदले बरफ का उपयोग किया जाता है। अगर रोगी के शरीर के किसी भी भाग से रक्तस्राव होता हो तो उसको बन्द करने के लिये बरफ का प्रयोग आश्चर्यजनक उपाय है। मुंह, गला, नाक, योनि, गुदा मार्ग इत्यादि शरीर के जिस किसी भी अंग से खून गिरता हो उस समय एक रबर की थैली मे बरफ भरकर रखने से फौरन रक्त प्रवाह बन्द हो जाता है। फेफड़े से कभी-कभी ऐसा रक्तस्राव होने लगता है कि रोगी एकदम खून की उल्टियां करने लगता है। ऐसे समय उसकी छाती पर बरफ रखकर उसको २।४।५ टुकड़े बरफ के निगलवा देना चाहिये। पेट में उन टुकड़ों के पहुँचते ही खून गिरना बन्द हो जायगा। क्योंकि रक्तवाहिनी नलियों में जो छेद हो जाते हैं वे बरफ की ठंडक की वजह से बहुत सिकुड़ जाते हैं।

गर्भाशय के रास्ते से अगर बहुत खून बहता हो तो उसको बन्द करने के लिये भी बरफ के टुकड़े निगलवाना चाहिये और गुदा तथा योनि के ऊपर भी बरफ रखना चाहिए।

जठर के ऊपर पड़े हुए घावों की वजह से अगर रोगी को बहुत उल्टियां होती हों तो एक आइसबेग में बरफ के टुकड़े भरकर उस बेग को पेड़ू के ऊपर रखने से रोगी को तत्काल शान्ति मिलती है।

मस्तिष्क या मस्तिष्क के अन्दर की पतली झिल्ली पर पड़े हुए छिद्रों या सूजन को नष्ट करने के लिये अथवा दीर्घ काल के ज्वर से मगज में संचित हुई गर्मी की वजह से पैदा हुए भयंकर मस्तक शूल में भी बरफ से भरा हुआ आइसबेग सिर पर रखने से बड़ा काम होता है। कभी-कभी तीव्र ज्वर की वजह से गले में बहुत गर्मी पैदा होकर कंठमाला के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ऐसे समय में गले की सूजन और दर्द को कम करने के लिये बरफ एक सफल दवा है। इसी प्रकार अण्डकोष के ऊपर बरफ रखने से उसमें उतरी हुई आंत फिर से ऊपर चढ़ जाती है और अण्डकोष की सूजन तुरत दूर हो जाती है।

बरफ का उपचार करते समय यह खयाल रखना चाहिये कि अत्यन्त निर्बल, वृद्ध, बिलकुल शक्तिहीन और बिलकुल निर्बल मनुष्यों पर यह उपचार नहीं किया जाय।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

औषधि मिश्रित बाष्प स्नान—द्रोणपुष्पी के पत्तों को पानी के अन्दर खूब उबालकर उस पानी से ऊपर बतलाई हुई रीति से बाष्प-स्नान देने से साधारण बाष्प स्नान की अपेक्षा अधिक लाभ होता है। भयंकर बुखार, सन्निपात और संधिवात में भी इसी प्रकार का स्नान बहुत अधिक लाभ बतलाता है।

यह खयाल रखना चाहिये कि जल चिकित्सा में उपयोग करने के लिये बहुत शुद्ध और साफ जल काम में लेना चाहिये। जलाशय में सड़ी हुई चीजें डालने से अथवा वृक्षों के पत्ते गिरने से पानी खराब हो जाता है ऐसे पानी का उपयोग नहीं करना चाहिये। पानी भरने के पात्र भी बहुत साफ होना चाहिये। अगर बरतन में पानी भरे १२ घंटे से अधिक हो गये हों तो उसे स्नान चिकित्सा में नहीं लेना चाहिये। बरसाती नदियों का पानी भी इस काय के लिये बिलकुल वर्जनीय है। जल चिकित्सा करने वाले को खानपान के सम्बन्ध में पूरी सावधानी रखना चाहिये। हलका सात्विक और शुद्ध भोजन करना चाहिये। मिठाई, नमक और मसाले बिलकुल नहीं खाना चाहिये। ताजे फल अधिक से अधिक देना चाहिये।

जलकुम्भी

नाम—संस्कृत—कुम्भिका, वारिपर्णी, वारिमूली, आकाशमूली, कुमुदा, जलवल्कल, जलकुम्भी इत्यादि। हिन्दी—जलकुम्भी। बंगाल—पाना, ताकापाना। गुजराती—जलकुम्भी, जलश्रृङ्खला। मराठी—गोंडाल, जल मंडवी, शेरवल। मलयालम—नीरचीर। कनाड़ी—अन्तर्गङ्गा। तेलगू—अन्तदभिर। तामील—आकाशतामरे। यूनानी—सतरअतयुतिसा। अरबी—फारिसअलमा। अंग्रेजी—The wester Lettuce (दी वेस्टर लेट्यूस) लेटिन—Pistia stratiotes [पिस्टिया स्ट्रेटिओटस]।

वर्णन—यह वनस्पति जल के ऊपर पैदा होती है। इसका स्वरूप काई की तरह होता है जो प्रायः सब दूर तालाबों में और रुके हुए पानी पर छाई हुई रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जलकुम्भी शीतल, कड़वी, हलकी, स्वादिष्ट, सारक, चरपरी, त्रिदोषनाशक और रूखी होती है। ज्वर, रक्तविकार और क्षय रोगजनित ग्रन्थियों के बढ़ने पर यह लाभदायक है।

इसकी राख को पानी में गलाकर उससे एक प्रकार का क्षार तैयार किया जाता है। इस क्षार में पोटास क्लोराइड, और पोटास सल्फेट जवाखार की तरह ही पाया जाता है।

गले की सूजन में जलकुम्भी और नागर वेल के पान का स्वरस देने से लाभ होता है। मूत्राघात या पेशाब की जलन बन्द करने के लिए जलकुम्भी का काढ़ा पिलाते हैं और इसको पेड़ू पर बांधते हैं।

इसके पत्तों का पुल्टिस बनाकर खूनी बवासीर और रक्तस्राव के ऊपर लगाया जाता है। चावल और नारियल के दूध के साथ इसको मिलाकर पेचिश की बीमारी में देते हैं। खाँसी और श्वांस में इसको गुलाब जल और शक्कर के साथ मिलाकर देते हैं। इसकी राख को कपाल के दाद के ऊपर लगाने से दाद नष्ट हो जाता है।

मुण्डा जाति के लोग इस वनस्पति को कर्ण शूल के लिये काम में लेते हैं।

चीन के चिकित्सा शास्त्र में यह वनस्पति बहुत प्राचीन समय से लोकप्रिय रही है। वहाँ पर इसे घाव, उपदंश रोग जनित फोड़ों और अन्य चर्म रोगों में काम में लेते हैं।

लॉरियूनियन में इसका काढ़ा मूत्रनाली के रोगों में उपयोगी माना जाता है। इसके पत्तों की गोलियां बनाकर उन्हें उपदंश की बीमारी में देने के काम में लेते हैं।

कोमान के मतानुसार इसके पत्तों के रस को नारियल के तेल में सिद्ध करके पुराने चर्म रोगों पर लगाने के काम में लिया गया और इससे बहुत से बीमारों को बड़ा लाभ हुआ।

यूनानी मत—हकीम जालीनूस ने जलकुम्भी की दो जातियां बताई हैं। एक जल में पैदा होने वाली और दूसरी जंगली।

यूनानी मत से इसकी तबियत सर्द और तर है। इसको गरमी की सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है। पेशाब की जलन को यह दूर करती है। शरीर के किसी भी हिस्से से होने वाले रक्तस्राव को यह बन्द कर देती है। नासूर को भरती है। इसकी जड़ के चूर्ण की मिश्री के साथ फंकी लेने से और ऊपर से गुलाब का अर्क पीने से खाँसी दूर हो जाती है। इसकी जड़ को काढ़े में शहद मिलाकर पीने से दमा जाता रहता है। इसकी राख को गाय के मूत्र में पकाकर छान कर पीने से गलगंड में लाभ होता है। इसको खाने से सिर की गंज भी मिटती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जल जंबुआ

नाम—हिन्दी—जल जम्बुआ। मराठी—कन्चेरी। गुजराती—जल जांबवो। काठियावाड़—जरभँगरो, जरमाजी। कनाड़ी—दोना वोनी। लेटिन—Alternanthera Sessiles [आल्टरनेथेरा सेसिलिस]।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष के सभी उष्ण भागों में पैदा होती है। इसके पौधे जमीन पर फैले हुए रहते हैं और ज्यों-ज्यों इनकी डालियाँ जमीन पर आगे बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों अपने तन्तु छोड़कर जमीन में अपनी जड़ें बनाती जाती हैं। इसके पत्ते आमने-सामने लगते हैं। यह तीन से लेकर ५ सेन्टीमीटर तक लम्बे और ३ से २ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद या गुलाबी रंग के होते हैं इसका फल दबा हुआ होता है। यह वनस्पति पानी के किनारे और भीगे स्थानों पर ज्यादा पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति मूत्रल, ग्राही और शीतल होती है। इसके खाने से दूध बहुत बढ़ता है। सीलोन और मेडागास्कर में इसका उपयोग दुग्धवर्धक औषधि की तरह होता है। इसकी छाल या पत्तों का रस गाय के घी के साथ सर्प दंश पर पिलाया जाता है। जलन करने वाले फोड़ों पर इसके पत्तों का लेप करने से शान्ति होती है।

जलकेशर

नाम—हिन्दी, यूनानी—जलकेशर।

वर्णन—यह एक बड़ा और तनेदार पेड़ होता है। इसकी डालियाँ बड़ी-बड़ी होती हैं। इसके पत्ते इमली के पत्तों की तरह बहुतायत से होते हैं। इसमें हमेशा फूल खिले हुए रहते हैं। हर फूल में ५ पंखड़ियाँ होती हैं। इन फूलों में किसी का रंग सन्दली, किसी का पीला और किसी का सफेद होता है। इन फूलों के बीच में लाल रंग के केशर की तरह रेशे होते हैं। इन रेशों की नोंक पर चावलों की तरह एक वस्तु लगी हुई रहती है। इसकी फली करीब २।३ इंच लम्बी और चपटी होती है। इस फली में बीज होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होती है। मल को फुलाने वाली और दस्तावर है। गठिया, ग्रन्थिवात और सूजन के लिये इसको पीना और इसकी धूनी देना मुफीद है। इसका फूल खुशबूदार होता है। यह कब्ज पैदा करता है और दिल की धड़कन को मिटाता है। इसके पत्तों को खाने से औरतों के स्तन बढ़ जाते हैं। इसके पत्ते सुजाक और प्रमेह में अच्छा लाभ पहुँचाते हैं।

सूजाक—जलकेशर के पत्तों का स्वरस १ तोला, लहसुन की १ गठान, गाय का घी ६ तोला। इन सब चीजों को मिलाकर प्रातःकाल चाट लें और भोजन में नमक खाना छोड़ दें। इस औषधि के सेवन से एक ही दिन में सूजाक में लाभ होता है।

जल पीप्पली

नाम—संस्कृत—जल पिप्पली, शार्दी, शकुलादनी, मत्स्यगन्धा, लांगली, महाराष्ट्री, तोयवल्लरी, अग्निज्वाला, चित्रपत्री, प्राणदा, तृणबीता, बहुशाखा। हिन्दी—जल पिप्पली, भुइओकरा, पनसिगा। गंगतिरिया। बंगाल—पानी कंचिरा, कांचड़ाघांस, पनिसिगा। मराठी—जल पिप्पली, रतवेल। गुजराती—रतवेलिया। मलयालम—काट्टू पिप्पली। तामिल—पोड्दले। तेलगू—बोक्केन। फारसी—पीपल आबी। अरबी—फिलफिल अलमा। अंग्रेजी—Purple Lippia [परपल लीपिया] लेटिन—Lippia Nodiflora [लिपिया नोडीफ्लोरा]।

वर्णन—यह क्षुद्र जाति की वनस्पति सब दूर पानी के आश्रय से पैदा होती है और बारहों महीने ताजी मिल सकती है। इसके पौधे जमीन पर फैले हुए रहते हैं। इसके पत्ते नीचे से सिकुड़े और ऊपर से चौड़े रहते हैं। इसके फूल पीले, सफेद, गुलाबी और बैंगनीपन लिए हुए रहते हैं। इसके फूल पीपल की तरह मगर उनसे कुछ छोटे रहते हैं। हर एक फल में हरे बीज रहते हैं। इसके पत्ते चनों के पत्तों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत–निघन्टु रत्नाकर के मतानुसार जल पीपल हृदय को हितकारी, नेत्रों के लिए लाभदायक, कड़वी, शीतल, मूत्रल और ज्वरनाशक तथा स्तम्भक होती है। यह शुक्र जनक, हलकी, रूखी, तीक्ष्ण,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कसैली, मुंह को शुद्ध करने वाली, रुचिकारक, अग्निदीपक और वात कारक होती है। यह रुधिर विकार, रसदोष, कृमि, दाह, व्रण, श्वास, कफ, चित्तभ्रम, मूर्च्छा, तृषा तथा पित्त ज्वर को दूर करती है।

इस वनस्पति को पीसकर सूजन पर बांधने से जलन कम हो जाती है। इस वनस्पति को जरा भूनकर और उसकी फांट बनाकर देने से बच्चों की सरदी और स्त्रियों के प्रसूति रोग दूर होते हैं। जहरीले फोड़े-फुन्सियों पर इसको पीस कर लगाने से बड़ा लाभ होता है। इसके पत्तों का रस निकाल कर उसको गरम करके शहद के साथ चटाने से बच्चों के पेट का बोझ कट जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। काली मिरच से इसकी गर्मी और तेजी कम है। यह पेशाब अधिक लाती है। वात पित्त और कफ की खराबी को दस्त की राह से निकाल देती है। आतशक [गर्मी] और खारिश में भी यह मुफीद है। इसको ६ माशे की मात्रा में पानी के साथ पीसकर लेने से अच्छा जुलाब हो जाता है। दिल और आंख के लिए यह फायदेमन्द है। इसके सेवन से कामेन्द्रिय की शक्ति बढ़ती है। सीने की जलन और रक्त विकार को यह दूर करती है। इसके लेप से बादी का दर्द और कफ की सूजन मिट जाती है। मुंह की झाइं, दाद और आंखों पर के काले दाग इसके लेप से मिट जाते हैं।

इसकी लाल फूल वाली जाति के बीजों को जीरे के साथ लेने से वमन, प्यास की अधिकता और जी की मिचलाहट मिट जाती है। इसकी जड़ को दांत में रखने से दांत का दर्द मिट जाता है। मगर ज्यादा टाइम तक रखने से दांत गिर जाते हैं।

मात्रा—यूनानी मत से इसकी मात्रा ७ माशे तक की है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति पेचिश और पागलपन में उपयोगी है।

जलसिरस

नाम—हिन्दी—जलसिरस, ढांढोन, हेतेमुरिया। संस्कृत—अम्बुशिरीषिका, श्विदिनिका, दुर्बला, झिंगी, झिंगिनी। मराठी—जल शिरसी। मुण्डारी—तिरूपसिंग। तेगेलाग—मबुला। लेटिन—Trichodesma Zeylanicum [ट्रिकोडेस्मा झेलेनिकम]।

वर्णन—यह वनस्पति गुजरात, कोंकण और मद्रास जिले के सभी खुश्क स्थानों पर पैदा होती है। यह एक वर्ष जीवी वनस्पति है। इसका वृक्ष ३० से लगातार ६० सेन्टीमीटर तक ऊँचा होता है। इसका पिंड मोटा और बैंगनी रंग का रहता है। इसके पत्ते ५ से लगाकर १० सेन्टीमीटर तक लम्बे और १·२ से २·५ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल हलके नीले रंग के होते हैं। इसका फल पकने पर भूरे रंग का हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार यह वनस्पति धवलरोग, बवासीर, विष के उपद्रव और त्रिदोष में लाभदायक है। इसके पत्ते स्नेहन और मूत्रल होते हैं।

जलाधारी

नाम—संस्कृत—अश्वघ्न, अतितेजनी, लघु बल्कला, पारिजाता, तिक्ता। हिन्दी—जलाधारी, पेफली, बुद्रुङ्ग। बम्बई—चिहफल, कोकली, सेसल, टेफल, तैसूली। गुजराती—तेजबल। मराठी—तेजबला। आसाम—ब्रोजोनली। बंगाल—बाभनली। कनाड़ी—झुमिना, जिमी। नेपाल—तिमूर। तामिल—इरतचेई। तेलगू—रचा। लेटिन—Zanthoxylum Budrunga [झेन्थोक्झिलम बद्रुङ्गा]।

वर्णन—यह वनस्पति कोंकण, ट्रावनकोर, मैसूर, मलाबार, उड़ीसा, सिलहट, खासिया पहाड़ियाँ, चटगांव, रंगून इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है। इसकी छाल फीके पीले रंग की और कांटेदार होते हैं। इसके फूल चार पंखड़ी वाले रहते हैं। इसका फल गोल, बीज लम्बगोल, नीले और काले रंग के, चिकने व चमकीले रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार इसका फल गरम, पाचक, कडुआ और क्षुधावर्धक होता है। यह कफ को नष्ट करके दमा और वायु नलियों के प्रदाह में फायदा पहुँचाता है। हृदय रोग, कुक्कर खांसी, बवासीर और मुंह, दांत तथा गले के रोगों में भी यह मुफीद है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम, सुगन्धित, खुश्क, उत्तेजक, संकोचक और पाचक गुणवाला होता है। अग्निमांद्य और अतिसार में यह लाभ पहुँचाता है।

गोश्रा में इसकी जड़ की छाल गुर्दे के लिए जुलाब का काम करने वाली मानी जाती है। हैजे की बीमारी में इसके फल को अजवायन के साथ पीसकर रोगी को पिलाया जाता है। सन्निवात में इसके फल को शहद के साथ दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह संकोचक, उत्तेजक और अग्निवर्धक है। इसमें २४ प्रति सैंकड़ा उपक्षार रहते हैं।

जलूर

नाम—हिन्दी—जलूर, मालजन, मालघन, महुल, मालो, मालू, मउलैन, मउरैन। मराठी—चम्पल, चांविल, चम्बुल, चम्बुरा, चरबोर, मालजिन। पंजाब—तउर। बंगाल—चेतुर। कनारी—अनेपादु, कंबिहु। मध्यप्रदेश—महालन, मंडल, सिहार। डेकन—चम्बोलि। गुजराती—चम्बेलि। गढ़वाल—मालु। मलयम—मोतनीवल्लि। मुंडारि—रोरुंगनारि। नेपाल—बोरला। तामिल—मंदारि। तेलगू—अदत्तिगे, मदादु, मुदुपु। उरिया—सियाली। लेटिन—Bauhinia Vahlli [बौहिनिया वाहलि]।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज पौष्टिक और कामोद्दीपक होते हैं। इसके पत्ते शान्तिदायक और लुआबदार होते हैं।

जवासा

नाम—संस्कृत—अधिकंटक, अनंत, बहुकंटक, बालपत्रा, दुर्लभा, दीर्घमूला, कचूरा, त्रिपर्णिला। विषण्ना, यवासा, यब्रसका, कटंको, गांधारी, गिरिकर्णिका। हिन्दी—जवासा, जुनवासा, यवासा। बंगाल—दुर्लभा, जवासा। बम्बई—जबासा। गुजराती—जवासा। मराठी—जवासा, कण्टे चुम्बका। सिंध—कशखेंदरी, उश्तुरखार। उर्दू—जवासा, फरकीयून। फारसी—खरेबुज, खारीशुतर, उश्तर खार। अंग्रेजी—Camel phorn [केमल फोर्नल]। लेटिन—Alhagi mawrorum [अलहगी मारोरुम]।

वर्णन—जवासे क्षुप कांटेदार होते हैं। इन पर दूर-दूर पर बारीक-बारीक पत्ते लगे हुए रहते हैं। इसके फूलों का रंग ललाई लिए हुए होता है। कलियाँ भी ललाई लिए हुए चमकदार तीखी नोकवाली होती हैं। इन कलियों में १ से लेकर ८ तक बीज निकलते हैं। इस पौधे पर गर्मी के दिनों में पत्ते और फूल आते हैं। इसलिये ढोरों के लिए गर्मी में यह हरे घास का काम देता है। यह बनस्पति गुजरात, सिंध, उत्तरी हिन्दुस्तान, पंजाब, इत्यादि प्रान्तों में नदी, नाले और तालाबों के किनारे पर बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से जवासा स्वादिष्ट, कड़वा, कसेला, शीतल और हलका होता है। यह शान्तिदायक पाचक, ज्वर निवारक, पौष्टिक, मृदुविरेचक, मूत्रल तथा वात और कफ को नष्ट करना है। शरीर के मोटेपन को भी दूर करता है। मस्तिष्क की पीड़ा, कोढ़, चर्मरोग, वायु, नलियों का प्रदाह, प्यास और नाक से होने वाले रक्तस्राव में यह लाभदायक है।

इस वनस्पति में कफ नाशक, स्वेदजनन, मूत्रल और आनुलोमिक ये चार धर्म रहते हैं। इसका आनुलोमिक धर्म बहुत सौम्य है और मूत्रल धर्म भी बहुत थोड़ा है। सिर्फ इसका कफनाशक धर्म बहुत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है।

कफ रोगों की प्रथम अवस्था में जवासा बहुत उपयोगी होता है। इससे गले में और श्वास नलिका में तरी आ जाती है। जिससे खाँसी का कष्ट कम हो जाता है और कफ पड़ने लगता है। गले के भिन्न-भिन्न भागों की सूजन, श्वासनली की सूजन तथा श्वास-मार्ग के दूसरे रोगों में जवासे का काढ़ा तथा जवासे के काढ़े का बफारा देने से बड़ा लाभ होता है। इसको कटेरी के साथ दिया जाता है। दमे के रोग में जवासे के अवलेह को गरम पानी के साथ देने से अथवा जवासे को चिलम में रखकर पीने से दमें का वेग कम हो जाता है।

जवासे के पौधे पर कुदरती तौर से एक प्रकार की शक्कर जमती है। हिन्दुस्तान में तो यह थोड़ी मात्रा में जमती है मगर ईरान, बुखारा और खुरासान में अधिक मात्रा में जमती है और वहाँ से इकट्ठी होकर हिन्दुस्तान में आती है। इस शक्कर को संस्कृत में यास सर्करा और चालू जबान में तुरंजबीन कहते हैं। यह शक्कर खाने में मीठी, पचने में कड़वी, कफ को नष्ट करने वाली और दस्त को लाने वाली होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चरक के मतानुसार जवासा प्यास को मिटाने वाला, हिचकी को बन्द करने वाला, दमे को नष्ट करने वाला और अर्श नाशक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति स्वाद में कड़वी और खराब रहती है। यह विषनाशक, फोड़ों को पकाने वाली और मृदु विरेचक होती है। बवासीर, आधा शीशी और नेत्रों की अस्वच्छता में भी यह लाभदायक है। इसके पत्तों से प्राप्त किया हुआ तेल संधिवात में लाभ पहुँचाता है। इसके फूल बवासीर के लिये लाभदायक हैं। इसका पौधा मृदु विरेचक, पित्त नाशक, कफ निस्सारक और मूत्रल होता है। यह कामोद्दीपक, हृदय को शुद्ध करने वाला और वमन को मिटाने वाला होता है। दमा, बवासीर और छोटी माता में भी यह लाभदायक है।

कोंकण में इस वनस्पति को तम्बाकू, अजवायन और काले धतूरे के साथ चिलम में रखकर पीने के काम में लेते हैं। इस धूम्रपान से दमें में बहुत लाभ होता है।

डायमाक के मतानुसार इसके पत्तों से जो तेल तैयार किया जाता है वह संधिवात की तकलीफ को दूर करने के काम में लिया जाता है। इसके फलों को बवासीर की पीड़ा दूर करने के काम में लेते हैं। कर्नल चोपरा के मतानुसार यह मृदु विरेचक, मूत्रल और कफ निस्सारक होता है।

जस्त

नाम—संस्कृत—यशदम्, रीतिहेतु, श्वेतपटलम्। हिन्दी—जस्त। गुजराती—जस्त। बंगाल—दस्ता। मराठी—जस्त। पंजाब—जसद। तेलगू—तेलसत्तू। फारसी—रुए तूतिया। अरबी—शबहा। लेटिन—Zincum [झिंकम]।

वर्णन—जस्त यह एक सुप्रसिद्ध धातु है। यह मद्रास, बंगाल, राजपूताना, पंजाब आदि कई स्थानों की खानों से निकलता है। इसका रंग सफेद होता है। इससे पानी की केटलियाँ, गिलास, सुराहियाँ, हुक्के इत्यादि बनाये जाते हैं। यह पानी से आठ गुना भारी होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से जस्त कड़वा, कसेला, शीतल, कफपित्तनाशक नेत्रों के लिए लाभदायक और प्रमेह, पांडु तथा श्वास को नष्ट करने वाला है।

पुराने घी में जस्त को पीसकर आँखों में लगाने से आँखों की पित्त सम्बन्धी बीमारियाँ मिटती हैं। इसकी भस्म को घी में मिलाकर गर्मी के फोड़ों-फुन्सियों पर लगाते हैं। बच्चों के कानों के पीछे या हाथ-पैरों की ऊँगलियों के बीच जो चांदी पड़ जाती है उस पर इसका सफेदा भुरभुराने से बहुत लाभ होता है। सरसों के तेल में जस्त को रगड़ कर मलने से पित्त से पैदा हुई सूजन मिट जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसके बर्तन में रखी हुई अर्क वगैरह चीजें दूसरी धातुओं के बर्तनों की अपेक्षा कम बिगड़ती हैं। इसके बर्तन में खाना-खाने या पानी पीने से दिल और मेदा को शक्ति मिलती है, इससे दिल की धड़कन भी दूर होती है। इसका सफेदा बनाकर आँख में लगाने से आँख का दुखना मिट जाता है।

जस्त को शुद्ध करने की विधि—जो जस्त भारी, सफेद चमकदार और दाँतों के समान मोटे रवे वाला हो वही उत्तम समझा जाता है। उसको खाने और अंजन के काम में लाना चाहिए। ऐसे उत्तम जस्त को लेकर पहिले दूसरी धातुओं की तरह सात-सात बार कांजी, गोमूत्र इत्यादि सातों चीजों में बुझा लें, उसके पश्चात् उसको २१ बार गला-गला कर गाय के दूध में बुझाना चाहिये। यह ख्याल रखना चाहिये कि ऐसी धातुएँ दूध, गोमूत्र या पानी में बुझाने से एकदम उछलती है। इसलिये जिस बर्तन में उसे बुझाया जाय उस बर्तन के ऊपर चक्की का पाट या कोई ऐसा पत्थर रख देना चाहिये जिसके बीच में छेद हो और उसी छेद की राह से धातु को उसमें बुझाना चाहिये। इस क्रिया के पश्चात् जस्ता शुद्ध हो जाता है।

जस्त को भस्म करने की विधि—१ सेर शुद्ध किये हुए जस्ते को लोहे की कढ़ाही में डालकर 'तालादि भस्म-करी' भट्टी के ऊपर तेज आँच से तपावे और लोहे की कलछी से चलाते जायँ। जब उसमें आग की ज्वाला उठने लगे तब उसमें नीम के पत्तों का स्वरस डालें। जब १ सेर रस उसमें खप जाय तब रस डालना बन्द कर दें और अग्नि चालू रक्खें। जब जस्ते की बिलकुल भस्म हो जाय तब उसको ठंडी कर के कपड़े में छान लें। यदि उसमें कुछ अंश कच्चा नजर आवे तो उसको भी कढ़ाही में डालकर नीम के रस के साथ पकावें। ऐसा करने से सब जस्त की उत्तम भस्म बन जावेगी। कोई-कोई

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वैद्य इस भस्म को घीगुवार के रस में घोंटकर टिकिया बनाकर गजपुट में फूंक देते हैं। ऐसा करने से यह भस्म और भी गुणकारी हो जाती है।

इस भस्म का अंजन करने से नेत्रों को बहुत लाभ होता है। आयुर्वेद में जितने भी नेत्र हितकारी प्रयोग हैं उन सब में इसको मिलाने से वे ज्यादा गुणकारी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भस्म श्वास, खाँसी और कफ रोगों में भी बड़ा लाभ करती है।

जस्त भस्म की दूसरी विधि—१ सेर शुद्ध जस्ते के चूर्ण में पाव भर शुद्ध गंधक मिलाकर लोहे की कढ़ाही में डाल दें और उसमें अरंडी का तेल इतना डालें कि जिसमें वह चूर्ण डूब जाय। बाद में उस कढ़ाही को भट्टी पर रख कर तीव्र आँच दें और चूर्ण को लोहे की कलछी से चलाते जायँ। जब तेल और गन्धक बिलकुल जल जायँ और जस्ते की भस्म हो जाय तब कढ़ाही ठण्डी कर भस्म को छान लें। उसके बाद उस भस्म को घीगुवार के रस में घोटकर टिकिया बनाकर सुखा ले और उन टिकियाओं को मिट्टी की हांडी में बन्द कर उस हांडी पर कपड़मिट्टी करके गजपुट में फुंक दें। जस्त की उत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

मात्रा—जस्त भस्म की साधारण मात्रा २ रत्ती की है। इसको पित्त ज्वर और रक्तातिसार में छुहारे और चांवल के धोवन के साथ, शीत ज्वर में लौंग और अजवायन के साथ तथा अतिसार वमन और जी के मिचलाने में मिश्री और जीरे के साथ देना चाहिये। इस भस्म को पुराने घी के साथ खाने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। पान के साथ खाने से प्रमेह में लाभ होता है। पन्चकोल [पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ] के साथ खाने से मन्दाग्नि दूर होती है और त्रिगन्धक [इलायची, दालचीनी और पत्रज] के साथ खाने से सन्निपात मिटता है। इसको ६ माशे अद्रक के रस और ६ माशे शहद के साथ चटाने से खाँसी और दमा मिटता है। सन्दल के साथ इसे देने से सुजाक मिटता है। गोखरू के शरबत के साथ देने से पेशाब साफ होता है। तथा कौंच के बीज और मिश्री के साथ इसको देने से प्रमेह और नपुंसकता नष्ट होती है।

अशुद्ध जस्ते से होने वाली हानियाँ—अशुद्ध जस्ते की भस्म बनाकर सेवन करने से प्रमेह, अजीर्ण, भ्रांति, वमन, वातरोग, इत्यादि उपद्रव हो जाते हैं। जिसको ऐसे विकार पैदा हो जायँ उसको २ तोला हरड़ और २ तोला मिश्री मिलाकर ३ दिन तक लेना चाहिये। इससे सब विकार शान्त हो जाते हैं।

जहरत अलमाह

नाम—यूनानी—जहरत अलमाह।

वर्णन—यह वस्तु खारे पानी की झीलों में पैदा होती है। कोई-कोई इसे एक रोईदगी बतलाते हैं। जो बन्द और रुके हुए पानी पर पैदा होती है। पानी के सूख जाने पर इसमें शोरे की तरह एक पदार्थ पाया जाता है जिसका रङ्ग पीला और स्वाद तेज होता है और जिसमें मछली की तरह गन्ध आती है। असली वह होती है जो जैतून के तेल में घुलनशील हो। पानी में घुल जाने वाली असली नहीं होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह बहुत गरम, खुश्क, तेज और चरपरा पदार्थ है। सूजन पर लगाने से उसको फौरन बिखेर देती है। खराब, सड़े हुए और फैलने वाले जख्मों को फौरन अच्छा करती है। तेल में मिलाकर बदन पर मलने से थकावट को मिटा देती है। इसको बालों पर लगाने से बाल पतले पड़ जाते हैं। बदन पर के फोड़े-फुन्सियों के निशान इसके लगाने से फौरन मिट जाते हैं। ऐसे कुष्ठ रोग में जिसमें बदन का चमड़ा फट-फट कर गिरता हो और दर्द होता हो उसमें यह फायदा करती हैं। इसको २ रत्ती की मात्रा में सिकंजबीन के साथ पीसकर चाटने से मृगी जाती रहती है। आँखों में लगाने से आँख का जाला कट जाता है, ज्योति तेज होती है और आँख से पानी गिरना बन्द हो जाता है।

मात्रा—इसकी मात्रा २ रत्ती से १ माशे तक है। ३ माशे की मात्रा में यह प्राणघातक विष हो जाता है।

दर्पनाशक—इसका दर्पनाशक अगर है।

जहरी सोनटक्का

नाम—बम्बे—जहरी सोनटका, पीलो कनेर, पिपलीकनेर। कनाड़ी—अरसिह। मुण्डरि—अरावा। कौंकणी—कनगिनी। लैटिन—Allamanda Catharetica [एलेमेड़ा केथेरेटिका]।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उत्पत्तिस्थान—यह वनस्पति भारतवर्ष के आम बगीचों में बोई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—इसका छिलका जलोदर रोग में उपयोगी माना गया है। यह जल शोषक है तथा एक बहुत तेज रेचक पदार्थ है।

मुण्डा जाति इसकी जड़ को सर्पविष में उपयोगी मानती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह विरेचक है। इसमें उपक्षार और ग्लूकोसाइड्स रहते हैं।

जहर मोहरा खताई

नाम—हिन्दी यूनानी—जहरमोहरा। अरबी—फादजहर मादनी। इंग्लिश—Minerral Stone [मिनेरल स्टोन] Serpant Stone [सरपेण्ट स्टोन] Blzoar [ब्लेझर]।

वर्णन—जहर मोहरा कुछ पीला, हरा और ललाई की झलक लिये हुए साबुन के समान रङ्ग वाला एक पदार्थ होता है। जो यूनानी औषधियाँ बेचने वाले गन्धियों के यहाँ मिलता है। पानी के अन्दर घिसने पर जिस जहरमोहरे का सफेद रङ्ग उतरता है वही उत्तम माना जाता है। एक हलकी जाति का जहरमोहरा भी आता है जो कुछ काले रङ्ग का और कठिन होता है। वह सिर्फ बाह्योपचार के काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी ग्रन्थों में जहर मोहरा एक अत्यन्त लोकप्रिय और प्रभावशाली औषधि मानी जाती है। कराबादीन कबीर नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जहर मोहरे को अग्नि में रखने से उसमें से एक तरह का पसीना छूटता है। वह पसीना कर्ण ज्वर के रोगी को खिलाने से उसका ज्वर दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह औषधि जीर्ण ज्वर, अजीर्ण, वमन, अतिसार तथा हृदय, यकृत, पाचन क्रिया, मूत्रनाली और विष के उपद्रवों को दूर करने के लिये बहुत प्रभावशाली मानी जाती है। इसके सेवन से मनुष्य शरीर में बल, वीर्य और कान्ति की बहुत वृद्धि होती है।

यद्यपि यह वस्तु स्वय जहरीली नहीं है, लेकिन इसमें जहर को दूर करने की अद्भुत शक्ति पाई जाती है। साँप, बिच्छू, अफीम इत्यादि, किसी प्रकार के जङ्गम और स्थावर विषों के उपद्रव में इसको पानी में घिसकर पिलाने से लगातार वमन होकर जहर का प्रभाव मिट जाता है। प्लेग, हैजा, मलेरिया, माता, इत्यादि रोगों के हमले जब चल रहे हों उस समय जहर मोहरा ३ रत्ती, जहरी टोपरा ३।। रत्ती और निर्मली १।। रत्ती। इन तीनों चीजों को पीसकर गुलाबजल के साथ खिला देने से इसमें से किसी रोग के आक्रमण का भय नहीं रहता। अगर किसी पर हैजे का आक्रमण हो जाय तो उसको यह औषधि दो-दो घण्टे अन्तर से बराबर दी जावे तो दूसरे उपायों की अपेक्षा इससे जल्दी और अच्छा लाभ होता है।

यह औषधि अधिक गरम भी नहीं है और अधिक शीतल भी नहीं है। बल्कि समशीतोष्ण है। इसलिये यह हर प्रकृति के मनुष्य के काम आ सकती है। फिर भी बालकों के अजीर्ण, वमन, अतिसार और शोष रोग में यह विशेष रूप से लाभदायक है।

देश विदेश के जल और हवा के लगने से मनुष्य शरीर में जो विकृति पैदा हो जाती है और उसमें जीर्ण ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, सूजन, निर्बलता, इत्यादि उपद्रव पैदा होते हैं उन उपद्रवों को शान्त करने में यह एक प्रभावशाली औषधि है। इसी प्रकार हृदय, मस्तिष्क, लीवर और पाचन इन्द्रिय को बल देने में भी यह आश्चर्यजनक कार्य करती है। इसकी २ से ४ रत्ती तक की मात्रा में प्रति दिन लम्बे समय तक लेने से यह बहुत समय के लिये शरीर की नींव मजबूत कर देती है।

गर्मी के फोड़े-फुन्सी, जहरी सूजन, विस्फोटक वगैरह रोगों पर इसको गुलाबजल, चन्दन अथवा नीम की अन्तर छाल के घसारे के साथ लगाने से बहुत जल्दी लाभ होता है।

शीतला की बीमारी में जहर मोहरा खताई १ माशा, अनबिंधे मोती १ माशा, संगेशब १ माशा और कहरवा १ माशा इन सब चीजों को गुलाब, केवड़ा और बेदमुश्क के अर्क में एक दिन, और हल्दी के रस में एक दिन घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन १ गोली सन्ध्या या सबेरे गाय के दूध के साथ लेने से बड़ा लाभ होता है और माता के दाने बिना उपद्रव के निकल जाते हैं। अगर इसको नियमपूर्वक सेवन कराया जाय तो माता निकलने का डर भी नहीं रहता।

बालकों के सूखा रोग पर भी यह एक बड़ी चमत्कारिक औषधि है। उत्तम मोतियों की गुलाबजल में घुटी हुई पिष्टी, वंशलोचन, केशर, इलायची और जहर मोहरा खताई, इन पाँचों चीजों को समान भाग लेकर गुलाबजल में घोंटकर मूंग

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के बराबर गोलियां बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से प्रति दिन सवेरे शाम और दुपहर एक-एक गोली गाय के दूध के साथ देने से बालकों को होनेवाला सूखा रोग जिसको अंग्रेजी में रिकेट कहते हैं बिलकुल मिट जाता है। सूखा रोग के लिये यह बहुत उत्तम प्रयोग है।

इसी प्रकार यूनानी चिकित्सा के अन्दर इस औषधि के मेल से और अनेकों प्रभावशाली योग तैयार होते हैं। कामोद्दीपन के लिये भी इसके प्रयोग बनते हैं जिनका वर्णन यूनानी ग्रंथों के अन्दर देखना चाहिये।

बाजार के अन्दर नकली जहरमोहरा भी बहुत मिलता है। इसलिये यह वस्तु खरीदते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि असली चीज ही खरीदी जाय।

जामुन

नाम—संस्कृत—जम्बू, सुरभिपला, नीलफवा, महास्कन्धा, मेघ मोदिनी, राजफला, शुक प्रिया। हिन्दी—जामुन, जामन, कालाजामन, फलांदा, फलिंदा। बंगाल—जामगाछ, कालाजाम। बम्बई—जांभूल, जांब, जांबूड़ो। गुजराती—जामू, जामूड़ी, जांबो। आसाम—जांबू। मैसूर—नरेली। कनाड़ी—जामूनरेली। पोरबन्दर—जांबू। तामिल—अरुगदम् कोटेन-रूम। तेलगू—नेसद्रू। उर्दू—जामन, फलेंदा। लेटिन—Eugenia Jambolana [यूजेनिया जाम्बोलेना]।

वर्णन—जामुन के वृक्ष हिन्दुस्तान में प्रायः सब दूर पैदा होते हैं। इसकी ३.४ जातियां होती हैं। एक जाति नदी के किनारे होती है उसके पत्ते कनेर के पत्तों की तरह और फल बहुत छोटे होते हैं। उसको जल जामुन कहते हैं। दूसरी जाति के पत्ते आम के पत्तों की तरह और फल मध्यम कद के होते हैं इस जाति को जामुन कहते हैं। तीसरी जाति के वृक्ष बहुत ऊँचे और फैले हुए होते हैं। इसके पत्ते पीपल के पत्तों की तरह बड़े चिकने और चमकदार होते हैं। इसके फल भी भी २ से २॥ इञ्च तक लम्बे और १ से १॥ इञ्च तक मोटे होते हैं। इस जाति को राज जामुन कहते हैं। यद्यपि इन तीनों जातियों के गुण धर्म मिलते हुए हैं फिर भी औषधि प्रयोग में रायजामुन की जाति विशेष गुणकारी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जामुन की छाल कसेली, मलरोधक, मधुर, पाचक, रूक्ष, रुचिकारक तथा पित्त और दाह को दूर करने वाली होती है। इसके फल कसेले, मधुर, शीतल रुचिकारक, रूखे, मलरोधक, वातवर्धक और कफ, पित्त तथा अफरे को दूर करने वाले होते हैं।

जामुन की गुठली मधुर मलरोधक, और मधुमेह को नष्ट करने वाली होती है। इसके अंकुर शीतल, रूखे, ग्राही और अफरे को पैदा करने वाले होते हैं।

राय जामुन—मधुर, गरम, कसैली, स्वरशोधक, मलरोधक, तथा श्वास, श्रम, मुख की जड़ता, अतिसार, कफ और खांसी को दूर करती है। इसका फल रुचिकर, मधुर, स्तम्भक, भारी दोषनाशक और स्वादिष्ट होता है।

जल जामुन—कसेली, शीतल, कड़वी, भारी, पाक में मधुर, पुष्टिकारक तथा दाह, अतिसार, रुधिर विकार, कफ, पित्त और भ्रम को दूर करने वाली होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल तूरा, कसेला, मीठा और पौष्टिक होता है। यह यकृत को पुष्ट करता है, दांतों और मसूड़ों को मजबूत करता है, रक्तवर्द्धक है, पित्त के अतिसार को दूर करता है। इसके पत्तों की राख दांत और मसूड़ों को मजबूत करने के काम में ली जाती है। स्वर भंग रोग में और गले के रोग तथा छालों में इसके पानी से कुल्ले किये जाते हैं। सिर के दर्द में इसका रस लगाने के काम में लिया जाता है। इसके फल का सिरका पौष्टिक, संकोचक, पेट के अफरे को दूर करने वाला और शान्तिदायक होता है इसका बीज संकोचक होता है।

दस्तूर अल तिब्ब नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जामुन आवाज को साफ करता है। थकावट, कफ के दस्त, दमा, खांसी, मुंह की ग्लानि, गले की बीमारियां और मेदे के कीड़ों को नष्ट करता है।

यह दिल की धड़कन को मिटाता है, रक्त विकार को दूर करता है, इसके खाने से फोड़े-फुन्सियों का होना बन्द हो जाता है। इसके शरबत से वमन, जी मिचलना, खूनी दस्त और बवासीर में लाभ होता है। मधुमेह के रोग में जामुन के सूखे बीजों का चूर्ण २॥ रत्ती से १ माशे तक की मात्रा में दिन में ३ बार लेने से पेशाब के साथ शक्कर का जाना बन्द हो जाता है। ऐसा देखा गया है कि इसके बीजों के चूर्ण को ५ ग्रेन की मात्रा में दिन में ६ बार देने से २४ घण्टे के अन्दर ३.४ सेर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पेशाब कम होने लगता है और पेशाब की ग्रेविटी भी कम हो जाती है। जामुन के १ तोला मूल को साफ करके पाव भर पानी में पीसकर २ तोले मिश्री डालकर पीने से भी मधुमेह में लाभ होता है। जामुन के २॥ पत्ते पानी में पीसकर जहरीले जानवर के काटे हुए आदमी को पिलाने से शांति मिलती है। जामुन के पत्ते काली मिर्च और गुलदाउदी के फूल [अगर फूल न मिले तो पत्ते] तीनों को बराबर वजन लेकर पानी में पीसकर मोतीझरा और पानीझरा के बीमार को पिलाने से उसकी बेचैनी मिट जाती है और शांति मिलती है।

जामुन के नरम और ताजा पत्तों को पानी में पीसकर उनसे कुल्ले करने से मुँह के खराब से खराब छाले भी मिट जाते हैं। १ तोला जामुन के पत्तों को पाव भर गाय के दूध में घोंटकर ७ दिन तक पीने से बवासीर से गिरने वाला खून बन्द हो जाता है। १ तोला जामुन के पत्तों को पीसकर पीने से अफीम का जहर उतर जाता है।

जामुन के बीज कब्जियत पैदा करते हैं। इसके बीजों को आम की गुठली और काली हरड़ के साथ बराबर वजन लेकर, भूनकर व पीसकर खाने से पुराने दस्त बन्द हो जाते हैं। इसके बीजों के चूर्ण में बराबर शक्कर मिलाकर लेने से पेट से खून का आना बन्द हो जाता है। तंग जूतों से अगर किसी के पांव में जखम हो जाय तो जामुन की गुठली को पानी में पीसकर लगाने से अच्छा हो जाता है।

कुचले के जहर को उतारने के लिए इसकी सूखी गुठली का चूर्ण १० माशे की मात्रा में देना चाहिये। तिल्ली का वरम बिखेरने के लिए इसका रस १। तोले की मात्रा में देना चाहिये। अशुद्ध पारा या रस कपूर के खाने से किसी का मुँह आ जाय तो इसकी छाल के काढ़े से कुल्लियाँ करने से अच्छा हो जाता है। पथरी के रोग में पकी हुई जामुन का फल खिलाने से लाभ होता है।

जामुन का सिरका—पके हुए जामुन के सिरके से पेट में होने वाला वायु का दर्द मिट जाता है। तिल्ली के बीमार को पकी हुई जामुन का सिरका ३ माशे से ७॥ माशे की मात्रा में देने से बढ़ी हुई तिल्ली आराम हो जाती है।

मधुमेह रोग और जामुन—आधुनिक खोज के अन्दर इस वनस्पति ने मधुमेह रोग को नष्ट करने के अन्दर तथा पेशाब के साथ जाने वाली शक्कर की मिकदार को कम करने के सम्बन्ध में बहुत ख्याति प्राप्त की है। सबसे पहले डॉक्टर सी० ग्रेसर ने इस विषय में कई परीक्षण किये और उन्होंने इसका वर्णन भी दिया है। उन्होंने सबसे पहले कुत्ता के अन्दर कृत्रिम रीति से मधुमेह रोग को पैदा कर उसको नष्ट करने के लिए अनेक प्रयोग किये और अन्त में अत्यन्त सन्तोष के साथ में उन्होंने यह सिद्ध किया कि जामुन के फलों की गुठली पेशाब के अन्दर जाने वाली शक्कर को थोड़े समय में ही कम कर डालती है।

इसके पश्चात् डाक्टर आर० एल० दत्त ने उग्र मधुमेह के २ केसों में इसकी गुठली को देकर यह बतलाया कि इसकी गुठली को देने से बार-बार उतरने वाला पेशाब और उसमें जाने वाली शक्कर की मिकदार सिर्फ १ सप्ताह की मियाद में ही कम हो गई और रोगी स्वस्थ मनुष्य की तरह हो गये।

इसे शिप्रलस् ऑफ माड़र्न ट्रीटमेंट आफ डिसीजेस नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जामुन के फलों की मगज मधुमेह के रोग में औषधि की तरह दी जाती है इस रोग में सरेस की तरह चिपकने वाले पदार्थ की उत्पत्ति और उसको शक्कर के रूप में परिवर्तित होने से यह रोकती है। इस कार्य के लिए इसकी गुठली से बनाया हुआ ऐक्स्ट्रेक्ट जांबोलिन लिक्विड विशेष अनुकूल पड़ता है। इसकी मात्रा आधे ड्राम से २ ड्राम तक की होती है, और इसकी गुठली के चूर्ण की मात्रा २॥ रत्ती से १५ रत्ती तक की होती है।

बम्बई के इण्डियन मेडिकल डिपार्टमेंट के सर्जन डी० एन० पारिख का मत है कि इसके फलों की सूखी गुठलियों का चूर्ण अगर मधुमेह रोग में दिया जाय तो वह पेशाब में जानेवाली शक्कर के परिमाण को बहुत शीघ्रता से रोक देता है।

गुजराती में सुप्रसिद्ध मासिक पत्र वैद्य कल्पतरु के सन् १९३२ के अगस्त मास के अंक में वैद्यराज बलवन्त राय ने मधुप्रमेह के ऊपर अपने अनुभव से एक लेख लिखा था। उसमें उन्होंने बतलाया था कि मधुमेह अथवा पेशाब के साथ शक्कर जाने का रोग अक्सर हमेशा एक ही स्थान पर बैठे रहने वाले कितने ही लोगों को लगभग ४० वर्ष की उमर के पश्चात् होता है। इस रोग से धीरे-धीरे रक्त दूषित होता है, शक्ति घटती है, पाचन क्रिया विपरीत हो जाती है। शरीर के अवयव

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

बराबर काम नहीं करते, जिससे शरीर शिथिल हो जाता है। इस रोग से पीड़ित बहुत से रोगी डाक्टरों की औषधियाँ करके, वैद्यों की भस्में खाकर तथा बहुमूल्य पेटेण्ट दवाइयों से निराश होकर हमारे परिचय में आये हैं। ऐसे रोगियों के ऊपर अनेक प्रकार के प्रयोगों को अजमाने के पश्चात् एक सादा किन्तु प्रभावशाली प्रयोग हमारे अनुभव में आया है। जो वैद्य बसन्त कुसुमाकर और स्वर्ण बङ्ग के समान मूल्यवान औषधियों को देने के पश्चात् भी अपने रोगियों को आराम न कर सके हों और जो डाक्टर इन्स्यूलीन और ट्राइप्सोजन के समान औषधियों को देने के पश्चात् भी पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके हों उनको इस सादे प्रयोग की परीक्षा अपने रोगियों पर करने की मैं सूचना देता हूँ। वह प्रयोग इस प्रकार का है।

बड़े राय जामुन के वृक्ष की छाल को लाकर उसको सुखाकर जला डालना चाहिए। जिससे सफेद भूरे रङ्ग की भस्म तैयार होगी। इसको खरल में घोंटकर कपड़े में छानकर शीशी में भर लेना चाहिये।

मधुमेह रोग के प्रारम्भ में रोगी के पेशाव का विश्लेषण करने पर उसकी स्पेसिफिक ग्रेविटी १०२५ से लेकर १०-३५ तक बढ़ती है। इस समय १ औंस पेशाब में लगभग ५ से १० रत्ती तक शक्कर का तत्व जाता है। ज्यों-ज्यों रोग पुराना होता है त्यों-त्यों पेशाव की ग्रेविटी बढ़कर १०५० तक चली जाती है। उस समय १ औंस पेशाब में २५ रत्ती तक शक्कर जाने लगती है और इसके सिवाय अलब्यूमेन और दूसरे कई जीवन पोषक तत्व पेशाब के साथ बहने लगते हैं।

रोगी के पेशाब की परीक्षा करने पर जिनके पेशाव की ग्रेविटी १०२० से १०३० तक हो उनको इस भस्म में से १० रत्ती भस्म १ औंस पानी के साथ सवेरे भूखे पेट तथा १० रत्ती भस्म दोपहर और शाम को भोजन के १ घण्टे पश्चात् देना चाहिये और तीन-तीन चार-चार दिन के अन्तर से पेशाव की ग्रेविटी और शक्कर के परिणाम को जाँचते रहना चाहिये। यह विश्वास किया जा सकता है कि इस प्रयोग से अधिकांश रोगियों का रोग १॥ महीने में चला जाता है।

अगर रोगियों के पेशाब की स्पेसिफिक ग्रेविटी १०३५ से १०५० तक हो तो इस भस्म को २० से ३० ग्रेन तक की मात्रा में दिन में तीन बार देना चाहिये और रोगी की जनरल प्रकृति का विचार करके अगर कोई उपद्रव मालूम हो तो दूसरी सहायक औषधियों के द्वारा मिटाना चाहिये।

मधुमेह के रोगियों के लिए औषधि प्रयोग की अपेक्षा भी उनके खान-पान पर लक्ष्य देना विशेष आवश्यक है। इस-लिए जिन पदार्थों को खाने से शरीर में शक्कर का तत्व बढ़ता है उनको बिलकुल बन्द कर देना चाहिये। गेहूँ के बदले जौ के आटे की रोटी, बाजरे की रोटी, मूँग की दाल, टमाटर, परवल, लौकी इत्यादि का शाग देना चाहिये। गाय, भैंस अथवा बकरी का उत्तम दूध दे सकते हैं मगर उसमें शक्कर नहीं डालना चाहिये। इस भस्म के साथ रोगी की प्रकृति को देखकर गिलोय सत, प्रवाल भस्म अथवा चन्द्रप्रभा इत्यादि औषधियों में से कोई औषधि मिलाकर दी जा सकती है।

वैद्यराज सुखराम दास ओझा का कथन है कि जामुन को गुठली का चूर्ण १ हिस्सा, सूंठ १ हिस्सा और गुड़मार बूटी २ हिस्सा इन तीनों चीजों का कपड़-छन चूर्ण करके उसको घीगुवार के रस में तर करके मोटे बेर के समान गोलियाँ बनाना चाहिये। दिन में तीन बार इनमें से एक-एक गोली शहद के साथ लेने से मधु प्रमेह रोग में पेशाब में जाने वाली शक्कर १ महीने में बन्द हो जाती है। इतना ही नहीं बल्कि मधुमेह से होने वाली प्रमेह पीठिकाएँ तथा कारबंकल इत्यादि उपद्रव भी मिट जाते हैं। इस औषधि को देते समय खान-पान का ऊपर लिखे अनुसार ही खयाल रखना चाहिये।

महर्षि चरक का मत है कि जामुन के वृक्ष की पीसी हुई गुठलियाँ मधुमेह रोग में देने से काफी फायदा होता है।

डायमांक के मतानुसार मधुमेह रोग में जामुन की क्रिया किस प्रकार होती है यह अभी तक पूरी तरह से समझ में नहीं आया।

के० एल० डे के मतानुसार जामुन की गुठली ने मधुमेह रोग को मिटाने में बड़ी प्रशंसा प्राप्त की है। यह प्रत्येक अनाज में पाये जाने वाले श्वेतसार और स्टार्च को शक्कर में परिणित नहीं होने देती। लेकिन अभी तक इसकी जितनी तारीफ है वह पूरी तरह सिद्ध नहीं हो सकती।

जामुन और यकृत, तिल्ली तथा पेट के रोग

मोर के पंखों में जिस प्रकार तांबे का अंश रहता है, पीपल के झाड़ में जिस प्रकार सीसे का अंश पाया जाता है, नीम के अन्दर जिस प्रकार तांबा और गन्धक मिलता है, अपामार्ग में जिस प्रकार तांबे का भाग पाया जाता है उसी प्रकार जामुन के अन्दर लोहे का अंश पाया जाता है। जामुन के अन्दर रहने वाला लोह सौम्य होने से दूसरे लोह की तर; उससे

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

किसी प्रकार का अनिष्ट होने का भय नहीं रहता और वह रुधिर की अशुद्धता से होने वाली तिल्ली और यकृत की वृद्धि में और दूसरे उदररोगों में बहुत अच्छा लाभ बतलाता है।

डाक्टर नरायन मिश्र का कथन है कि तिल्ली और यकृत की वृद्धि में जामुन का सिरका देने से बहुत जल्दी लाभ होता है। इसके पके हुए फल का रस अग्निवर्धक, मुत्रल और शांतिदायक होता है। इसके पत्ते, बीज और जड़ संकोचक गुण वाले होते हैं।

चक्रदत्त का मत है कि बच्चों के पुराने अग्निमांद्य और अतिसार में इसकी छाल का ताजा रस बकरी के दूध के साथ देने से बड़ा लाभ होता है।

सिविल सर्जन एन्सली का कथन है कि इसकी अन्तर छाल का काढ़ा मरोड़ी और अतिसार के रोग में उपयोग में लिया जाता है।

सर्जन डब्ल्लू० एफ० थाम्सन का कथन है कि जामुन के बीजों के चूर्ण में जहरी कुचले के जहर को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति पाई जाती है। इस चूर्ण को ६ माशे की मात्रा में लेने से कुचले का जहर चाहे जितना चढ़ गया हो, एकदम उतर जाता है।

सिविल सर्जन बांके बिहारी गुप्त का मत है कि लम्बे समय तक पारे का सेवन करने से अथवा दूसरे किसी कारण से दांतों के मसूड़े सूज गये हों, उनमें बहुत वेदना होती हो और बहुत लार बहती हो तो इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से बड़ा सन्तोषजनक परिणाम नजर आता है।

पं० शालिग्राम शर्मा का कथन है कि जामुन के फल की मगज का तेल एक-एक बूंद सवेरे शाम कान में डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है। इसकी मगज का चूर्ण शहद में घोंटकर तीन-तीन माशे की गोलियां बनाकर प्रतिदिन सवेरे-शाम एक-एक गोली खाने से और उस गोली को शहद में घिसकर आँखों में आंजने से मोतियाबिन्द का नया रोग मिट जाता है।

उपयोग—आमातिसार—इसकी छाल के चूर्ण की फक्की देने से अतिसार मिटता है।

[२] इसका ताजा रस बकरी के दूध के साथ पिलाने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

[३] इसकी गुठली और आम की गुठली के चूर्ण की फक्की देने से आमातिसार मिटता है।

बवासीर—इसकी कोंपलों के २ तोले रस में थोड़ी-सी शक्कर मिलाकर पीने से बवासीर से बहने वाला खून बन्द हो जाता है।

मधुमेह—इसकी गुठली के चूर्ण को सेवन करने से मधुमेह रोग मिटता है।

बनावटें—

डायाबिटीज मिक्स्चर—एक्स्ट्रेक्ट जरम्बुली नीलिक्विड १ ड्राम ग्लेसरीन ग्लिसेरो फास्फेट १ ड्राम, इनफ्यूजन जेन्शन १ औंस, एलीक्झीर कोड़िया फोसफिस ½ ग्रेन, इन सब औषधियों को मिलाकर इनके ३ हिस्से कर दिन में ३ बार लेना चाहिये। इससे मधुमेह रोग में बहुत जल्दी लाभ होता है।

तिल्ली रोग नाशक सिरका—शुद्ध आंवलासार गन्धक ७ तोला, नौसादर १ तोला, कलमी शोरा १ तोला, हीराकसी ३ माशे, कुनैन ३ माशे। इन सब चीजों को पीसकर एक शीशी में भर देना चाहिये और उस शीशी में जामुन के पके हुए फलों को रस भर कर शीशी का मुँह मजबूत काग से बन्द कर देना चाहिये और उस काग के ऊपर भींगी हुई चिकनी मिट्टी का लेप करके ४० दिन तक धूप में रखना चाहिये। उसके बाद उस शीशी का काग खोलकर काम में लेना चाहिए। इस औषधि में से सवेरे-शाम २० से ४० बूंद तक औषधि १ औंस पानी के साथ मिलाकर देने से बढ़ी हुई तिल्ली का रोग चमत्कारिक ढंग से आराम हो जाता है। यह प्रयोग जब चालू हो तब घी का सेवन अधिक मात्रा में करना चाहिये और तेल, मिर्च, खटाई, दही, इमली इन चीजों का बिल्कुल त्याग कर देना चाहिये।

[२] अच्छे पके हुए ताजा जामुन का रस निकाल कर उस रस में जितना समा सके उतना सेंधा नमक डालकर एक मजबूत काग वाली शीशी में बन्द कर ४० दिन तक पड़ा रखना चाहिये। इस औषधि में से एक दिन के अन्तर से आधा चम्मच औषधि देने से कामला और लीवर के रोग नष्ट हो जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जाम्ब वारिष्ट—जामुन की अन्तर छाल, ८० तोला, जामुन के हरे पत्ते ८० तोले, जामुन के फूल ८० तोला, जामुन की गुठली ८० तोला। इन सब चीजों को लेकर कूटकर १२८ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १६ सेर पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस क्वाथ में जामुन के फलों का रस ८० तोला, धावड़ी के फूलों का चूर्ण ४० तोला, नागकेशर का चूर्ण २० तोला और शहद १० तोला मिलाकर चीनी मिट्टी की बरनियों में भर कर उनका मुँह बन्द कर एक महीने तक पड़ा रखना चाहिये। यह औषधि सवेरे शाम २ से ४ तोले की मात्रा में दूने पानी के साथ मिलाकर पीने से मधुप्रमेह, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर, रक्तातिसार, मूत्रदाह, उदर रोग और पित्त विकारों को दूर करती है।

जामुन का अर्क—गजवेल का चूर्ण २० तोला लेकर लोहे की कड़ाही में डाल कर उसको हलकी आँच पर चढ़ाना चाहिये। उसके पश्चात् उसमें गन्धक का तेजाब २० तोला डालकर लोहे के खुरपे से अच्छी तरह मिला देना चाहिये। जब वह तेजाब सूख जाय तब उसमें २ सेर नींबू का रस डालकर सुखा देना चाहिये। उसके बाद फिर २० तोला गन्धक का तेजाब डालना चाहिये। जब तेजाब जल जाय और धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब उस कड़ाही को नीचे उतार लेना चाहिये और ठंडा होने पर उसमें जामुन का रस ८ सेर डाल कर ८ दिन तक उस कड़ाही को वैसे ही धूप में रख देना चाहिए और दिन में २-३ बार खुरपे से हिलाते रहना चाहिये। आठ दिन के पश्चात् उसमें ४ तोला चोबचीनी, ४ तोला उन्नाव, २ तोला कबाबचीनी, २ तोला बंशलोचन, २ तोला इलायची, २ तोला बनफशा, ४ तोला कासनी, ४ तोला तज, ४ तोला मकोय, ५ तोला सफेद चन्दन, ५ तोला लाल चन्दन, ५ तोला दारू हलदी, ८ तोला चिरायता, ८ तोला शीशम का बुरादा, ८ तोला आवनूसका बुरादा, ८ तोला कासनी की जड़, ४ तोला काली मिर्च, २ तोला कतीरा, १२ तोला पित्त पापड़ा, ४ तोला सरपंखा, ४ तोला हरड़, ४ तोला बेहड़ा, १२ तोला गोरखमुण्डी, ३ तोला अमरवेल, ६ तोला गिलोय, ६ तोला जवासा, १२ तोला नीम के फूल, ८ तोला चित्रक की जड, ६ तोला नीम की निबोरी, ६ तोला अनन्तमूल, १० तोला अजवायन, १० तोला मुनक्का, ४ तोला अंजीर, ८ तोला हिमज, ५ तोला आंवला, ५ तोला खारक, ५ तोला गूँदी, ४ तोला निसोत इन सब चीजों को कूटकर डाल देना चाहिये और ऊपर से १५ सेर कुएँ का जल डाल देना चाहिये। तीन दिन इन सबको पड़े रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् भपका या अर्क निकालने के यन्त्र से इनका अर्क खींच लेना चाहिये। इस अर्क को २५ से ३० बूँद की मात्रा में २ तोले गुलाबजल के साथ सवेरे शाम पीना चाहिये तथा तेल खटाई, कुष्माण्ड इत्यादि चीजों से परहेज करना चाहिये, ४० दिन तक इस प्रकार इस औषधि का सेवन करने से धातु की निर्बलता दूर होती है। चेहरे पर गुलाबी आभा आ जाती है। जठराग्नि बहुत प्रबल हो जाती है। यकृत और तिल्ली की खराबी, पांडु, कमला, जीर्ण ज्वर, जलोदर, मधुमेह तथा वृद्धावस्था से होनेवाली कमजोरियाँ नष्ट हो जाती हैं।

[जंगलनी जड़ी बूटी]

रासायनिक विश्लेषण—इसके बीजों के अन्दर कम्बोलिन नामक ग्लूकोसाइड पाया जाता है। यह तत्व स्टार्च को शक्कर के रूप में बदलने में रुकावट डालता है। इसके अतिरिक्त इसमें क्लोरोफिल, जर्बी रेजिन, एलब्यूमिन, गेलिक एसिड और कई रंगदार पदार्थ पाये जाते हैं। इनमें उड़नशील तेल भी होता है।

मुजिर—इसका पका हुआ फल अधिक खाने से मेदे और सीने को नुकसान पहुँचाता है, देर से हजम होता है, कफ बढ़ाता है, फेफड़े को नुकसान पहुँचाता है और उसमें वायु पैदा करता है। इसको ज्यादा खाने से बहुधा तरमीस का मर्ज हो जाता है। इसको अधिक खाने से बुखार भी आने लगता है। इसका कच्चा फल आँतों में छिलाव पैदा करता है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिए आंवला, अजवायन और सोंठ प्रधान है। जामुन में नमक मिलाकर खाने से भी उसका दर्प नाश हो जाता है।

मात्रा—इसकी गुठली के चूर्ण की मात्रा ३ रत्ती से १५ रत्ती तक और इसकी छाल की राख की मात्रा में १० रत्ती से १५ रत्ती तक है।

जांबू [इरुल]

नाम—संस्कृत—कानकाकुली। हिन्दी—जांबू। मराठी—जम्बा, जांभा, सूरिया। बम्बई—जाबा, इरुल, शिरवी। लेटिन—Xylia Dolabriformis [क्सीलिया डोलोब्रिफार्मिस]

 CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

वर्णन—यह वनस्पति पंजाब, बरमा, मलाया प्रायद्वीप और फिलिपाइन्स में पैदा होती है। यह एक ऊँची जाति का वृक्ष होता है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी छाल का काढ़ा कृमि, कोढ़, वमन, अतिसार, सुजाक और व्रण में उपयोगी माना जाता है। इसके बीजों का तेल सन्धिवात, बवासीर और कोढ़ में लाभदायक है।

जायफल

नाम—संस्कृत—जातिफल, जाति, जातिशा, जायफल, सगा, कोषा, कोषक, मधुशोन्दा, मालतीफला राजभोग्या, सुमनफल, शालुका, इत्यादि। हिन्दी—जायफल। बंगाल—जायफल। गुजराती—जायफल। करनाटक—जायफल। तेलगु—जाजिकाया, जादिफला। तामिल—आदि परभम्, कोसम्, सालुगमे। सीलोन—सादिकइ। अरबी—जोजऊलतिब, जोजवावा। कनाड़ी—जाजि। फारसी—जोजबोय। लेटिन—Myristica Fragrans (मायारिस्टिका फ्रेगरेन्स)।

वर्णन—जायफल का वृक्ष जावा, मलाया प्रायद्वीप और मलाया द्वीप में पैदा होता है यह। एक बड़ी जाति का वृक्ष है। इसकी शाखाएँ नाजुक रहती हैं। इसका फल लम्बगोल होता है। इसकी छाल के भीतर एक लाल गुच्छा होता है। जिसको जायपत्री कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जायफल कड़वा, तीक्ष्ण, गरम, रोचक, हलका चरपरा, अग्निदीपक, मलरोधक, स्वर को सुधारने वाला तथा कफ, वात, मुख की दुर्गन्ध, खाँसी, वमन, शोथ, पीनस और हृदय रोग को नष्ट करने वाला है।

जायफल का तेल उत्तेजक, अग्निदीपक और पुराने अतिसार को नष्ट करने वाला होता है। यह आफरा, शूल, आमवात तथा व्रण के रोगों को दूर करता है।

जायफल सुगन्धित, दीपक, वायुनाशक, उत्तेजक, पौष्टिक और वाजीकरण है। यह आमाशय को उत्तेजना देकर आमाशय में पाचक रस को बढ़ाता है। जिससे भूख बढ़ती है और अन्न पचता है। जब यह आँतों में जाता है तब वायु को गुदा की राह से खारिज करता है। आमाशय के ऊपर इसकी क्रिया कपूर के समान होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे के आखिर में गरम और तीसरे में खुश्क है। यह सर्दी की बीमारियों को दूर करता है। कामेन्द्रिय की शक्ति को बढ़ाता है। अधिक मात्रा में उपयोग करने से नशा पैदा करती है। शरीर की स्वाभाविक गरमी की रक्षा करता है। मेदे और जिगर के लिए लाभदायक है। तिल्ली और यकृत की सूजन तथा जलोदर, गठिया, लकवा, फालिज और अनैच्छिक मूत्रस्राव में भी यह लाभदायक है। यह मुँह से खुशबू पैदा करता है। इसके लगाने से आँख की खुजली और धलका मिट जाता है और आँख की ज्योति तेज होती है।

स्तम्भन सम्बन्धी औषधियों में यह एक प्रधान औषधि है। इससे वीर्य स्तम्भन सम्बन्धी कई नुस्खे तैयार होते हैं।

सर्द और तर मिजाज वालों के लिए जायफल एक बहुत मुफीद वस्तु है। जिस बीमारी में कब्जियत, गर्मी और मुलायमियत की जरूरत हो उसमें यह अच्छा काम करता है। इससे मुँह की फुन्सियां और बदबू मिट जाती है। इसके छिलके को बनफशा के तेल में पीसकर नाक में टपकाने से आधा शीशी मिट जाती है। इसको तेल में पीसकर कान में टपकाने से बहरापन मिट जाता है। इसके सेवन से खाना हजम होता है, पेट की वायु बिखर जाती है। अतिसार के अन्दर भी यह औषधि बहुत मुफीद है। इसको खाने से सर्द मिजाजवालों की कामशक्ति बढ़ती है। इसको अफसन्तीन या शहद के साथ मिलाकर चेहरे पर लगाने से चेहरे की झाँई मिट जाती है। कामेन्द्रिय पर इसको मालिश करने से कामेन्द्रिय की सुस्ती दूर हो जाती है। गठिया या जोड़ों पर इसके तेल की मालिश करने से बहुत लाभ होता है।

मुजिर—इस वस्तु को अधिक मात्रा में लेने से जिगर व फेफड़ों को नुकसान पहुँचता है। यह सिर दर्द भी पैदा करता है और गरम प्रकृति वालों के लिए हानिकारक है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नष्ट करने के लिए धनियाँ, चन्दन और बनफशा देना चाहिये।

मात्रा—इसके तेल की मात्रा १ बूँद से ३ बूँद तक है और इसकी मात्रा १ माशे तक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपयोग—मन्दाग्नि—जायफल के चूर्ण को शहद के साथ देने से मन्दाग्नि मिटती है और हृदय को बल मिलता है।

मुँह के छाले—ताजे जायफल के रस को पानी में मिलाकर कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

त्वचा की शून्यता—त्वचा की शून्यता मिटाकर उत्तेजना पैदा करने के लिए जायफल के उड़नशील तेल की मालिश करना चाहिये।

अतिसार—८ रत्ती से १ माशा तक जायफल खिलाने से मन्दाग्नि, आफरा, शूल और अतिसार मिटता है।

विशूचिका [हैजा]—जायफल को ठण्डे पानी में घिसकर पिलाने से हैजे के रोगी की प्यास मिटती है।

अतिसार—बड़े जायफल में एक छोटा छेद करके उसमें अफीम भरकर उस छेद को बुरादे से बन्द कर उस पर गीला आँटा लपट कर भूभल में दाब देना चाहिये। उसके पश्चात् उसका आटा हटा कर उसे पीसकर गोलियाँ बना लें। उन गोलियों को २ रत्ती से ४ रत्ती तक की मात्रा में देने से अतिसार मिटता है।

कर्ण मूल की सूजन—जायफल को पीसकर कान के पीछे लेप करने से कर्णमूल की गठान बिखर जाती है।

विशूचिका [हैजे] से बाँयठें—जायफल को तेल में घिसकर मालिश करने से विशूचिका के बांयठे मिटते हैं।

जी मिचलना—जायफल को ठण्डे पानी में घिसकर पिलाने से जी का मिचलना बन्द होता है।

बनावटें—जातिफला दिवटी—जायफल ६ माशे, छुहारा ६ माशे और शुद्ध अफीम ६ माशे। इन तीनों को खरल में डालकर नागर बेल के पान के रस के साथ खूब घोटना चाहिये। घुट जाने पर रत्ती रत्ती भर की गोलियां बना लेनी चाहिये। इनमें से एक-एक गोली दिन में २।३ बार मट्ठे के साथ लेने से भयंकर अतिसार भी ७ दिन में आराम हो जाता है।

स्तम्भन योग—एक बड़ा जायफल जो ७ माशे से कम न हो, लेकर खोखला [पोला] करके उसके अन्दर १॥ माशे अफीम भर दें। फिर उसके मुंह को आँटे से बन्द करके ऊपर से आटे लगाकर गोली बनाकर आग पर सेकें। जब सुर्ख हो जाय तब ऊपर से आटा छुड़ाकर सारे जायफल को पीसकर शहद मे मिलालें और झरबेरी के बेर के बराबर गोलियाँ बना लें। इनमें से १ गोली स्त्री सम्भोग के पूर्व दूध के साथ लेने से बहुत स्तम्भन होता है।

जाति फलादि चूर्ण—जायफल, लौंग, इलायची, कालामिर्च, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर, बन्सलोचन, कपूर, सफेद चन्दन, काले तिल, तगर, हरड़, तालीस पत्र, आँवला, पीपल, कलौंजी, सफेद जीरा, चित्रकमूल, सोंठ, बायबिडङ्ग इन सब औषधियों को एक-एक तोला लेकर अलग-अलग कूटकर, कपड़े में छानकर मिला दें। फिर जितना सब चूर्ण का वजन हो उतना ही शुद्ध भङ्ग का चूर्ण उसमें मिला दें। उसके पश्चात् सबको तौलकर जितना वजन निकले उतने ही वजन की सफेद मिश्री पीसकर उसमें मिला दें। इस चूर्ण को २। माशे से ३ माशे तक की मात्रा में शहद के साथ चटाने से संग्रहणी, श्वास, खांसी, अरुचि, क्षय, वात और कफ के विकार तथा पीनस रोग नष्ट होते हैं।

जाति फलादि वटी—[मधुमेह के लिए] जायफल, जावित्री, लौंग, केशर, शुद्ध धतूरे के बीज और शुद्ध अफीम ये वस्तु एक-एक तोला, शुद्ध शिलाजीत ६ तोला, लोह भस्म २ तोला। इन सब चीजों को कूट, पीस छानकर शिलाजीत के जल में घोटकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनावे। इनमें से एक-एक गोली सबेरे-शाम गुड़मार के रस और गाय के दूध के साथ सेवन करने से मधुमेह, मधुमेह की प्यास, बहुमूत्र मूत्रपिंड की निर्बलता, प्रमेह पीठिका, पेशाब के साथ शक्कर जाना इत्यादि रोग दूर होते हैं और शरीर, मन तथा इन्द्रियों को बल मिलता है।

जाति फलादि वटी—[खूनी बवासीर के ऊपर] जायफल, लौंग, पीपर, सेंधा नमक, सोंठ, धतूरे के बीज, शुद्ध हिंगलू, सुहागे की फूला। इन सब औषधियों को समान भाग लेकर इनका बारीक चूर्ण करें फिर उस चूर्ण को जम्भीरी नींबू के रस में खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लें। इनमें से एक से लेकर २ गोली सबेरे-शाम ६ माशे तिल और १ तोला मक्खन के साथ लेने से बवासीर से गिरता हुआ खून बन्द होता है और कुछ दिनों तक लगातार सेवे रहने से बवासीर के मस्से मुरझाकर झड़ जाते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जायपत्री

नाम—संस्कृत—जातिपत्री, जाति कोषा, जातिफलत्वक। हिन्दी—जायपत्री, जावित्री। मराठी—जायपत्री। बङ्गाल—जायत्री। पंजाब—जावित्री। तेलगु—जाजिपितरी। द्राविड़ी—जायत्री। अरबी—बिसवासाह। फारसी—बजवाज। लेटिन— The Aril of myristica Fragrans [दी एरिल आफ मायरिस्टिका फ्रेग्रेन्स]।

वर्णन—जायफल के वृक्ष की छाल फटकर उसके नीचे से लाल छिलके-सा पदार्थ निकलता है। उसी को जायपत्री कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जायपत्री हलकी, चरपरी, कड़वी, सुगन्धित, स्वादिष्ट, रुचिकारक, सौन्दर्य को बढ़ाने वाली, मुख को स्वच्छ करने वाली, अग्निवर्द्धक, तथा कफ, खाँसी, वमन, श्वास और तृषा को नष्ट करने वाली होती है।

कफ की वजह से पैदा हुए दमें में जावित्री को पान में रखकर खिलाने से शान्ति मिलती है। क्षय रोग में भी यह एक लाभदायक वस्तु है। पुरुषार्थ बढ़ाने वाली औषधियों और पाकों में इसको डालने से औषधि का जायका और गुण दोनों बढ़ जाते हैं। शरीर को कृश करने वाले आंतों के पुराने रोगों में इसको ६ से १० रत्ती तक की मात्रा में देने से लाभ होता है। इसको आग पर सेंककर खिलाने से विशूचिका के दस्त मिटते हैं।

इसको अधिक मात्रा में नहीं देना चाहिये। ३।४ माशे से अधिक मात्रा में देने से यह नशा और मूर्छा पैदा करती है। अगर इसको अधिक मात्रा में लेने से कुछ अनिष्ट हो जाय तो मक्खन में चन्दन और मिश्री मिलाकर चटाना चाहिये।

जावसीर

नाम—हिन्दी यूनानी—जावसीर, जवासीर। बङ्गाली—जवेशी। बाम्बे—जुआसुर। लेटिन—Opopanax Chiranium [ओपोपेनेक्स चिरेनियम]।

वर्णन—जावसीर का पेड़ मध्यम आकार का होता है। इसके पत्ते अंजीर के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ छोटे और खुरदरे होते हैं। इनका रंग गहरा हरा होता है। इसके पेड़ की शाखाएँ मुलायम होती हैं और उन पर रूआँ होता है। इसका रंग बाहर से काला और भीतर से सफेद होता है। इसका फूल पीला और खुशबूदार होता है। इसके बीज काले और अनीसून के बराबर होते हैं। इसकी जड़ में बहुत खराब गन्ध आती है।

इसकी एक जाति और होती है उसकी डालियाँ पतली और गज भर के करीब लम्बी होती हैं। इसके पेड़ का दिखाव सौंफ के पेड़-सा होता है। इसके पत्ते अकलकरे के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल का रंग सुनहरी होता है। इसको यूनानी में असक लूसक कहते हैं। इन दोनों जातियों में इसकी पहली जाति ज्यादा प्रभावशाली होती है। इसकी वह जड़ उत्तम मानी जाती है जो सफेद हो, जिस पर झुर्रियाँ नहीं हो और जिसमें तेज गन्ध आती हो और इसका वह फल उत्तम माना जाता है जो एक डाली पर एक ही आया हो।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसकी जड़ और फल दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होते हैं। इसकी जड़ शरीर में गर्मी और खुश्की पैदा करती है। इस वृक्ष का पचांग गरम, तेज तथा कब्जियत को दूर करने वाला और पेट को मुलायम करनेवाला होता है। इसका फल रुके हुये मासिक धर्म को जारी करता है। इसकी जड़ को पीसकर और शहद में मिला कर जिस जगह का गोश्त उड़ गया हो उस जगह पर लगाने से नया गोश्त पैदा हो जाता है। इसके रस को जैतून के तेल में मिलाकर शरीर की सुन्नता पर लगाने से शरीर की सुन्नता मिट जाती है। निमोनियां में इसके पत्तों को गरम करके सीने पर बाँधने से शान्ति मिलती है। इसके पत्तों का रस निचोड़ कर सिरके के साथ पीने से तिल्ली की सूजन मिट जाती है। गर्भवती स्त्री को इस औषधि से बचना चाहिए। क्योंकि इसको पीने से और इसकी जड़ को गर्भाशय में रखने से बच्चा मर कर निकल पड़ता है। हिस्टोरिया में भी यह औषधि बहुत लाभदायक है। इसको शराब के साथ पिलाने से हिस्टीरिया के रोग में बहुत लाभ होता है।

जावशीर का गोन्द—इस वृक्ष में से एक प्रकार का गोंद निकलता है जो जावशीर का गोंद कहलाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—हकीम जालीनूस के मत से जावसीर का गोंद तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होता है। यह जावसीर के पंचांग से हर बातों में अधिक प्रभावशाली और अधिक उग्र है। यह वायु को बिखेरता है। सूजन की सख्ती को मुलायम कर देता है, कमजोर पट्ठों को ताकत देता है। सरदी की वजह से पैदा हुए ज्ञान तन्तुओं के रोग जैसे—लकवा, मृगी, कम्पवात, सिर दर्द इत्यादि रोगों में बहुत मुफीद है। वायु सम्बन्धी तमाम बीमारियों में जो सरदी की वजह से पैदा हुई हो यह हुक्मिया औषधि है। अगर हड्डी पर चोट आ जाय तो जावशीर को शराब के साथ देने से लाभ होता है।

लकवे के रोग में यह एक प्रथम श्रेणी की औषधि है। स्त्री सम्भोग की अधिकता से मनुष्य शरीर में जो बीमारियां पैदा होती हैं उनमें भी यह लाभदायक है।

इसको आंखों में लगाने से मोतियाबिन्द में लाभ होकर आंखों की ज्योति तेज होती है। इसको कान में डालने से कान का बहरापन दूर होता है। दाँत पर मलने से दंतशूल मे आराम होता है। कीड़े से खाये हुए दांत के सुराख में इसको रखने से फायदा होता है। इसको ३ या ३॥ माशे की मात्रा में गरम पानी के साथ लेने से रुका हुआ मासिक धर्म और रुका हुआ पेशाब चालू हो जाता है। सरदी से पैदा हुए जलोदर और पीलिया में भी यह लाभ करता है। बूंद-बूंद पेशाब आने की बीमारी का यह दूर करता है। वायु और कफ से पैदा हुए कालिक उदरशूल में भी यह मुफीद है। इसका शहद में मिलाकर लेप करने से गर्मी के जखम और जैतून के तेल में मिलाकर लगाने से गठिया, गृध्रसीवात और पागल कुत्ते के विष में लाभ होता है। सांप और बिच्छू के विष पर इसको ३॥ माशे की मात्रा में खिलाने से और काटी हुई जगह पर पीसकर लगाने से फायदा होता है। प्रसूता स्त्री को बच्चा होने के पश्चात् गर्भाशय में अगर कुछ खराबी रह जाय तो इसके इस्तेमाल से साफ हो जाती है। इसको अकरकरे के साथ पीसकर तिल्ली के तेल में मिलाकर, लिंगेन्द्रिय पर लेप करने से बहुत तेजी पैदा होती है।

यह बात ख्याल रखना चाहिये कि यह औषधि जहाँ बीमार पट्ठों को तन्दुरुस्त कर देती है वहाँ तन्दुरुस्त पट्ठों को नुकसान पहुँचाती है।

मुजिर—यह गर्भवती स्त्री के गर्भ को गिरा देती है और पुरुषों के अण्डकोष को नुकसान पहुँचाती है।

दर्पनाशक—कौंच के बीजों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े में जावशीर को रातभर भिगोकर इस्तेमाल करने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि अंजीर का दूध, गन्धा विरोजा और जैतून का तेल है।

मात्रा—इसकी मात्रा २ माशे से ४ माशे तक है।

जेठीमद

नाम—कच्छ—जेठीमद। गुजराती—जेठीमद। लेटिन—Teverniera Nummularia.

वर्णन—यह एक प्रकार की नकली मुलहठी है जो कच्छ, गुजरात, सिन्ध और ब्लूचिस्तान के जंगलों में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—मुरे के मतानुसार इसके पत्ते कठिनाई से आराम होने वाले घाव पर बांधने से बड़ा लाभ होता है।

जैतअलसूदान

नाम—यूनानी—जैतअलसूदान।

वर्णन—यह एक फूलदार वृक्ष है। इसके फल छोटे बादाम की तरह होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक छोटी और एक बड़ी।

गुण दोष और प्रभाव—यह दूसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में तर है। यह फालिज, सुन्नवात और आफरे को मिटाता है। पागलपन, वहम और रक्तदोष की बीमारियों में फायदा पहुँचाता है। यह मुन्नल भी है। इसके सेवन से अच्छा खून पैदा होता है। इसके रस को कान में टपकाने से कान का बहरापन और कान का बहना मिटता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जैतून

नाम—हिन्दी—यूनानी—जैतून। कनाड़ी—जुलिये। तामिल—सेदूद। तेलगू—जैतून। लेटिन—Olea Europea [ओलिया युरोपिया]।

वर्णन—इस वनस्पति का मूल उत्पत्तिस्थान भूमध्यसागर है। बलूचिस्तान में भी यह पैदा होती है। यह एक बड़ी जाति का वृक्ष है। इसके फल अण्डाकार और कलमी बेर की तरह होते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे, पकने पर लाल और आखिर में काले पड़ जाते हैं। इस फल की गुठली पौन इंच लम्बी और आधा इंच मोटी होती है। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों की तरह मगर कुछ गोल होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक जंगली और दूसरी बागी।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मत से इसकी डालियाँ और पत्ते दोनों सर्द, खुश्क और काबिज हैं। इसका पका हुआ फल गरम और कच्चा फल सर्द है। इसके कच्चे फल को पीसकर लगाने से चेचक और दूसरे फोड़े फुन्सियों के निशान मिटते हैं। खराब जख्मों पर इसका लेप करने से यह उन जख्मों को फैलने से रोकता है। अग्नि से अगर शरीर जल जाय तो उस पर कच्चे जैतून के फल को पीसकर लगाने से छाला नहीं पड़ता है। इसके कच्चे फल को जलाकर उसकी रख को शहद में मिलाकर सिर की गंज और फुन्सियों पर लगाने से लाभ होता है। बागी जैतून का फल स्मरण-शक्ति की कमजोरी को मिटाता है मगर इसको अधिक मात्रा में खाने से सिर दर्द और अनिद्रा रोग होने का भय रहता है। इसका पका हुआ काला फल आंखों के लिये हानिकारक वस्तु है। इसको खाने और लगाने से आंखों की ज्योति खराब होती है। इसके कच्चे फल को पानी में औटाकर उस पानी से कुल्ले करने से दाँत और मसूड़े मजबूत होते हैं और उनके रोग मिटते हैं। मुँह के छाले भी इससे मिट जाते हैं।

शेख का कथन है कि जैतून का फल मेदे के लिये हानिकारक है। यह मेदे को ढीला करता है। तथा उसमें बात का तासीर पैदा करती है।

जैतून के फल का मुरब्बा मृदुविरेचक है। इसको गरम पानी के साथ खिलाने से खूब दस्त लगते हैं। इसका आचार भूख बढ़ाता है, आमाशय को ताकत देता है, लेकिन कुछ कब्ज भी करता है। इस आचार को अगर सिरके में डालकर खाया जाय तो वह जल्दी हजम हो जाता है।

जैतून के पत्ते जंगली और बागी के भेद से अलग-अलग गुण वाले होते हैं। जंगली जैतून के पत्तों को सुखाकर पीस-कर बदन पर मलने से पसीने का आना बन्द हो जाता है। इसके पत्तों का चूर्ण शहद में मिलाकर जख्मों पर लगाने से जख्म जल्दी भर जाते हैं। जंगली जैतून के पत्तों का लेप पित्ती, खुजली, दाद और गर्मी के खराब जख्मों पर भी फायदा पहुँचाता है। इन पत्तों का रस कान में डालने से कान का दर्द, पीव और सूजन में फायदा होता है। इसके पत्तों के रस को लेकर उसमें बराबर की शहद मिलाकर कुनकुना करके कान में डालने से कान बहरापन और कान की फुंसी मिट जाती है। बागी जैतून के पत्ते नेत्र रोगों में बहुत लाभदायक हैं। इनसे मोतियाबिन्द में भी लाभ होता है। इसके पत्तों के पानी को नाक में चढ़ाने से बच्चों की आंखों का टेढ़ापन [तिरछा देखना] मिट जाता है। इसके पत्तों को सिरके में औटाकर कुल्ले करने से दाँतों का दर्द और मुंह के छाले मिटते हैं। इसके पत्तों को पीसकर जौ के आटे में मिलाकर कुछ पानी डालकर नाभि पर लेप करने से पुराने दस्त बन्द हो जाते हैं।

जैतून का तेल—

जैतून में से एक प्रकार का हलके पीले रंग का सफेदी लिये हुए तेल निकलता है। जिसको अंग्रेजी में ओलिव आइल [Olive Oil] कहते हैं।

शेख के मत से जैतून का तेल दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। इसका ताजा तेल गरम और तर होता है। कच्चे फलों का तेल पहले दर्जे में सर्द और खुश्क होता है। जालीनूस के मतानुसार हर किस्म का जैतून का तेल दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क होता है। इसकी खली पहले दर्जे में गरम और खुश्क होती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

इस तेल की मालिश से पट्ठों की सर्दी दूर होकर उनमें ताकत आती है। यह सूजन को दूर करता है। इसके खिलाने से पेट के कीड़े मरकर बाहर आ जाते हैं। इसके तेल की मालिश सर्दी के रोगों में अच्छा फायदा करती है। इसका तेल बात को दूर करता है, सुद्दों को बिखेरता है और कफ को घटाता है। फ़ालिज और सुन्नवात में भी यह लाभदायक होता है। इसको आंखों में लगाने से आंखों की ज्योति बढ़ती है, नजले का पानी नहीं उतरने पाता और अगर आंख में जाला हो तो वह भी कट जाता है। जंगली जैतून के तेल की मालिश से टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है। इसके तेल को पीवदार फोड़ों में लगाने से फायदा होता है। धुले हुए जैतून के तेल को मुँह पर मलने से चेहरे की रौनक बढ़ जाती है। इसको आंख में लगाने से आंख की खुजली, जाला, पानी का बहना और नजला साफ हो जाता है।

जैतून का गोंद—

जैतून के वृक्ष से एक प्रकार का गोंद भी निकलता है जो कुछ पीला, स्याह, सुर्खी माइल और मीठा होता है। इसको कुछ देर तक हाथ में रखकर मसलने से यह पिघल कर शहद सरीखा हो जाता है।

यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क होता है। कोई-कोई दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क मानते हैं। यह जुकाम, नजला, सर्दी और खाँसी में फायदा पहुँचाता है और आवाज को साफ करता है। इसको योनि में रखने से गर्भाशय की सूजन दूर हो जाती है। इसको मरहम में मिलाकर लगाने से दाद के जखम और तर खुजली में फायदा होता है। यह मेधाशक्ति को भी फायदा पहुंचाता है। इसको आंख में लगाने से पुतली के रोग, जाला और बामनी रोग में फायदा होता है। जंगली जैतून का गोंद कीड़ा खाये हुए दांत में भर देने से बहुत फायदा पहुँचता है। इसके सेवन से पुरानी खांसी मिट जाती है और कफ निकल जाता है। इसका गोंद मूत्रल है और योनि में रखने से मासिक धर्म को जारी कर देता है। यह गर्भ को भी गिरा देता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार जैतून का तेल औषधियों में बहुत काम में लिया जाता है। अन्तःप्रयोग और बाह्य प्रयोग दोनों ही में यह उपयोगी है। इससे कई प्रकार के लेप और मरहम बनाए जाते हैं। यह एक प्रकार का पौष्टिक खाद्य भी है। कई ऐसी बीमारियों में जिनमें शक्ति का ह्रास होता हो यह देने के काम में लिया जाता है।

मुजिर—इस वनस्पति के अधिक सेवन से अनिद्रा, कमजोरी और दुबलापन पैदा होता है और फेफड़ों को नुकसान पहुँचता है। इसका गोंद वरम और सिर दर्द पैदा करता है और गर्भ को गिरा देता है।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नष्ट करने के लिए बादाम, अखरोट, शहद और शरबत नीलोफर या खमीरा बनफ्शा मुफीद है।

मात्रा—इसके गोंद की मात्रा ३ माशे से ५ माशे तक और तेल की मात्रा ढाई तोले तक की है।

जौ

नाम—संस्कृत—यव, मेध्य, सितशूक, दिव्य, धान्यराज, पवित्र धान्य। हिन्दी—जौ। बंगाल—यव। मराठी—जव। गुजराती—जव। नेपाल—तोस। भूतान—नस। पंजाब—जव। अंग्रेजी—Barley [बार्ली]। लेटिन—Hordeum Vnlgar [होरडियम व्हलगेर]।

वर्णन—जौ एक मशहूर अनाज है जो हिन्दुस्तान में सब दूर पैदा होता है। आयुर्वेदिक मतानुसार यह शूक, निःशूक और हरित वर्ण के भेदों से तीन प्रकार का होता है। शूक यव गुणों में सबसे अधिक होता है। निःशूक यव उससे हीन गुण वाला होता है और हरित वर्ण उससे भी हीन गुण वाला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जौ कसेला, मधुर, शीतल, मृदु, व्रण रोग में तिल के समान लाभदायक, रूखा, बुद्धिवर्धक, पाक में कड़ुआ, स्वर को शुद्ध करने वाला, भारी, बलकारक, वात को पैदा करने वाला, कान्तिवर्धक और गले के रोग, चर्म रोग, कफ और पित्त रोग, मेद रोग, पीनस तथा श्वास, खांसी, उरु स्तम्भ, रक्त विकार और तृषा को दूर करने वाला है।

जौ का सत्व निकालने की विधि—जौ को कुनकुने पानी में गला देना चाहिये। जब उनमें बारीक-बारीक अंकुर फूटते नजर आने लगें तब उनको निकालकर अच्छी तरह सुखा लेना चाहिये। उसके बाद उनका चूर्ण कर लेना

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

चाहिये। इस चूर्ण को बराबर वजन के ठण्डे पानी में मिट्टी के बरतन में ६ घण्टे तक भिगोना चाहिये फिर उसमें चौगुना पानी मिलाकर १ घण्टे तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उसे आँच पर जोश दे देना चाहिये। जोश आने के बाद उसको साफ कपड़े में साफ बरतन के अन्दर छान लेना चाहिये। उस बरतन को गरम पानी से भरे हुए एक दूसरे बरतन में रखकर हलकी आँच से औटाना चाहिये। कुछ देर के बाद शहद के समान गाढ़ा सत्व तैयार हो जायगा। उसको ढक्कनदार शीशे में बन्द करके ठंडी जगह में रख देना चाहिये। इस सत्व को भोजन के ३ घण्टे पश्चात् ६ माशे से लेकर १ तोले तक की मात्रा में लेना चाहिये।

जौ का सत्व पाचक और पौषक होता है। यह गेहूँ के सत्व से जल्दी हजम होता है। इसको प्रतिदिन खाने से मधुमेह के अन्दर जाने वाली शक्कर नष्ट हो जाती है, क्योंकि इसकी सहायता से अन्न हजम होता है और अन्न का रक्त बनने तक जितनी विनिमय क्रियाएँ होती हैं वे सब सुधर जाती हैं। पाचन क्रिया की खराबी में और फुफ्फुस के रोगों से पैदा हुई कमजोरी में भी जौ का सत्व दिया जाता है। इस सत्व को कम मात्रा में लेना चाहिये क्योंकि इसको अधिक मात्रा में लेने से दस्तें लगने लगती हैं। जिन बीमारियों में शरीर से पीब बहता हो उन बीमारियों में यह बहुत अच्छा पथ्य है।

जौ की खीर बनाने की रीति—जौ को रात में गरम पानी में भिगोकर सुबह उसमें दूध, शक्कर डाल कर मन्दी आंच से औंटाना चाहिये और उसमें थोड़ा-सा नमक डालकर पिलाना चाहिये; कमजोर बच्चे इससे पुष्ट हो जाते हैं।

जौ का खार बनाने की विधि—जौ के पंचाङ्ग को उखाड़ कर सुखाकर जला देना चाहिये। फिर उस राख को पानी में खूब घोल लेना चाहिये। उसके बाद उस बर्तन को २।३ घण्टे तक स्थिर पड़ा रहने देना चाहिये। जब राख नीचे बैठ जाय तब पानी को ऊपर से नितार लेना चाहिये। उसके बाद उस पानी को आग पर चढ़ा देना चाहिये। औटाते-औटाते जब रबड़ी सरीखा हो जाय तब उसको उतार कर सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार सफेद रङ्ग का उत्तम क्षार तैयार हो जाता है।

जवाखार के गुण और दोष—जवाखार यह एक दिव्य वस्तु है। भोजन के पहले लेने से यह अग्नि को दीपन करती है और आमाशय की श्लेष्म त्वचा में रहने वाले मज्जा वस्तुओं की पीड़ा को कम करता है। इन्हीं दो गुणों की वजह से अजीर्ण, आमाशय की पीड़ा और वमन में यह पदार्थ दिया जाता है। भोजन के पश्चात् लेने से यह आमाशय की अम्लता को कम करता है। खून के अन्दर मिलने के पश्चात् यह रक्त कणों के रङ्ग और संख्या को बढ़ाता है। रक्त शुद्धि के लिये जौ खार दूसरे सुगन्धित पदार्थों के साथ दिया जाता है। जौ खार मूत्रपिण्ड को भी उत्तेजना देता है जिससे पेशाब की मात्रा बढ़ती है। मूत्र पिण्डों की सूजन की वजह से जब पेशाब की मात्रा कम हो जाती है तब जवाखार को देने से लाभ होता है। इससे पेशाब में होने वाली जलन फौरन मिट जाती है। सुजाक में भी जवाखार को देने से शान्ति मिलती है। जवाखार त्वचा को भी उत्तेजित करता है। इसलिये यह पसीना लाने के लिये ज्वर में नीम के रस के साथ दिया जाता है। जवाखार के लेने से कफ पतला होकर छूटता है, श्वास मार्ग की सूजन कम होती है, इसलिये श्वास नलिका की नवीन सूजन में और सूखी खाँसी में इसको देने से फायदा होता है। यह पित्त को भी पतला करता है और पित्त वाहिनी नलियों की सूजन को मिटाता है। इसलिये यकृत की सूजन वगैरह रोगों में भी यह दिया जाता है। जवाखार अम्लता नाशक, दीपन, रक्तशोधक, पाण्डु रोग नाशक, मृदुभावी मूत्रल, पसीना लाने वाला, कफ को नष्ट करने वाला, पित्त क्रिया को सुधारने वाला अत्यन्त सौम्य होता है। जवाखार की अपेक्षा जौ की राख विशेष अच्छी रहती है। फुफ्फुस रोगों में जौ की राख ही काम में लेनी चाहिये।

रासायनिक विश्लेषण—जौ की राख में सिलिसिक एसिड २९ प्रतिशत, फास्फेरिक एसिड ३२॥ प्रतिशत, पोटास २२॥ प्रतिशत और चूना ३॥ प्रतिशत रहता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से जौ दूसरे दर्जे में सर्द और पहले दर्जे में खुश्क है। यह कब्जियत करता है, खून के जोश को ठण्डा करता है, पित्त और गर्मी के बुखार की तेजी को कम करता है। क्षय, निमोनियाँ और खाँसी में मुफीद है, प्यास को बुझाता है, जौ की गरम-गरम रोटी के टुकड़े करके, उसको मिट्टी के बर्तन में रख कर उसमें थोड़ा पानी भर दें और एक हफ्ते तक जमीन में गाड़ दें। फिर निकालकर उसका साफ पानी लेकर शीशी में भर दें। इसमें से २ से ५ तोला तक पानी अर्क गावजवां के साथ बुखार के मरीज को देने से तसल्ली मिलती है। जौ के आटे को पानी में पकाकर कुनकुना

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

होने पर लेप करने से झाई और खुजली में फायदा होता है। पीली फुन्सियों वाली खुजली पर इसको सिरके के साथ पकाकर लगाना चाहिये। जौ के आटे में तिल का तेल और मट्ठा मिलाकर लगाने से सूखी हुई खुजली में बहुत लाभ होता है। कंठ-माला में धनिये के हरे पत्तों के रस के साथ जौ के आटे का लेप करने पर कण्ठमाला की सूजन बिखर जाती है। जौ के आटे को अंजीर के साथ लगाने से कफ की वजह से पैदा हुई सूजन बिखर जाती है। सिरके और ईसबगोल के साथ इसका लेप करने से पित्त से पैदा हुई सूजन बिखर जाती है। खासकर कान के पीछे की सूजन में यह बहुत फायदा पहुँचाता है। अजवायन खुराशानी के साथ इसके आटे को लेप करने से हड्डी टूटने पर और मोच आने पर फायदा होता है। सिरके के साथ जौ के आटे का लेप करने से गरमी का सिर दर्द दूर होता है। जिनकी तबीयत में गर्मी चढ़ जाय या गर्मी की वजह से घबराहट पैदा हो उसको जौ का सत्तू और शक्कर पानी में घोलकर देने से बड़ी शांति मिलती है। गरम प्रकृति वालों के लिए यह एक अच्छा पथ्य है। इसके आटे को इकलिलुलमुलक और खसखस के दानों के साथ लेप करने से निमोनियाँ और ग्रन्थिवात में लाभ होता है। अलसी के बीज, मेथी के बीज, सद्दाब और जौ के आटे को पानी में मिलाकर लेप करने से जबरदस्त पेट का फुलाव भी मिट जाता है।

जौखार—यूनानी मत से जौखार गरम और खुश्क होता है। यह वायु और कफ को बिखेरता है। कॉलिक उदर शूल को नष्ट करता है। कफ की खाँसी में लाभ पहुँचाता है। अन्न की रुचि को बढ़ाता है। मसाने की पथरी को तोड़ता है। गले की बीमारियाँ, मेदे की खराबी, बवासीर, बायुगोला, तिल्ली और यकृत की सूजन में फायदा पहुँचाता है। बदहजमी में जब कि मेदे के अन्दर बहुत खट्टापन हो जाता है तब इसको देने से लाभ होता है। उरुदंश और गठिया की बीमारी में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

मुजिर—जौ का अधिक मात्रा में प्रयोग ठण्डी प्रकृति वालों को नुकसान पहुँचाता है और पेट में फुलाव पैदा करता है। इसको हमेशा खाते रहने से पेट में मरोड़ी और वायु पैदा होती है और मेदा तथा आंतें कमजोर हो जाती हैं।

दर्पनाशक—इसके दर्प को नाश करने के लिए घी, मक्खन, मिसरी, गरम मसाला और मस्तगी मुफीद है।

मात्रा—जवाखार की मात्रा १ माशे से ३ माशे तक की है और जौ के सत्व की मात्रा आधे से १ तोले तक की है।

जियापोता

नाम—संस्कृत—पुत्रजीवा, गर्भकरा, गर्भदा, अर्दसादका, कुमार जीवा, पवित्रा। हिन्दी—जियापोता, पुत्रजीवक, ज्योति। बंगाल—जियापोता, पुत्रजीवा। बम्बई—जीवपुत्रक, पुत्रजीवा। मराठी—जीवपुत्रक, पुत्रजुआ। पंजाब—जिया-पुता, पातजन। तामिल—इरुपोलि, करुपलि। तेलगू—कद्रजीवी, महापुत्र, पुतजन, पुत्रजीविका। लेटिन—Putranjiva Roxburghii [पुत्रन्जिवा रॉक्सबर्गी]।

वर्णन—जियापोता के वृक्ष सारे भारतवर्ष की पहाड़ी जमीन में कुदरती तौर से पैदा होते हैं। इनकी कहीं कहीं खेती भी की जाती है। यह हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसकी छाल फीके रंग की पत्ते कटी हुई किनारी के गहरे रंग के, चमकीले अण्डाकार और ६.३ से १० सेन्टीमीटर तक लम्बे तथा २ से ३.८ सेन्टीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसका फल लंबगोल और कुछ तीखी नोक वाला होता है। इसकी गुठली तीखी और बहुत कठोर रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति शीतल, सुगन्धित, तीक्ष्ण, कामोद्दीपक, मूत्रल और विरेचक होती है। यह आँखों के लिए लाभदायक है तथा पित्त, प्यास, जलन, विसर्प और श्लीपद में लाभ पहुँचाती है। यह वात और कफ पैदा करती है। इसके फल तथा इसकी गुठली ज्वर के अन्दर दी जाती है।

इस वनस्पति का नाम संस्कृत तथा हिन्दुस्तान की प्रायः सभी भाषाओं में पुत्रजीवक पाया जाता है। इससे यह मालूम होता है कि इस वनस्पति के इस नाम के अन्दर कुछ सार्थकता अवश्य है। सिद्ध नित्यनाथ कृत रसरत्नाकर नामक ग्रंथ ने लिखा है कि पुत्रजीवक के बीज, पत्ते और जड़ को दूध के साथ पीने से जिस स्त्री के बच्चे हमेशा मर जाते हों वह स्त्री दीर्घ आयुष्यवान पुत्र को जन्म देती है।

जङ्गलनी जड़ी बूटी नामक ग्रन्थ के कर्ता लिखते हैं "कि इस वनस्पति के सम्बन्ध में इस प्रकार की बातें तो बहुत सुनते थे मगर इसका अनुभव लेने का अवसर हमको नहीं मिला था। एक बार रणासण की तरफ एक रोगी की दवा करने

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

के लिए हमें जाने का अवसर आया और वहाँ से कुछ दूरी पर चौमुखी महादेव के दर्शन के लिए जाते हुए पुत्रजीवक के २ वृक्ष नजर आये और हमने उनकी थोड़ी सी जड़ें निकलवा ली।

जिस रोगी की चिकित्सा करने हम गये थे वह एक स्त्री थी उसे हमेशा गर्भपात होने की बीमारी थी। अगर कोई बालक पूरा हो भी जाता तो थोड़े ही दिनों में मर जाता था। क्योंकि उसका दूध बिलकुल पानी के समान और अत्यन्त दुर्गन्ध पूर्ण रहता था। यदि कोई दूसरी स्त्री बालक को दूध पिलाने की इच्छा करती तो भी उसकी इच्छा सफल नहीं होने पाती थी। क्योंकि प्रत्येक बालक को जन्म के साथ ही ऐसा रोग पैदा हो जाता था जिससे वह दूध पी ही नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त इस स्त्री को प्रदर और योनिदाह की बीमारी भी हमेशा रहा करती थी।

इस नवीन औषधि [पुत्रजीवक] को अजमाने की लालसा से हमने अपने साथ लाई हुई एक भी औषधि का उपयोग न करते हुए पुत्रजीवक की जड़ों को ही देना निश्चय किया। प्रति दिन सबेरे शाम उसमें से एक-एक तोला जड़ दूध में घिस-कर देना शुरू किया और खट्टे, खारे, तीखे और गरम पदार्थों से सख्त परहेज करने की हिदायत कर दी। रोगी को इस औषधि पर अविश्वास नहीं हो जाय इसलिए उसका विश्वास जमाने को दूसरी औषधि की तौर पर सिर्फ सुहागे की पुड़ियाएँ दे दी थीं। इस प्रयोग को शुरू करने के पश्चात् धीरे-धीरे उसका रोग कम होने लगा और उसे २।३ महीने के पश्चात् गर्भ रहा। उसके पश्चात् भी प्रसूति होने तक औषधि चालू रक्खी गयी। परिणाम यह हुआ कि नियत समय पर उसको एक बिलकुल स्वस्थ और सुन्दर पुत्र हुआ। उसका दूध भी सुधर गया और उसके बाद अभी तक वह ५ स्वस्थ सन्तानों की माता हैं।

इस घटना के पश्चात् गर्मी, प्रसूति रोग, कंठमाला, प्रदर, विस्फोटक, इत्यादि रोगों की वजह से बन्ध्यत्व भोगने वाली लगभग २५ स्त्रियों पर इस वनस्पति के फल का गर्भ के लिए उपयोग किया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि इनमें से करीब २० स्त्रियों पर सन् १९२३ की साल तक अत्यन्त सन्तोषजनक परिणाम नजर आया।

इससे पता चलता है कि स्त्रियों के गर्भाशय से रोगों को दूर कर उनको गर्भाधान के योग्य बनाने की इस औषधि में अच्छी शक्ति है।

सर्प विष तथा दूसरे विषों के ऊपर भी इस औषधि का अच्छा प्रभाव होता है। रसरत्नाकर ग्रन्थ में लिखा है कि पुत्रजीवक के फलों की मगज ४ माशे की मात्रा में ठण्ढे पानी के साथ पीसकर पीने से तथा आंखों में आंजने से और लेप करने से स्थावर, जंगम सब प्रकार के विषों का नाश होता है। अगर साक्षात् काल स्वरूपी नाग ने भी डंक मारा हो तो भी रोगी बच जाता है।

मगर केश और महकर के मतानुसार सर्प विष में यह औषधि अपना कोई प्रभाव नहीं रखती।

रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रंथ में इस औषधि के लिये लिखा है कि पुत्रजीवक के फलों के गर्भ को पानी के साथ पीसकर लेप करने से जलन युक्त गठान, प्लेग के समान जहरी गठान, तथा और चाहे जिस दोष और चाहे जिस कारण से पैदा हुई गठान उसकी वेदना के साथ तत्काल नष्ट हो जाती है। बगल में होनेवाली गठान, गले की गठान और बद गठान को भी इसका लेप नष्ट कर देता है।

मकोय के पत्ते, मेनसिल, मुलेठी और पुत्रजीवक इन सबको समान भाग लेकर अथवा सिर्फ पुत्रजीवक के फल के गर्भ को गाय के दूध के साथ पिलाने से प्लेग के समान असाध्य रोग की जहरीली गठान भी मिट जाती है।

इन सब बातों से यह मालूम होता है कि यह औषधि उपदंश, फिरंगवात, इत्यादि रोगों के द्वारा शरीर में फैले हुए जहर को दूर करने के लिये भी बहुत उपयोगी है।

बनावटें—

पुत्रदावटी—जियापोता के फल का गर्भ ४ तोला, शिवलिंगी के बीज ४ तोला, पारसपीपल के बीज ४ तोला, नागकेशर ४ तोला, असगंध ४ तोला, सरगंखा की जड़ ४ तोला, हरड़ ४ तोला, बहेड़ा ४ तोला, आंवला ४ तोला, देवदारू ४ तोला, उलटकम्बल की जड़ ४ तोला, कमलगट्टा ४ तोला, बलबीज ४ तोला, सफेद चन्दन ४ तोला, लाल चन्दन ४ तोला, दारू हलदी ४ तोला, वंशलोचन ४ तोला, बंग भस्म ४ तोला लोह भस्म ४ तोला, सोनामुखी भस्म ४ तोला। इनमें से सबसे पहले काष्ठ औषधियों का चूर्ण करके तीनों धातु भस्में उसमें मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् सारे चूर्ण को १

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

भावना भोरिंगणी के क्वाथ की, १ भावना अशोक की छाल के क्वाथ की, १ भावना पुत्रजीवक के फलों के गर्भ के क्वाथ की और १ भावना शतावरी के रस अथवा क्वाथ की देना चाहिये। उसके पश्चात् इसकी छः-छः रत्ती की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लेनी चाहिये।

इनमें से प्रतिदिन सबेरे शाम ३ से लेकर ४ गोली तक दूध के साथ लेना चाहिये। कुछ समय तक इसको सेवन करने से सभी जाति के ऋतु दोष दूर होकर स्त्रियों का बन्ध्यत्व मिट जाता है, जिन स्त्रियों का गर्भ हमेशा गिर जाता हो, रजोदर्शन के समय में कष्ट होता हो, मासिक धर्म कम आता हो, गर्भ धारण न होता हो, ऐसी स्त्रियों के सब विकार इस औषधि से दूर हो जाते हैं। जन्म बन्ध्या, काक बंध्या और मृत वत्सा औरतों के लिये यह एक उत्तम औषधि है।

[जङ्गलनी जड़ी बूटी]

जिंगन

नाम—संस्कृत—जिंगनी, झिंगनी, झिंगी, सुनिर्यासा, प्रमोदिनी, कुल मंजरी, पार्वती। हिन्दी—जिंगनी, जिगन। मराठी—मोई, मोख, शीम्पटी। गुजराती—मेवेड़ी, मोलेड्ड। काठियावाड़- मवेड़ो। सिंध—भुइ। काश्मीर— गन्धवल, कैमेल। कनाड़ा—उडीमर। तामिल—ओदीयमरम्। तेलगू—ओड्डीभानु। लेटिन—Odina wodeir [ओडाना वोडियर] Lemnea Grandis [लेम्नियां ग्रेण्डिस]।

वर्णन—जिंगनी का वृक्ष जब पत्ते और फूलों से लदा हुआ रहता है तब बहुत सुन्दर दिखलाई देता है। मगर जाड़ों में जब इसके पत्ते बिखर जाते हैं तब इसके वृक्ष भस्मी रङ्ग के ठूँठ की तरह दिखाई देते हैं। इसके लिये ग्राडिस ने लिखा है कि "A Handsome Tree when in full foliage an vesore when leafless."

इस वृक्ष की साधारण ऊँचाई ३०–४० फुट और इसके पिण्ड की गोलाई ४–५ फुट की होती है। इसमें बड़ी और फैली हुई डालियाँ लगती हैं। इसके पत्ते लम्बे, सलियों के ऊपर जोड़े से लगते हैं। वे बहुत चमकते हुए और सुन्दर होते हैं। शाखाओं के किनारों के पास-पास आकर इनका आकार गुम्बज की तरह हो जाता है। इसमें आम के मौर की तरह सूक्ष्म पीलास लिये हुये लाल रंग के फूल आते हैं जो खुशबूदार होते हैं। वसन्त ऋतु में इस वृक्ष से पीला और सफेद रंग का गोंद निकलता है। जो आधा पानी में गलता है और आधा नहीं गलता। यह वृक्ष काठियावाड़, मद्रास प्रान्त और हिन्दुस्तान के गरम भागों में कई स्थानों पर होता है। दुष्काल के समय यह ढोरों के घास की जगह बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जिंगनी मधुर, गरम, कसैली, योनिशोधक, चरपरी तथा हृदय रोग, वात और अतिसार को दूर करने वाली होती है। इसका गोंद स्नेहन और संग्राहक है। इसकी छाल संग्राहक, पौष्टिक और व्रणरोपक होती है।

दस्तों को बन्द करने के लिये इसका गोंद दिया जाता है। मोच और चोट की पीड़ा मिटाने के लिये इसके गोंद को नारियल के रस में पीस कर लेप करते हैं। इसकी छाल का काढ़ा अजीर्ण, अतिसार और शरीर की शिथिलता दूर करने के लिये दिया जाता है। इस काढ़े से कुल्ले करने से गले की खराबी मिट कर खाँसी में लाभ होता है। दाँतों का दर्द मिटता है और मसूड़ों का ढीलापन दूर होता है। इसकी छाल के काढ़े को तेल में सिद्ध करके उस तेल को पुराने और न भरने वाले व्रणों पर लगाने से लाभ होता है। इसके पत्तों को गरम करके सूजन के ऊपर बाँधते हैं। दमे के रोग में इसके पत्तों का क्वाथ बनाकर पिलाया जाता है। स्त्रियों के हृदय का बल बढ़ाने के लिये भी इसके पत्तों का क्वाथ मुफीद है। अफीम या दूसरे किसी प्रकार के विष से अगर मूर्च्छा आ गई हो तो उसको मिटाने के लिये इसके ताजे पत्तों के १० तोले रस में ५ तोले इमली को मसल कर पिलाना चाहिये। जिससे वमन होकर मूर्च्छा दूर हो जायगी। पुराने और भरे निगले फोड़ों पर इसकी छाल को नीम के तेल में पीसकर लगाने से लाभ होता है।

इसकी छाल का लोशन बनाकर दुष्ट व्रणों पर लगाने के काम में लिया जाता है। यह चर्म प्रदाह, कुष्ठ के व्रण और पीले रंग की फुन्सियों पर भी लाभ पहुँचाता है।

बंगाल में अफीम या दूसरे निद्रा लाने वाले पदार्थों की वजह से पैदा हुई बेहोशी को मिटाने के लिये इसका ताजा रस १० तोले लेकर उसमें ५ तोला इमली मसल कर पिलाते हैं, जिससे बेहोशी मिट जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आर० एन० खोरी के मतानुसार पांडेचेरी में इसकी छाल संधिवात और पेचिश के ऊपर उपयोग में ली जाती है। इसका गोंद स्त्रियों के लिये दुग्धवर्धक माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका रस आँखों के रोग और दुष्ट व्रणों पर लगाने के काम में लिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—इसकी छाल में टेनिन पाये जाते हैं। इसकी छाल की राख में पोटेशियम कारबोनेट रहता है। यह वनस्पति नेत्ररोग, कठिनाई से आराम होने वाले व्रण, विस्फोटक और मुंह के छालों और मसूड़ों पर बहुत उपयोगी है।

जिगना (जोंकमारी)

नाम—हिन्दी—जिगना, जोंकमारी, जंगमानी। काश्मीर—काला चग्र। पंजाब—धब्बर। अरबी—अंधगिरा, परिजानेह। गुजराती—वाली फुलड़ी, गोली फुलड़ी। सीमान्त प्रदेश—जोंकमारी, जँघानी। लेटिन – Anagallis Arvenasis [धनेगेलिस अरवेनसिस]।

वर्णन—यह वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति नेपाल, कुमाऊँ, खासिया पहाड़ और काश्मीर में पैदा होती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। एक लाल फूल वाली, दूसरी नीले फूल वाली। इसका पौधा छोटा और जमीन पर फैला हुआ रहता है। इसके पत्ते डण्ठल रहित, अंडाकृति और बहुत नसों वाले होते हैं। ये हरे रंग के होते हैं और इन पर पीले धब्बे रहते हैं। इसके फूल किरमिजी रंग के होते हैं, इसकी फली मटर की फली की तरह होती है और उसमें छोटे छोटे बीज होते हैं। यह वनस्पति मक्खियों और कुत्तों के लिये जहरीली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—जोंकमारी—कड़वी, तीखी, आनुलोमिक, वेदना नाशक, व्रणरोपक, सूजन को नष्ट करने वाली, अवसादक और विषनाशक होती है। इस औषधि को बहुत छोटी मात्रा में देना चाहिये। अधिक मात्रा में देने से यह अपना जहरीला असर बताती है। जिससे आमाशय में प्रबल दाह पैदा होती है। इसका जहरीला तत्व अरीठा और शिकाकाई में पाये जाने वाले जहरीले तत्व के समान ही होता है।

उन्माद, उदासीन वृत्ति और अपस्मार के रोग में इस वस्तु को जुलाब लाने के लिये दिया जाता है। पागल कुत्ते के विष में इसको खिलाते भी हैं और काटे हुए स्थान पर इसका लेप भी करते हैं। सर्प के विष में इसको शराब के साथ में देते हैं। क्षार युक्त संधिशोथ, जलोदर, जलशोथ, यकृतशोथ, मूत्रपिण्ड के रोग और फुफ्फुस रोगों में इसको देने से विरेचन होकर सूजन की कमी होती है। सूजन की कमी करने के लिये, शरीर में घुसे हुए काँटे निकालने के लिए और दाँतों की वेदना रोकने के लिए इसका बाहरी लेप भी अच्छा काम करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह वनस्पति प्रदाह, फोड़े और यकृत तथा गुर्दे के रोगों में लाभ पहुँचाती है। नेत्र रोगों में और जलोदर में भी यह लाभदायक है। यह नेत्रों की ज्योति को सुधारती है और नेत्र कनीनिका की वेदना को दूर करती है। इसके रस को सूंघने से नाक से बदबू आना बन्द हो जाता है और नाक बहकर शिरोविरेचन हो जाता है। मस्तिष्क की पीड़ा, कुष्ट, पागल कुत्ते का विष, जलोदर, उन्माद और अपस्मार में भी यह लाभदायक है।

यूरोप में पहले यह वनस्पति मृगी, उन्माद, मूर्च्छा, हिस्टीरिया, यकृत और तिल्ली के रोग, जलोदर, पथरी, साँप और पागल कुत्ते के विष इत्यादि कई बीमारियों पर उपयोग में ली जाती थी मगर अब इससे अच्छी दूसरी औषधियों का आविष्कार हो जाने से इसका उपयोग कम हो गया है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि गठिया, जलोदर और सर्प विष पर उपयोगी है। इसमें सेपानिन और एंझिम नामक दो पदार्थ पाये जाते हैं। यह वनस्पति मछलियों के लिये जहर है।

जिम

नाम—संस्कृत – ग्रीष्म सुन्दर, फणिजा। हिन्दी—जिम, जिमशाग। बंगाल—जिमसाक। कनाड़ी—पर्पटक। तामिल—कच्छन्तरे। तेलगू—चेन्तारा, शियाक। मलयालम - कैपजिर। मराठी—झरस। सिंहाली—हिस्पला। लेटिन—Mollugo Oppoositifolia (मोल्योगो आपोझिटिफोलिया और मोल्यूगो स्पेरग्यूला)।

वर्णन—यह एक तरकारी है। जो गुजरात, दक्षिणी उत्तरी कनाड़ा, कर्नाटक, सीलोन और बरमा में पैदा होती है। यह एक फैलनेवाली वनस्पति है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। इसके पत्ते आधा इंच से १ इंच तक लम्बगोल, शल्याकृति होते हैं। इसके फूल सफेद और फलियाँ लम्बगोल होती हैं, जिनमें गहरे बादामी रंग के बीज रहते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति कड़वी, दीपन, आनुलोमिक और मासिक धर्म नियामक होती है। प्रसूति काल में इसकी तरकारी बनाकर देने से या इसको फांट बनाकर देने से प्रसूता स्त्री के शरीर की सब क्रिया सुधर जाती है। चर्म रोगों में इसकी तरकारी बनाकर देने से और इसके पंचांग को पीसकर लेप करने से लाभ होता है। इसको गरम करके अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर कान पर बांधने से कान का दर्द आराम होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और मृदु विरेचक होती है।

जीरा

नाम—संस्कृत—जीरक, दीप्यक जरना, दीर्घक, अजजिका, कंजिरा, मगधा, मितदिप्या, दीर्घकणा, मिताजाजी, शुक्लजाजी। हिन्दी—जीरा, सफेद जीरा। बंगाल—जीरे, साधाजीरे। मराठी—जीरे, पांढरेजीरे। गुजराती—जीरुं। मलयालम—जीरमम्। तेलगू—जिलकारा, जीरका। तामिल—सीरुगम। फारसी—झीरा। अरबी - कमुना। उर्दू—जीरा। यूनानी—जामुन। लेटिन—Cumminum cyminum [कमिनम सायमिनम]।

वर्णन—जीरा हिन्दुस्तान के सब प्रान्तों में मसाले की तरह शाग में खाया जाता है। इसको सब कोई जानते हैं। इसलिए इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जीरा शीतल, रुचिकारक, चरपरा, मधुर, अग्नि को दीपन करने वाला, विषनाशक, नेत्रों को हितकारी और पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है। यह किंचित् उष्ण प्रकृति है। जठराग्नि को दीप्त करता है, गर्भाशय को शुद्ध करता है, ज्वरनिवारक होता है, तथा क्षय, आफरा, वात, कुष्ठ, विष विकार, ज्वर, अरुचि, रक्त विकार, अतिसार, कृमि, पित्त और गुल्म रोग का नाश करता है।

जीर्ण ज्वर के अन्दर जीरे का व्यवहार करने का बहुत रिवाज है। इससे भूख बढती है और बल सुरक्षित रहता है। नवीन ज्वर में इसको देने से शरीर की जलन और पेशाब की वेदना कम होती है। जीरे को उबाल कर उस पानी से स्नान करने से खुजली में लाभ होता है। पेट का फूलना, उल्टी, दस्त, संग्रहणी और अजीर्ण सम्बन्धी रोगों में जीरा लाभदायक है। बालकों के लिए यह विशेष उपयोगी है। बवासीर की वेदना पूर्ण सूजन में इसको मिश्री के साथ देने से तथा पानी के साथ पीसकर अर्श पर लेप करने से शान्ति मिलती है।

सुजाक, पथरी और मूत्रावरोध मे जीरे को मिश्री के साथ बड़ी मात्रा में देते हैं। जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों में भी इसका उपयोग लाभदायक माना जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से जीरा दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह पेट के आफरे को मिटाता है, वायु को शान्त करता है, यकृत और आंतों को ताकत देता है, गुर्दे को शक्ति देकर उसमें गर्मी पैदा करता है और उसकी सूजन को मिटाता है। कफ को छाँटता है, कब्जियत को मिटाता है, काम-शक्ति को बढ़ाता है। इसका हिम रतौंधी, आँखों के जख्म, नाखूना [एक प्रकार का नेत्र रोग] और आँखों से पानी बहने को रोकता है, मसाने और गुर्दे की पथरी को तोड़ता है। सिरके के साथ इसको देने से हिचकी बन्द होती है। मेदे के कृमियों को यह नष्ट करता है, पित्त को शान्त करता है, गर्भिणी स्त्री की जी की मिचलाहट को दूर करता है। सफेद जीरे का हलवा खिलाने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है। जीरे को घी में चुपड़कर चिलम में रखकर उसका धूम्रपान करने से हिचकी मिटती है। इसका तेल बिच्छू के जहर को उतारता है। भुना हुआ जीरा दही के साथ खिलाने से अतिसार में फायदा होता है। जीरे को कचनार की छाल के रस का पुट देकर खिलाने से वात, पित्त और कफ के ज्वर शान्त होते हैं। इसको गुड़ के साथ खाने से विषमज्वर में लाभ पहुँचता है। सोंठ और जीरे को पानी के साथ पीसकर लगाने से मकड़ी का जहर उतर जाता है। इसके लेप से अण्डकोष की सूजन भी दूर हो जाती है।

चरक के मतानुसार जीरे के बीज सर्प विष को दूर करने में सहायता पहुँचाते हैं। वाग्भट्ट के मतानुसार यह बिच्छू के विष में उपयोगी है।

केस और महस्कर के मतानुसार यह सांप और बिच्छू दोनों ही के विष पर निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह अग्निवर्द्धक, पेट के आफरे को दूर करने वाला, शांतिदायक और सर्पविष में उपयोगी है। इसमें एक उड़नशील तेल पाया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

थायमल नामक पदार्थ जो विशेषकर अजवाइन से प्राप्त किया जाता है, जीरे में भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। जीरे में पाया जाने वाला मुख्य तत्व क्युमिक अल्देराइड है। इसी से थायमल प्राप्त किया जाता है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके बीजों को पीसकर उनका पट्टा जलन और शूल को दूर करने के लिए चढ़ाया जाता है।

आर० एन० खोरी के मतानुसार यह वस्तु स्वरभंग रोग को दूर करने के लिए काम में ली जाती है।

उपयोग--गर्भवती स्त्री का जी मिचलना—जीरे को नींबू के रस में भिगोकर नमक मिलाकर खटाई का जीरा बनाते हैं। यह जीरा गर्भवती स्त्री को देने से उसका जी मिचलना और होवड़ आना बन्द हो जाता है।

हिचकी—जीरे को घी में चुपड़ कर चिलम में रखकर उसका धूम्रपान करने से हिचकी मिटती है।

बिच्छू का विष—जीरे और नमक को पीसकर घी और शहद में मिलाकर थोड़ा-सा गरम करके बिच्छू के डंक पर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है।

पामा खुजली—४ तोला जीरा और २ तोले सिन्दूर को ३२ तोला कड़वे तेल में पकाकर लगाने से खुजली मिटती है।

अतिसार—दही में जीरे का चूर्ण मिलाकर खिलाने से अतिसार मिटता है।

वात पित्त के रोग—जीरे और धनिये की लुग्दी से सिद्ध किये हुए घी को सेवन करने से मन्दाग्नि और वात पित्त के रोग मिटते हैं।

विषम ज्वर—इसके चूर्ण को गुड़ में मिलाकर खिलाने से मन्दाग्नि, विषम ज्वर और वात के रोग मिटते हैं।

मकड़ी का विष—सोंठ व जीरे को पानी के साथ पीसकर लगाने से मकड़ी का विष उतरता है।

कुत्ते का विष—जीरा और काली मिर्च को घोंट छानकर पिलाने से कुत्ते का विष उतरता है।

अण्डवृद्धि—जीरा और काली मिरचों को पानी के साथ पीसकर औटाकर मालिश करने से अंडकोष की सख्ती मिटती है।

जीरास्याह

नाम—संस्कृत—कृष्ण जीरक, कृष्णजाजी, जरणा, कालजीरकः, बहुगन्धा, मेदनीका, भेदिनी, ऋद्य, कालमेषी, कश्मीरजीरक, इत्यादि। हिन्दी—स्याहजीरा, कालाजीरा। गुजराती—स्याजीरूं। पंजाब—भीर स्याह। काश्मीर—गुनियान, गनियून। बंगाल—जीरा, शियजीरा। तेलगू—शिमाइसपू, नक्कजीर। तामिल—केकूविराइ, पिल्लपू, शिरगम। लेटिन—Carum Carui [केरम केरुई]।

वर्णन—स्याह जीरा काश्मीर, हिमालय, अफगानिस्तान और ईरान में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से स्याह जीरा चरपरा, गरम, नेत्रों के लिए लाभदायक, रुचिकारक, सुगन्धित, रूखा, दीपन तथा जीर्णज्वर, कफ, सूजन, मस्तक रोग और कुष्ठ को दूर करने वाला होता है।

इसके बीज तीक्ष्ण, चरपरे, गरम, आँतों के लिए संकोचक, पर्यायिक ज्वरों को दूर करने वाले, अतिसार नाशक और पेट के आफरे को मिटाने वाले होते हैं। ये कफ की वजह से पैदा हुई सूजन को नष्ट करते हैं, सिर दर्द में लाभ पहुँचाते हैं। अतिसार, धवल रोग और उदर सम्बन्धी फोड़ों में भी यह लाभदायक है। नेत्र रोगों के लिए भी यह उत्तम वस्तु है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह प्रकृति में गरमी पैदा करता है, कफ को मिटाता है, पेट के आफरे को दूर करता है, भूख को खोलता है, मूत्रल और रजः प्रवर्तक है, पेट में कृमियों को नष्ट करता है, मुँह में चबाकर इसके रस को आँख में डालने से आँख का जमा हुआ खून पिघल जाता है। इसके काढ़े से कुल्ले करने से दाँत का दर्द दूर होता है। इसको सिरके के साथ देने से हिचकी मिटती है। इसका शरबत गर्भाशय की सूजन को दूर करता है। इसके धुएं से जुकाम और पीनस का रोग मिटता है। इसका बफारा देने से बवासीर के मस्से हलके पड़ जाते हैं।

बवासीर के मस्से गुदा के बाहर आकर सूज गये हों तो स्याहजीरे को पानी में उबालकर उस पानी से सेंक करने से अच्छा लाभ होता है। गर्भाशय की सूजन में इसके काढ़े में स्त्री को बिठाने से लाभ होता है। जीर्ण ज्वर के समान भयंकर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

रोग के अन्त में भूख बढ़ाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। प्रसूति काल में दूध बढ़ाने के लिए इसको देते हैं। पेट का फूलना, उदरशूल, शिथिलता प्रधान अजीर्ण और मरोड़ी के रोगों में यह एक अच्छी औषधि है।

यूरोप के अन्दर इसके बीज एक शान्तिदायक और मस्तिष्क को उत्तेजना देने वाले पदार्थ की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इंगलैंड में ये बच्चों को होने वाले कोष्ठ वायु और पेट सम्बन्धी गड़बड़ी को दूर करने के लिए दिये जाते हैं।

जर्मनी में इसके बीज हिस्टीरिया के आक्रमण को दूर करने के लिए और कॉलिक उदर शूल में काम में लिए जाते हैं।

जीउन्ती

नाम—संस्कृत—मत्कुणारि। पंजाब—जीउन्ती। अंग्रेजी—Bugbane बग्बेन। लेटिन—Cimicifuga felida [सिमिसि फूगा फिलिडा]।

वर्णन—यह बहु वर्षायु लोम युक्त वनस्पति भूटान से काश्मीर तक ७ हजार से १२ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है। इसका पौधा २॥ से ३ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते जोड़े से लगते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसमें डोडियां लगती हैं जिसमें बीज रहते हैं। इसकी जड़ें ही औषधि के काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—इस वनस्पति की शरीर के ऊपर कूठ और सुरंजान के समान क्रिया होती है। यह सूजन को नष्ट करती है, ज्वर में लाभदायक है। वेदनानाशक, शक्तिवर्धक, कफ निस्सारक और आमवात नाशक है। इसकी मात्रा १० से १५ रत्ती तक की है। बड़ी मात्रा में इसको देने से वमन होने लगती है, चक्कर आते हैं, वमन होता है और नाड़ी की गति कम हो जाती है। इससे बच्छनाग के समान हृदय में अशक्ति आ जाती है। छोटी मात्रा में यह कटु पौष्टिक, हृदय को बल देनेवाली और गर्भाशय का संकोचन करने वाली है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर सन्धियों की सूजन पर बांधा जाता है। नवीन आमवात में यह बहुत उपयोगी है। गृध्रसी, कमर का अकड़ जाना और कष्टप्रद मासिक धर्म में भी यह उपयोगी है।

यूरोप में इसकी जड़ मृदु विरेचक और वामक मानी जाती है। चीन और इण्डोचायना में यह ज्वर निवारक और पसीना लाने वाली मानी जाती है। सन्धिवात की पीड़ा, जलोदर, क्षय की प्रारम्भिक अवस्था और वायु नलियों के प्रदाह में इसको उपयोग में लेते हैं।

साईबेरिया में इस वनस्पति की जड़ खटमल और मच्छरों को भगाने के काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु स्नायु-मण्डल में अवसन्नता पैदा करती है। इसमें उपक्षार और सिमिर फुग-इन नामक तत्व पाया जाता है।

जीवन्ती [सोमलता]

नाम—पलायलम—जीवन्ती, जीवती। कनाड़ी—हानेड़वल्ली, सोमा, सोमवल्लि। मराठी—शानशेर। तामिल—कोड़िकलि। तेलगू—पुलतिगे, सोमलता। लेटिन—Sarcostemma Breistigma [सारकोस्टेमा ब्रिविस्टिग्मा]।

वर्णन—यह एक लता होती है जो दूसरे झाड़ों के आसरे चलती है। इसके पत्ते लम्बे गोल होते हैं। इसकी फलियां ८–१० सेण्टिमीटर तक लम्बी रहती हैं। इसके बीज लम्ब गोल होते हैं। इसकी डंडियों में कई संधियां रहती हैं। इस झाड़ में बहुत अधिक मात्रा में एक प्रकार का दूध के समान रस निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—ऐसा कहा जाता है कि यह वनस्पति आर्य लोगों की सुप्रसिद्ध सोमलता ही है। मगर सोमलता की जो पहचान और जो लक्षण वेदों में लिखे हुए हैं वे इस वनस्पति के लक्षणों से बिलकुल नहीं मिलते।

ऐसा कहा जाता है कि इस वनस्पति के गुण सोमलता के गुणों से ही मिलते-जुलते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति नशीले पदार्थ बनाने के काम में ली जाती है।

जीवन्ती

नाम—संस्कृत—जीवन्ती, जीवनी, जीवा, जीवदा, सुखकरी, रक्तांगी, प्राणदा, भद्रा, मंगल्या, जीवपृष्ठा, कांजिका, शाशिशिंविका, सुपिंगला, मधुवासा, जीववर्द्धिनी। हिन्दी—जीवती। बंगाल—जीवई, जियाति, जीवन्ती। मराठी—

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जीवन्ती। गुजराती राड़ाछड़ी, वाछंटी। करनाटक—हिरिया हिल। लेटिन—Dcsmotrichum Fimbriatum [डेस्मोट्रिकम फिम्ब्रिएटम] Dendrobium macraei [डेण्ड्रोबियम मेक्रेइ]।

वर्णन—जीवन्ती की लतायें जमीन पर फैलने वाली होती हैं और उनमें जगह जगह पर गांठें पड़ी हुई रहती हैं। इसके फूल रंग बिरंगे होते हैं। यह वनस्पति हिमालय, नीलगिरी और कोंकण में पैदा होती है। इसकी ४ जातियां होती हैं। १ जीवन्ती, २ वृहद जीवन्ती, ३ स्वर्ण जीवन्ती, और ४ तिक्त जीवंती।

गुण दोष और प्रभाव—राजनिघंटु के मतानुसार जीवन्ती मधुर और शीतल होती है। यह रक्त पित्त, श्वास, खांसी, वात, क्षय, दाह और ज्वर को नष्ट करती है। कफ और वीर्य को बढ़ाती है, यह आंतों का संकोचन करती है, कफ निस्सारक है। इसका फल मीठा और कामोद्दीपक होता है। यह पारे को बाँधने वाली है।

सुश्रुत के मतानुसार यह औषधि दूसरी औषधियों के साथ में साँप और बिच्छू के विष पर दी जाती है। कड़वी जीवन्ती के पत्तों का लेप फोड़े-फुन्सी, विस्फोटक रोग और घावों पर लाभदायक होता है।

इसके पंचांग का काढ़ा दूसरे सुगन्धित द्रव्यों के साथ त्रिदोष के अन्दर दिया जाता है। धातुपतन से पैदा हुई कमजोरी में भी इसका काढ़ा लाभदायक होता है।

क० चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक, पौष्टिक और सर्प विष पर उपकारी है।

जीवन्ती कड़वी

नाम—संस्कृत—तिक्त जीवंतिका, तिक्त भद्रा, विष मुष्टि, केश मुष्टि दोड़ी क्षुप। हिन्दी – दोड़ी। मराठी—विष-दोड़ी। गुजराती—कड़वी खरखोड़ों।

वर्णन—यह पीली जीवन्ती का एक भेद है जो कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से तिक्त जीवन्ती कड़वी, अग्निदीपक, मलस्तम्भक, ग्राही, पित्तजनक, गरम, रक्तपित्त नाशक, हलकी, कामोद्दीपक, रुचिकारक, दाह पैदा करने वाली, कफनाशक और कण्ठ रोग, वात, गुल्म, बवासीर, कुष्ठ, बिष, श्वास, प्रमेह और चूहे के विष को नष्ट करने वाली है।

इसके पत्तों का लेप फोड़े-फुन्सी, विस्फोटक रोग और घावों पर लाभदायक होता है। इसकी कोमल कोंपले वमन-कारक तथा कफ निस्सारक मानी जाती हैं। इसका पौधा सरदी और नेत्र रोगों के लिए भी बहुत उपयोगी है।

जुआर

नाम—संस्कृत—दीर्घमला इक्षुपत्रका, रक्तखुमा, व्रततांदुला, यवनाला। हिन्दी—जुआर। बंगाल—जोआर, जुआर। बम्बई—जोइंला, जोआरी, कांगरा। मध्यप्रदेश—जोआर, फाग थुथेरा। गुजराती—जुआर। लेटिन—Sorgum Vulgare [सोरगम व्हलगेर] Holeus Sorghum [होलेस सोरेगम]।

वर्णन—जुआर एक प्रसिद्ध अनाज है जो प्रायः सारे भारतवर्ष मे खाया जाता है। इसे सब कोई जानते हैं इसलिये इसके परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से जुवार शीतल, कामोद्दीपक, कब्जियत करने वाली और कठिनता से पचने वाली होती है। यह रुचि और भूख को बढ़ाती है तथा कफ, पित्त, रक्त रोग, बवासीर, व्रण और अर्बुद में लाभदायक है। इसके दाने मूत्रल और शान्तिदायक होते हैं।

अमेरिका की निग्रो जाति के लोग इसके बीजों का काढ़ा गुर्दे और मूत्र पिंडों की बीमारी में काम मे लेते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार ज्वार कामोद्दीपक होती है। इसमें ग्लुकोसाइड और धुरिन नामक तत्व पाया जाता है।

उपयोग—**आमातिसार**—ज्वार की गरम रोटी को दही में चूर कर ढक दें जब बिलकुल ठण्डी हो जावे तब खिला दें। इससे आमातिसार मिटता है।

अन्तर्दाह—ज्वार के आटे की रबड़ी रात में बनाकर रख दें। सबेरे उसमें कुछ सफेद जीरा और मट्ठा मिलाकर पीने से अन्तर्दाह मिटती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मलेरिया—मलेरिया ज्वर के ऊपर अथवा शरद ऋतु में होने वाले पित्त ज्वर पर जिसमें दस्त और उल्टियाँ भी होती हों उसमें गुगली जाति के ज्वार के सांटों को गन्ने की तरह चूसने से तुरंत शान्ति मिलती है। २-४ दिन तक इन गले हुए सांटों को बराबर चूसने से एकांतरा, तिजारी, चौथिया वगैरह मलेरिया ज्वर के सभी लक्षण शांत हो जाते हैं।

शीत पित्त—अगर किसी के शरीर में शीत पित्त [पित्ती या बदल] उछल जाय तो ज्वार के सांठे के रस में गलजीभी का रस मिलाकर १ तोले की मात्रा में पीने से और शरीर पर मालिश करने से लाभ होता है।

धतूरे का विष—ज्वार के सांटे का रस, शक्कर और दूध तीनों को समान भाग मिलाकर उसमें तीन-तीन तोला रस घण्टे-घण्टे भर के अन्तर से पिलाने से धतूरे का विष शान्त होता है।

सर्प, बिच्छू का विष—चासटिया ज्वार की जड़ और यदि वह न मिले तो दूसरी किसी भी ज्वार की जड़ २॥ तोला लेकर उसे गो-मूत्र में पीस कर उसको नाक, कान तथा आंखों में टपकाने से और विष अधिक चढ़ गया हो तो पेट में पिलाने से लाभ होता है। इस दवा को पिलाकर सर्प के काटे हुए मनुष्य के सिर पर ५० घड़े पानी डालना चाहिये।

नेत्र रोग—आंखों में होने वाले मोतियाबिन्द, झांक, खील इत्यादि रोगों पर ज्वार के अन्दर होने वाले कायमा के काले आटे को शहद में मिलाकर अंजन करने से बड़ा लाभ होता है।

संधिवात और पक्षाघात—ज्वार के दानों को पानी में भाप कर उनको पीसकर उनका रस निकाल लेना चाहिये। उस रस को समान भाग अरण्डी के तेल में मिलाकर गरम करके जहां वात व्याधि हो वहां लेप करना चाहिये और ऊपर से पुरानी रूई बांधकर सेंक कर देना चाहिये। १ सप्ताह तक इस प्रयोग को करने से अच्छा लाभ होता है।

कारबंकल—कारबंकल, भगन्दर, दुष्टकैंसर और अच्छे न होने वाले फोड़ों पर ज्वार के भुट्टे का हरा, ताजा और दूधिया रस साफ करके लगाने से और उसकी बत्ती बनाकर फोड़ों में भर देने से घाव जल्दी भर जाता है।

गर्मी, प्रदर और प्रमेह—जुआर के दो सांठे का रस प्रतिदिन प्रातःकाल चूसने से पुराना प्रदर और प्रमेह दूर होता है। यह रस गुर्दे और मूत्राशय को साफ करता है। इसके सांठे के रस में ऐसा कुदरती क्षार रहता है जिसके सेवन से भूख बहुत अच्छी लगती है। इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र और गुर्दे के सब रोग आराम होते हैं।

पांडु और कामला रोग—जुआर का भुट्टा आग पर सेंककर खाने से पाण्डु और कामला रोग में लाभ होता है। इसी प्रकार दूसरे उदर रोगों में, लीवर की सूजन में, तिल्ली की वृद्धि में और आंतों की बीमारियों में यह एक उत्तम पथ्य है।

रक्तविकार—ज्वार के हरे पत्तों को पत्थर पर पीसकर शरीर पर मसलने से रक्त विकार के कई दोष दूर होते हैं।

आधा शीशी और मस्तक रोग—मस्तक के जिस हिस्से में दर्द होता हो नाक के उस हिस्से में ज्वार के पत्तों और सोंठ का रस टपकाने से तुरन्त लाभ होता है।

कर्ण रोग—कान से अगर पीव बहता हो तो ज्वार के रस को गरम करके कान में टपकाना चाहिये।

घाव—चाकू या हथियार का कहीं घाव लग गया हो तो उसमें ज्वार के सांठे पर जो सफेद रंग का अस्तर होता है उस अस्तर को पीस कर घाव में भर देना चाहिये।

खुजली—खसरे और खुजली पर ज्वार के हरे या सूखे सांठों को लेकर उनको पीस कर उसमें बकरी की मेंगनियों की आधी जली हुई राख और अरण्डी का तेल समान भाग मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

फोड़े को पकाना—जो फोड़ा पकता और फूटता न हो उस पर जुवार के दानों को भाप कर उनमें धतूरे का रस मिलाकर पुल्टिस लगाने से फोड़ा पककर फूट जाता है।

मुँहासे और कीलें—जुवार को कच्ची पीसकर उसमें थोड़ा चूना और कत्था मिलाकर लगाने से मुँह की कीलें और मुँहासे मिटते हैं।

दन्त रोग—जुवार के बीजों को जलाकर उनकी राख से दाँतों को मलने से दाँतों का हिलना, दाँतों का कष्ट और कष्टदायक पीड़िकाओं की सूजन मिट जाती है।

बद्ध कोष्ठ—जुवार की थूली को दूध में मिलाकर लगातार १ माह तक खाने से पुरानी कब्जियत दूर हो जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जुल पापड़ा

नाम—संस्कृत—पर्पटका। बंगाल—जुल पापड़ा। बम्बई—फारस, खरस। मराठी—खरस। करनाटकी—परपाटक। तेलगू—परपाटकमु। लेटिन—Mellugo Stricta मोल्यूगो स्ट्रीक्टा।

वर्णन—यह छोटी जाति की वनस्पति हिन्दुस्तान में सब दूर पैदा होती है। इसका पौधा बालिश्त भर ऊंचा होता है। इसके बहुत-सी डालियां रहती हैं। इसके पत्ते १·३ से ३·८ सेंटीमीटर तक लम्बे और ३ से लेकर ६ मिलीमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफ़ेद, फली लम्ब गोल और बीज चपटे और गहरे बादामी रंग के रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति अग्निवर्धक, मृदु विरेचक, कृमिनाशक और ऋतुस्राव नियामक होती है। मासिक धर्म की अनियमितता में इसके पत्तों का शीतनिर्यास बनाकर देने से रज की मात्रा बढ़ जाती है।

प्रसूति काल में प्रसूता स्त्री को इसकी तरकारी बनाकर देने से दस्त साफ होता है। भूख बढ़ती है और गर्भाशय शुद्ध हो जाता है। विषम ज्वर के अन्दर भी इसकी तरकारी बनाकर दी जाती है।

जुनबेदस्तर

नाम—यूनानी—जुन्दबेदस्तर। लेटिन—Cahtoreum (केस्टोरियम)

वर्णन—यूनानी हकीमों के मत में एक समुद्री जानवर जिसे ऊदबिलाव कहते हैं और जो कुत्ते की तरह होता है उसके अण्डकोष को जुनबेदस्तर कहते हैं। यह जानवर अधिकतर पानी में रहता है और कभी-कभी मैदान में निकल कर धूप में सो जाता है। तब शिकारी लोग इसे मारकर उसके अण्डकोष को निकाल लेते हैं। कुछ लोगों का यह कहना है कि इसके अण्डकोष निकालने के लिये इस जानवर को मारने की जरूरत नहीं होती। शिकारी लोग तरकीब से इसके अण्डकोष को निकालकर इसे जिन्दा ही छोड़ देते हैं।

इसके अण्डकोष के अन्दर एक प्रकार का खून की तरह जमा हुआ पदार्थ रहता है। जो शहद की तरह होता है उसमें चर्बी के समान गन्ध आती है। इसके अण्डकोष ३ इंच लम्बे अंजीर के आकार के, मजबूत, वजनदार और खाकी रंग के होते हैं। इसका बहुत बड़ा हिस्सा ईथर के अन्दर घुल जाता है।

उत्तम जुनबदस्तर वह होता है जो पीले या लाल रङ्ग का हो, जल्दी टूट जाता हो, खुशबूदार और वजनदार हो काले रंग का जुनबदस्तर जहरीला और घातक होता है। यह औषधि १५ वर्ष तक खराब नहीं होती मगर उत्तम वह मानी जाती है जो ३ साल से ज्यादा पुरानी न हो। इस औषधि में भी केशर और कस्तूरी की तरह नकली चीजें मिलाई जाती हैं। इसलिये इसे लेते समय भी असलियत का ध्यान रखना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—यूनानी मतानुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होता है। गरम और खुश्क होने पर भी इसमें मुलायमियत पैदा करने की ताकत बहुत अधिक है। यहां तक कि इस काम में कोई दवा इसकी बराबरी नहीं कर सकती।

इस औषधि को खाने से जितना फायदा हासिल होता है उतना ही फायदा इसको पुराने जैतून के तेल के साथ मालिश करने से भी हासिल हो जाता है लेकिन यह खयाल रखना चाहिये कि बुखार की हालत में इसका प्रयोग न किया जावे।

सर्दी और वायु से पैदा हुई मिरगी, आधा शीशी वगैरह दिमागी बीमारियों में इसका धुआं नाक में पहुँचाने से फायदा होता है।

सर्दी की वजह से पैदा हुए माली खोलिया और लकवे में भी इसको पिलाने और नाक में टपकाने से अच्छा फायदा होता है। कम्पन, ऐंठन, धनुर्वात और लकवे में इसको ३ माशे की मात्रा में प्रतिदिन सवेरे ७ दिन तक खिलाने से बहुत लाभ होता है। सिरके के साथ इसको मिलाकर नाक में टपकाने से स्मरण-शक्ति बढ़ती है। इसको रोगन गुल में मिलाकर मस्तक पर लगाने से सर्दी और वायु का सिर दर्द मिट जाता है। इसको नाक में टपकाने से छींक आती है और दिमाग में जमी हुई वायु बिखर कर दिमाग हलका हो जाता है। इसको किसी तेल में मिलाकर कान में टपकाने से सर्दी से पैदा हुआ कान का दर्द मिट जाता है, बहरापन जाता रहता है और कान की वायु बिखर जाती है। इसको चिलम में भरकर तम्बाकू की तरह इसका धुआं पीने से सर्दी से पैदा हुई दिल की धड़कन और सर्दी की बीमारियां दूर हो जाती हैं। इसको सिरके और पानी के साथ घोंटकर पिलाने से कफ और वायु से पैदा हुई हिचकी बन्द हो जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

जुलाब की औषधियों के साथ इसको मिलाकर देने से कई फायदे होते हैं। पहला—जुलाबी दवाइयों की उग्रता कम हो जाती है। दूसरा—शरीर के अन्दर जमी हुई गन्दगी को बाहर निकालने में मदद मिलती है। तीसरे—कफ फिसलकर दस्त की राह निकल जाता है। इसके साथ ही एनिमा देने से वायु और कफ से पैदा हुए कॉलिक उदर शूल में भी बहुत लाभ होता है।

अगर किसी स्त्री के पेट में मरा हुआ बच्चा हो या उसका मासिक धर्म रुका हुआ हो तो जुनबेदस्तर को बड़ी मात्रा में खिलाने से सब खराबियां ताकत के साथ बाहर निकल जाती हैं। इसको ऊन में तर करके गर्भाशय में रखने से गर्भाशय की सरदी दूर हो जाती है और वायु बिखर जाती है। इससे गर्भ गिरने का भी धोखा रहता है। सरदी की वजह से अगर किसी को ग्रन्थिवात [Gout] हो तो इसको काली मिरच और शहद के साथ देने से लाभ होता है। इसमें सब प्रकार के स्थावर और जंगम विषों को दूर करने की शक्ति भी है।

आधुनिक वैज्ञानिक लोग इस औषधि को इतनी प्रभावशाली नहीं समझते हैं।

मुजिर—इस औषधि को अधिक मात्रा में लेने से यह अपना विषैला प्रभाव शरीर पर दिखाती है। ३ माशे से अधिक मात्रा में यह जहरीली हो जाती है। इससे मुंह सूख जाता है। जबान पर दाने निकल आते हैं, छाती में दर्द होता है। गले में सूजन आ जाती है और रोगी बेचैन हो जाता है।

दर्पनाशक—इसके रस विषैले प्रभाव को नष्ट करने के लिए पोदीना और सपिश्ता को शहद के साथ देना चाहिये। बिजोरे नींबू का रस, सिरका और गधी का दूध भी इसके विष को नष्ट करता है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा ६ रत्ती से १ माशे तक की है। कई हकीम ३ माशा से ७ माशे तक की मात्रा तजवीज करते हैं मगर इसकी इतनी मात्रा खतरनाक होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वस्तु ज्ञानतन्तुओं को उत्तेजना देती है, कृमिनाशक है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल, एक प्रकार की चिड़चिड़ी कड़वी राल और एक प्रकार का चर्बी के समान पदार्थ पाया जाता है।

जूट

नाम—संस्कृत—कालशाक, चंचू, क्षेत्रसम्भव, कोष, सुशाक। हिन्दी—नरचा, जूट, पाट। बंगाल—पाट, कोष्ट, कुष्टा। गुजराती—छूंछ, बोरछूंछ। मराठी—चोंचे। बम्बई—सण, नाड़ी—चुंचल, अंग्रेजी—जूटप्लैंट Jute plant-लेटिन—Corchores Capsularis [कोरकोरस केपस्यूलेरिस]।

वर्णन—संसार के औद्योगिक क्षेत्र में रेशेदार पदार्थों के अन्दर रूई के बाद जूट का स्थान ही उत्तम माना जाता है। इसका पौधा ३ से ४ फीट तक लम्बा सन के पौधे की तरह होता है। इसके फूल पीले होते हैं और इसके ऊपर फलियां लगती हैं।

चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से इस वनस्पति का जितना महत्व है, उससे बहुत अधिक परिमाण में इसका औद्योगिक महत्व है। अंग्रेजी राज्य का सूत्रपात होने के साथ-साथ इस वस्तु की उपयोगिता का महत्व संसार को मालूम हुआ और बंगाल में इसकी खेती दिन प्रतिदिन उन्नति करने लगी। सन् १८२८ में जहां सिर्फ ३६४ हंडरवेट माल भारतवर्ष से विदेश को गया था, वहां ५० वर्षों बाद सन् १८७८ में ५३६२२६७ हंडरवेट माल भारतवर्ष से विदेश गया और जहां सन १८५५ में बंगाल के अन्दर एक जूट मिल थी, वहाँ सन् १९२८ में बंगाल के अन्दर जूट मिलों की संख्या ८४ हो गई। सन् १८८५ में बंगाल की मिलों में ६८४१ करघे काम करते थे मगर सन् १९२७ में इन करघों की संख्या ५०३५४ थीं। इन मिलों में ४८०० टन माल प्रतिदिन तैयार होता है। जिसकी लम्बाई ८०० मील से अधिक लम्बी होती है। इन सब बातों से इसके व्यापारिक महत्व का अन्दाज किया जा सकता है।

जूट की जातियाँ—जूट की साधारणतया दो जातियां होती हैं। १ जंगली और दूसरी शहरी। शहरी जूट की करीब आठ नौ जातियां होती हैं। एक सबसे बड़ी जाति होती है जिसको लेटिन में कोरकोरस ओलिटोरियस [Corchorus Olitorius] कहते हैं। दूसरी जाति को कोरकोरस केपस्यूलेरिस.[C. Capsularis] कहते हैं। इसी प्रकार थोड़े-थोड़े भेद से इसकी ५-६ जातियां होती हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से चंचु, मधुर, कसैला, मलशोधक तथा गुल्म, जदर रोग, विबन्ध, बवासीर और संग्रहणी रोग दूर करता है।

बड़ा चंचू चरपरा, गरम कसेला, मलरोधक, रसायन और गुल्म, शूल, उदर रोग, बवासीर और विष का नाश करता है।

चंचूशाक शीतल, सारक, रुचिकारक, स्वादिष्ट, त्रिदोषनाशक, धातुवर्धक, पौष्टिक, बलकारक और बुद्धिवर्धक है।

चंचु के बीज—चरपरे, गरम तथा गुल्म शूल, विष और त्वचा के दोष को दूर करते हैं।

बहुत से लोग जूट और सन के रासायनिक तत्वों को एक समान ही समझते हैं, मगर वास्तव में इन दोनों के रासायनिक तत्वों में बहुत भेद है और इनका नैसर्गिक वर्ग भी जुदा-जुदा है।

डाक्टर कनाइलाल डे० इसके चिकित्सा सम्बन्धी महत्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

औषधि सम्बन्धी उपयोगिता—जूट की पतियाँ हिन्दू घराने में एक सस्ती घरेलू औषधि की तरह उपयोग में लाई जाती हैं। ऐसा विशेषत: उन जिलों [प्रान्तों] में होता है जहाँ जूट की खेती होती है इसकी सुखाई गई पत्तियाँ भी बङ्गाल के बाजारों में उपलब्ध होती हैं। धनियाँ और सरसों के साथ इसका मिश्रण करने से एक साधारण कड़वी औषधि तैयार होती है। जिसका व्यवहार चिरायते की तरह पेट की दवा तथा पौष्टिक औषधि के रूप में किया जाता है परन्तु यह दवा उस औषधि (चिरायते) से यह विशेषता रखती है कि यह कम कड़वी होती है तथा उतनी गरम भी नहीं होतो है।

इसका [जूट का] बारीकी से साफ किया हुआ रेशा उन डाक्टरी पट्टियों के बाँधने में भी आधारत: व्यवहृत होता है जो घाव को सड़ने से सुरक्षित रखती हैं। यह ऊँचे दर्जे का शोषक पदार्थ है तथा प्रशंसनीय रूप से इस कार्य के लिए उपयुक्त है।

जूफा

नाम—हिन्दी—यूनानी—जूफा, जूफाए खुश्क, जूफाएविस। फारसी—जूफाए खुश्क। उर्दू—जूफा। लेटिन—Hyssopus Officinalis [हायसोपस आफिसिनेलिस]।

वर्णन—यह एक जाति की घास है, जो काश्मीर से कुमाऊँ तक ८ हजार फीट से ११ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होता है। इसके पौधे की ऊँचाई २ हाथ के करीब होती है। इसके पत्ते खुशबूदार और कड़वे होते हैं। इसके कोई-कोई पत्ते मेंहदी के पत्ते सरीखे होते हैं। इसकी प्रत्येक डाली की गठान पर, पीला फूल लगता है।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति कड़वी, कृमि नाशक, कफनिस्सारक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्रल और मृदुविरेचक होती है। यह प्रदाह, पक्षाघात, वायुनलियों का जीर्ण प्रदाह, फेफड़ों का प्रदाह, दमा, मज्जाओं की तकलीफ और सीना तथा यकृत के रोगों में लाभदायक है।

यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। यह कफ को मुलायम करके दस्त की राह निकाल देती है, सूजन और जमे हुए खून को बिखेरती है, पेट के कृमियों को नष्ट करती है। फालिज, पुरानी खाँसी, फेफड़े की सूजन, छाती, पसली और मेदे का दर्द, कालिक उदरशूल, नजला, सांस की रुकावट तथा यकृत और जाँघों के दर्द में यह लाभदायक है। कफ की वजह से पैदा हुए दमा और खांसी को यह दूर करता है। जलोदर की सूजन में लाभ पहुँचाती है। यकृत के सुद्दे, आंतों के जखम, पेचिस और गर्भाशय, गुर्दे तथा मसाने की सूजन में लाभदायक है।

इसके काढ़े को शरीर पर मालिश करने से त्वचा के दाग दूर होते हैं। अंजीर के साथ इसका काढ़ा देने से तिल्ली की सूजन और डिफ्थीरिया में फायदा होता है। इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से पेट में कृमि पैदा नहीं होते।

इसका शीत निर्यात खाँसी और दमे में लाभ पहुँचाता है। दाँतों के दर्द और गर्भाशय के रोगों में भी यह लाभदायक है। इसके पत्ते उत्तेजक, अग्निबर्द्धक, ऋतुस्राव नियामक और पेट के आफरे को दूर करनेवाले माने जाते हैं। इसका पुल्टिस बनाकर आँखों पर बाँधने से नजले का पानी आना रुक जाता है। इसके पत्तों के रस का शर्बत गोल कृमियों को नष्ट करने के काम में लिया जाता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कोमान के मतानुसार इस वनस्पति के फूलों का काढ़ा दमा और पुरानी खाँसी के बीमारों को दिया गया और इससे काफी लाभ हुआ। फारस की यह वनस्पति इन रोगों में लाभदायक सिद्ध हुई है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते उत्तेजक, अग्निवर्द्धक, कफ निस्सारक, ज्वर निवारक और ऋतुस्राव नियामक होते हैं। इनमें ग्लुकोसाइड और उड़नशील तेल रहता है।

मात्रा—खजाइनुल अदविया में इसकी मात्रा १०॥ माशा की लिखी है। मगर डाक्टर देसाई ने इसकी मात्रा १० रत्ती से २० रत्ती तक बतलाई है।

जूही

नाम—संस्कृत—यूथिका, गणिका, अम्बष्ठा, बासंती, बालपुष्पी, मागधी, बालपुष्पिका, इत्यादि। हिन्दी—जूही, जाई। बंगाल—जूई, स्वर्ण जूई। मराठी—जाई, श्वेतजुई। गुजराती—जुई। पंजाब—जुही। तेलगू—नंदी वट्ट, जुई, पुष्पालु। लेटिन—Jasminum Aurilculatum [जेसमिनम एरिक्यूलेटम]।

वर्णन—जूही की लता वन, उपवन और पुष्पवाटिकाओं में होती है। इसके फूल सफेद रंग के छोटे-छोटे अत्यन्त सुन्दर और अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। इसकी सफेद और पीली के भेद से दो जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार की जूही शीतल, कड़वी, पचने में चरपरी, हलकी, मधुर, कसेली, हृदय को हितकारी, पित्तनाशक, कफ और वात कारक तथा चर्मरोग, मुखरोग, दन्त रोग, नेत्ररोग और विष को नष्ट करने वाली होती है। इसके गुण, धर्म चमेली से मिलते-जुलते होते हैं।

मुंह के छालों में जूही के पत्तों को चबाने से फायदा होता है। अथवा जुही के पत्तों, दारुहल्दी और त्रिफला का काढ़ा बनाकर उससे कुल्ले करने से भी मुखपाक रोगों में फायदा होता है। कर्णशूल और कान के पकने पर इसके स्वरस में सिद्ध किये तिल्ली के तेल को कान में डालने से बड़ा लाभ होता है। पैरों में फटी हुई बिवाई पर इसके पत्तों को पीसकर बाँधना चाहिये। यह वनस्पति अपना असर बहुत जल्दी बतलाती है।

पीली जुही की जड़ को पीसकर दाद पर लेप करने से दाद मिट जाता है। इसकी छाल में छेद करने से जो दूध निकलता है उसको पुराने नासूर, बिगड़ी हुई हड्डी या खराब जख्मों के किनारों पर लगाना चाहिए। इसके फूलों को पीसकर योनि पर लगाने से योनि का ढीलापन मिटकर वह तंग हो जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और तर है। इसका रस जख्मों पर लगाने से फायदा होता है। इसका लेप करने से आधा शीशी, मालिखोलिया और पागलपन में फायदा होता है। इस वनस्पति का नीचे लिखा प्रयोग रतौंधी और आँखों की बीमारी के लिये बहुत मुफीद है :—जूही के फूल ५०, भांगरे के पत्ते ५०, सहँजना के पत्ते ३०, काली मिरच १६, लींडी पीपल ३। इन सब चीजों को बारीक पीसकर इनकी बत्ती बना लें और उसको सुखा लें। जब जरूरत हो तब इस बत्ती को पानी में या कांजी में घिसकर आँख में लगा लें। इससे आँख का सब पानी निकल जाता है और आँखें साफ हो जाती हैं।

झड़बेर

नाम—संस्कृत—भूबदरी, सूक्ष्म बदरी, बलि बदरी, अजाप्रिया, सूक्ष्म फला इत्यादि। हिन्दी—झड़बेर, झड़बेरी, जालीबोर। गुजराती—चणियांबोर। मराठी—भुइबोर। बंगाल—मेटोकुल, कुलगाछ। राजपुताना—बोर, जालीबोर। बुन्देलखण्ड—कांटाबेर। पोरबन्दर—पलेटन। पंजाब—बेर, बिरोता, झारबेरी। फारसी—शबारका, कुनार दश्ती। अरबी—झिरियाब। लेटिन—Zizyphus Nummularia [झिझफस नुमुलेरिया]।

वर्णन—झड़बेरी के झाड़ पंजाब, सिन्ध, गुजरात, दक्षिण, राजपुताना, मालवा और प्रायः सारे भारतवर्ष में बहुतायत से पैदा होते हैं। इसके पौधे ६ से लेकर १० फुट तक ऊँचे होते हैं। ये पौधे झाड़ी की तरह होते हैं। इसका फल गोल कच्ची हालत में हरा और पकने पर लाल और चमकदार हो जाता है। इसकी गुठली बहुत कठोर होती है और एक-एक गुठली में २ मगज होते हैं। इसके कांटे बहुत तीखे और तेज होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मतानुसार इसका फल मीठा, तूरा, कफनाशक, अग्निवर्धक, पाचक, रुचिकारक और रक्तपित्त को कुपित करनेवाला है। इसकी गुठली कसेली, मीठी, कामोद्दीपक, वीर्यवर्धक और खांसी, श्वास, तृषा, वात, वमन, दाह और पित्त को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके पत्ते, फोड़े फुन्सी और खुजली में लाभ पहुँचाते हैं। इसका धुआँ जुकाम और नाक के बहने में उपयोगी है। जोड़ों के दर्द में इसके काढ़े से स्नान करने से लाभ होता है। मुंह के छालों और मसूड़ों से खून बहने पर इसके काढ़े से कुल्ले करते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शीतल और संकोचक होता है। पित्त की तकलीफों में यह उपयोगी माना जाता है।

झाऊ

नाम—संस्कृत—झाउका, बहुग्रंथिका, पिचल, अफलः। हिन्दी—झाऊ। गुजराती—झाऊ। मराठी—झाऊ, बड़ी-मुई। बंगाल—झाऊ गाछ। पंजाब—झाऊ, कोआ, लई, पिलची। तामिल—अतलरा, अत्तुचौकू। तेलगू—इरुसारू। फारसी—गझ, गझशाकर। अरबी—तरफा। लेटिन—Tamarix Gallica [टेमेरिक्स गेलिका]।

वर्णन—यह एक बड़ा और झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। ठण्डे और समशीतोष्ण कटिबन्ध में और उत्तरी हिन्दुस्तान में गंगा और यमुना नदी के किनारे पर तथा उत्तरी गुजरात में यह बहुत पैदा होता है। इस वृक्ष का दिखाव साधारणतया सरु के वृक्ष की तरह होता है। इसमें पतली-पतली अनेकों शाखाएँ निकली हुई होती हैं। इसकी शाखाएँ बहुत नीचे झुकी हुई और मुलायम होने की वजह से जरा सी हवा से ही हिलती रहती हैं। इसकी नरम-नरम डालियों के ऊपर बहुत छोटे-छोटे बारीक पत्ते आते हैं। उन पत्तों के ऊपर सूक्ष्म, गुलाबी, हलके बैंगनी रंग के फूलों की कलंगियाँ आती हैं। ये बहुत ही सुन्दर दिखलाई देती हैं। इसके फल तीन धार वाले, लाल रंग के चमकदार, नीचे से चौड़े ऊपर से तीखे, तीन पड़ वाले होते हैं। इसके बीज भूरे रंग के होते हैं।

ईरान और अफगानिस्तान में यह वृक्ष बहुत पैदा होता है। वहाँ पर इस झाड़ के ऊपर एक जाति की मक्खी बैठकर अपना घर बनाती है। इस घर को ही लोग फल समझते हैं। यह घर तिकोना गांठदार और पीला होता है। ईरान में इस झाड़ में से एक प्रकार की शक्कर भी निकाली जाती है। यह शक्कर बम्बई में गझवीन और ईरान में गोझो के नाम से बिकती है। ताजी हालत में यह सफेद और रवेदार होती है मगर यहाँ की हवा में यह पतली पड़ जाती है। बम्बई के बाजार में गझंझवीन शहद के समान गाढ़ा और पीले रंग का मिलता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से झाऊ की छाल ग्राही, स्तम्भक और कड़वी होती है। इसका फल संकोचक होता है। इसकी शक्कर अथवा गझंझवीन आनुलोमिक और कफघ्न होती है। इससे दस्त पतला होकर आसानी से निकल जाता है और आँतों को किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती। इसके पंचांग की राख मूत्रल और पंचांग का क्वाथ ग्राही और शीतल होता है। इसमें कई प्रकार के कषाय अम्ल पाये जाते हैं। माजूफल में जितने कषाय अम्ल रहते हैं, वे इसमें पाये जाते हैं।

इसकी एक लाल जाति होती है। यह ग्राही, स्तम्भक और रक्तस्राव रोधक होती है। इसकी राख मूत्रल होती है। इसके गुणधर्म माजूफल से मिलते-जुलते होते हैं।

बच्चों की कब्जियत को दूर करने के लिये गझंझवीन दिया जाता है। इसका फल माजूफल के बदले में भी काम में लिया जाता है। अतिसार, आँव, अत्यार्त्तव तथा गले और छाती से होनेवाले रक्तस्राव में इसको देते हैं। इसकी फाँट दुष्ट व्रण और बदगाँठ में बहुत लाभ देती है।

काठियावाड़ में इसके पंचांग से तैयार किया हुआ घनक्वाथ झाव के नाम से बिकता है। यह काले रङ्ग का होता है। सूखी खाँसी और गले की शिथिलता में इसको चटाया जाता है।

झाऊ के चूर्ण की मात्रा १५ से ३० रत्ती तक और गझंजबीन की मात्रा १ माशे तक की होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फल और पत्ते कड़वे, तूरे और संकोचक होते हैं। पेचिश, पुराने अतिसार, तिल्ली के रोग और धवल रोग में यह उपयोगी है। मसूड़ों की सूजन में इसके काढ़े से कुल्ले करने से लाभ होता है। इसके

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पत्तों को उबालकर उनका बफारा लेने से बवासीर, व्रण और घावों में लाभ होता है। इसका फल संकोचक होने की वजह से अतिसार और पेचिश में दिया जाता है। इस वृक्ष का रस मृदु विरेचक और कफ निस्सारक माना गया है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति मृदुविरेचक और कफ निस्सारक मानी जाती है। यह माजूफल के प्रतिनिधि स्वरूप काम में ली जाती है।

उपयोग—सांघातिक फोड़ा—बिगड़े हुए फोड़ों और उपदंश सम्बन्धी गठानों पर इसके गाढ़े किये हुये क्वाथ का लेप करने से लाभ होता है।

तिल्ली—इसके पत्तों के चूर्ण को ३॥ माशे की मात्रा में समान भाग मिश्री मिलाकर लेने से तिल्ली कट जाती है।

बालों की सफेदी—इसकी हरी जड़ को जौ कूट करके उसमें समान भाग तिल का तेल और दुगुना जल डाल कर आग पर औटाना चाहिये। जब पानी जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उसको छान लेना चाहिये। इस तेल को सिर में लगाने से सफेद बाल काले हो जाते हैं।

जुकाम—इसके पत्तों का बफारा लेने से जुकाम मिटता है।

कुचों का ढीलापन—झाऊ की छाल और अनार की छाल को महीन पीसकर दूध में मिलाकर दिन में २ बार स्तनों पर लेप करने से ढलके हुए स्तन कठोर हो जाते हैं।

झामरवेल

नाम—कच्छी—झामरवेल, टोपरावेल। गुजराती—भीतगरियो। लेटिन—Ipomea Tridentata [इपोमिया ट्राइडेण्टेटा]।

वर्णन—इस वनस्पति की बेलें बहुत पतली और छोटी होती हैं। ये बरसात में उगती हैं। इनमें छोटी-छोटी पतली शाखाएँ बहुत-सी निकलती हैं। इसके पत्ते बहुत छोटे और फूल पीले रंग के होते हैं। इसका फल गोल, चिकना, चमकदार और ४ बीज वाला होता है। यह वनस्पति पुरानी दीवालों पर और पहाड़ों पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति ग्राही और रक्त शोधक होती है। इसकी लुग्दी से सिद्ध किया हुआ तेल चर्म रोगों पर लगाने के काम में लिया जाता है।

कच्छ के अन्दर इसका रस झामरा नामक रोग पर लगाया जाता है। खूनी दस्तों के ऊपर इसका ताजा रस अथवा इसका सूखा हुआ चूर्ण ३ माशे की मात्रा में देने से बड़ा लाभ होता है।

इस वनस्पति में रेचक और ग्राही ये दोनों परस्पर विरोधी गुण एक साथ पाये जाते हैं। यह जहाँ खूनी दस्तों को रोकने में सफल होती है वहाँ कब्जियत को मिटाने में भी इसका उपयोग किया जाता है।

झिंझेरी (कचनार भेद)

नाम—संस्कृत—अश्मन्तकः, इन्द्रकः, कुद्दालः, श्वेतकश्चन: बनराजा, यमालपत्रका। हिन्दी—झिन्झेरी, झिझोरा, कचनार भेद, पापड़ी। गुजराती—आसुन्द्रो। काठियावाड़—आसोंद्रो। मराठी—आपटा, बनराजा। सहारनपुर—झिझोरा, पापड़ी। पंजाब—कोसुन्द्रो। अजमेर—झिझा। तामिल—अरई, अराम, अरिका। तेलगू—मन्जियारी। लेटिन—Bauhinia Racemosa [बोहिनिया रेसीमोसा]

वर्णन—यह कचनार की ही एक जाति होती है। इसका झाड़ सीधा होता है। इसकी शाखाओं पर रुएँ होते हैं। इसकी छाल सफेद होती है। इसके पत्ते कचनार के पत्तों की तरह जुड़े रहते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद रंग के होते हैं। इसकी फलियों का स्वाद कसैला और मीठा होता है। प्रत्येक फली में १२ से लगाकर २० तक बीज निकलते हैं। ये बीज दबे हुए चपटे और काले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति कृमि रोग, यकृत रोग, प्रमेह, दाह, तृषा, मूर्च्छा, विषम ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, भूत बाधा, शर्कराश्मरी, कुष्ठ, गुदाभ्रंश, गण्डमाला, व्रण, कण्ठ रोग, रक्त विकार, विष, अतिसार और कफ पित्त के रोगों को दूर करती है। इसकी छाल और इसके पत्ते मीठे और कसैले होते हैं। ये ज्वर नाशक, संकोचक, कृमिनाशक और पित्त को नष्ट करने वाले होते हैं। मूत्र सम्बन्धी रोग, भगन्दर, क्षय जनित ग्रन्थियाँ, चर्म रोग, गले का दर्द, अर्बुद,

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यकृत के रोग और रक्त रोगों में यह लाभदायक है। इसका फल कसैला, मीठा, ज्वर और प्यास को बुझाने वाला और संकोचक होता है। इसके तन्तु घावों पर टाँके लगाने के काम में आते हैं।

इसके पत्तों का रस काली मिर्च और प्याज के साथ अतिसार और आँव में देते हैं। इसकी छाल का काढ़ा अतिसार में बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके कोमल पत्तों को पीसकर लेप करने से ज्वर के साथ होनेवाला सिर दर्द मिट जाता है। इसके कोमल पत्ते का रस दूध के साथ देने से पेशाब के अन्दर होने वाली जलन मिट जाती है। इसके पत्तों का रस बायगोले पर भी लाभ पहुँचाता है। यकृत की सूजन में इसकी जड़ का काढ़ा दिया जाता है। इसकी छाल को कुचल कर सूजन व जख्म पर बाँधने से जख्म जल्दी भर जाता है। इसकी छाल का काढ़ा बनाकर उससे कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं और दाँत मजबूत होते हैं। इसके बीजों को सिरके में पीसकर जहरीले जानवरों के डंक पर लगाने से शान्ति मिलती है।

इसके पत्तों का काढ़ा सिर दर्द और मलेरिया ज्वर को मिटाने के लिये काम में लिया जाता है।

झिंति

नाम—संस्कृत – झिंति, कुट्वक, रक्तपुष्पा, शोन झिंतका, सुमगा। हिंदी—झिंती। बंगाल—झण्टी, सदाजाति। पंजाब—तम्रेलू। सीमा प्रदेश—गोटपजिवा, फनवंसा। आसाम—झिनली। तामिल—नीलचेमुली, उद्मुली। तेलगू—एत्त पुलवेद गौरंता, कोड़ी कन्नू, नेरुगोरन्ता। लेटिन—Barleria Cristata [बारलेरिया क्रिस्टेटा]

वर्णन—यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। इसका तना रुएँदार होता है। इसके पत्ते लम्ब गोल और तीखी नोक वाले होते हैं। इसकी फली में चार-चार बीज निकलते हैं। ये बीज दबे हुए और नरम रुएं वाले होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से यह वनस्पति कड़वी, गरम और प्रदाह, ज्वर, खाँसी और रक्त रोगों में उपयोगी है। सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ से सर्प और बिच्छू के विष पर लाभ होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार सर्प बिच्छू के विष पर यह निरुपयोगी होती है।

कर्नल चोपरा के मत से यह वनस्पति साँप के काटने पर लाभदायक है। इसका काढ़ा स्त्री के दूध के बदले में काम में लिया जाता है। इसकी नीली जाति आक्षेपयुक्त खाँसी, व्रण, चर्म रोग, धवल रोग, शूल और दाँतों के रोग पर मुफीद है।

(जंगली नील) झिल

नाम—संस्कृत—झिल्ला, मृदुपत्रका, निला, रक्तपला, सुझिल्ला। तामिल—कटुकचमथी। हिन्दी—झिल, झिल्ली। गुजराती—झिल। लेटिन—Indigofera Pausifolia [इंडिगोफेरा पोसिफोलिया]।

वर्णन—यह पौधा काठियावाड़, कच्छ और राजपूताने में जत्था बन्द पैदा होता है। इस पौधे का आकार-प्रकार सरपंखा और नील के पौधे की तरह होता है। औषधि में इसकी जड़ और पंचांग काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से इसकी जड़ शीतल और भूख को बढ़ाने वाली होती है। यह वातरक्त और सन्धिवात को दूर करती है। इसके पत्ते घाव पूरक होते हैं। ये पेचिश की बीमारी में लाभदायक होते हैं। इसके सभी हिस्से तिल्ली और यकृत के बढ़ने पर लाभदायक हैं। इस औषधि में विषनाशक गुण भी माना जाता है। इसकी जड़ का काढ़ा लार के गिरने पर उपयोगी माना जाता है। इसके गुण नील के गुणों से मिलते-जुलते हैं।

डाक्टर देसाई के मतानुसार जंगली नील भेदक, यकृत के लिये उत्तेजक, शोथघ्न और आमनाशक है। यकृत के ऊपर इसकी उत्तेजक क्रिया स्पष्ट होती है, इसको छोटी मात्रा में देने से दस्त साफ होता है। पुरानी कब्ज को मिटाने के लिये इसको छोटी मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिये।

आमवात और हड्डी के परदे की सूजन (Periostitis) में इसको देने से और दर्द के स्थान पर इसकी जड़ को उबाल कर लगाने से लाभ होता है। शरीर का दुखना, सन्धियों की सूजन और बादी के दर्द पर इसके पंचांग के काढ़े से सेंक कर देना चाहिये और २॥ तोला जड़ को २५ तोला पानी में औटाकर आधा पानी रहने पर उसमें २॥ तोले से ५ तोले तक की मात्रा में पिलाना चाहिये। यकृत और तिल्ली की वृद्धि पर भी यह औषधि अच्छा काम करती है। इसके गुण धर्म साधारण नील की अपेक्षा अधिक उग्र हैं।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कृमि नाशक और घाव पूरने वाली है। यह प्रदाह को नष्ट करती है। इसे सन्निपात में और सभी प्रकार के विषों में उपयोग में लेते हैं।

झीपटा

इस वनस्पति का वर्णन इस ग्रंथ के तीसरे भाग में चिरपोटी के प्रकरण में दे दिया गया है।

झुन झुनियाँ

नाम—संस्कृत—शणपुष्पी, कण्टा, शणघण्टिका, पीतपुष्पी, स्थूलफला, सूक्ष्मपुस्पा, क्षुद्रशणपुष्पिका, वृहत्पुष्पि, धावनी। हिन्दी—झुनझुनियाँ, बनसन। मराठी—घागरी, खुड़खुड़। बंगाल—बनसनुइ, झनझनियाँ। गुजराती—घुगरा। मलयालम—पतदल कोट। तामिल—वेल कुलप्पे लेटिन—Crotalaria Verrucosa [क्रोटेलेरिया व्हेरुकोसा]।

वर्णन—यह मजबूत और बहु शाखी पौधा रेतीली जमीन में ज्यादा पैदा होता है। इसके पत्ते अण्डाकृति, ५ से लगाकर १५ सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल हलके नीले रंग के होते हैं। इसकी सूखी फलियों को हिलाने से खुड़-खुड़ की आवाज आती है। इन फलियों में २० से लेकर ३० तक बीज रहते हैं। इसके पत्तों का रस कुछ कड़वा होता है। इसकी २ जातियाँ होती हैं। एक को लेटिन में क्रोटोलेरिया व्हेरुकलसा" और दूसरी को "क्रोटोलेरिसा सीरिसिया" कहते हैं। दोनों जातियों के गुण धर्म प्रायः समान हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते गरम, तीखे, कड़वे, वमनकारक, कफ निस्सारक और अजीर्ण, ज्वर, रुधिर विकार, कंठ रोग, मुखरोग और हृदय रोग में लाभदायक है।

इसके पत्ते का रस औषधि के काम में आता है। तामिल के वैद्य इसको गीली खुजली, कंडु, चर्म प्रदाह तथा पीली फुन्सियों पर खाने और लगाने के काम लेते हैं।

यूनानी मत—यह गरम और खुश्क है। श्वेत कुष्ठ और चर्म के झाईं रोग को दूर करता है। कफ और वायु को शान्त करता है। इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से जहाँ बदन में बन्दूक की गोली वगैरह रह गई हो वह निकल आती है और तलवार का गहरा जख्म भी शीघ्र भर जाता है।

टंकारी

नाम—संस्कृत—टकारी। हिन्दी—टंकारी टिपारी। मराठी—फोपटी, टंकारी। बंगाल—टेपारी। अंग्रेजी—Cape Gooseberry [केप गुसेबेरी] लेटिन—Physalis Peruviana [फिसेलिस पेरूविएना]।

वर्णन—टंकारी के वृक्ष हिन्दुस्तान में कई जगह बोये जाते हैं। इसके पत्ते लम्बे गोल होते हैं। फूल लाल और गुलाबी तथा कई रंग के लगते हैं। इसके फल छोटे झूमकों में लगते हैं। ये चमकदार कहरवे के रंग के और बहुत स्वादिष्ट होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से टंकारी वातनाशक, कड़वी, कफनाशक, अग्निदीपक, हलकी, विसर्प रोग को दूर करनेवाली और सूजन तथा उदर रोग में लाभदायक है।

लारि यूनियन में इसका पौधा मूत्रल औषधि की तरह काम में लिया जाता है। दक्षिणी अफ्रिका में इसके काढ़े का एनिमा बच्चों के पेट की खराबी को दूर करने के लिये दिया जाता है।

टंडी झकनी

नाम—संथाल—टण्डीझकनी, बिरमोच। मलयालम—नेलममरि, हवसा। लेटिन—Zornia Diphylla [झोरनिया डिफला]।

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी बहुशाखी वनस्पति है जो प्रायः सभी स्थानों में पैदा होती है। इसकी ऊँचाई २ से ३ फीट तक होती है, इसकी शाखाएँ नीचे की ओर फैलती हैं। इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकार के, फूल छोटे और फलियाँ चपटी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ घिसकर बच्चों को नींद आने के लिए दी जाती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

टमाटर

नाम—हिन्दी—टमाटर, बिलायती बैंगन। अंग्रेजी—Tematto।

वर्णन—टमाटर का उपयोग भारतवर्ष में आज से ६० वर्ष पहले से विदेशियों के द्वारा प्रचलित हुआ है। इस वनस्पति का इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है। सबसे पहले सन् १६२८ में सर वाल्टर रेले को यह फल अमेरिका के रोलको नामक द्वीप से प्राप्त हुआ। वहाँ के लोग इसे जहरीला पदार्थ मानते थे। यह जब यूरोप में लाया गया तब यूरोपवासियों ने इसे केवल शोभा की दृष्टि से बागों में बोना शुरू किया। वहाँ के लोग इसे "लव्ह एपल" कहते थे। आज से केवल ६० वर्ष पूर्व इसका समावेश वहाँ पर खाद्य द्रव्यों में किया गया। फिर भी वहाँ के लोग इस वनस्पति से बहुत डरते थे और उनका ख्याल था कि इसके सेवन से कैन्सर, उपदंश इत्यादि रोग पैदा हो जाते हैं मगर थोड़े ही दिनों में उनका यह भ्रम मिट गया। अनुभवों से यह बात मालूम हुई कि यह फल एकदम निर्दोष है और इससे कोई रोग होने की सम्भावना नहीं है। तब तो इसका प्रचार खूब धड़ाके से यूरोप, अमेरिका और भारतवर्ष में हुआ। आज तो भारतवर्ष में शाग-सब्जियों में आलू के बाद इसका नम्बर है।

इसका पौधा बैंगन के पौधों की तरह होता है। इसके फल शुरू में हरे और पकने पर लाल हो जाते हैं।

इस वनस्पति को प्रायः सभी लोग जानते हैं। इसलिए इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—टमाटर कुछ खट्टा, मीठा, रुचिवर्द्धक, अग्निदीपक और शक्तिवर्द्धक है। इसका सेवन से शरीर की स्थूलता, उदर रोग, अतिसार, अपेंडिसाइटिस आदि रोगों पर लाभदायक सिद्ध हुआ है।

मनुष्य की जीवन रक्षा के लिए जिन-जिन तत्वों की आवश्यकता होती है। वे सब तत्व प्रायः इसमें पाये जाते हैं। इसमें लोहे का तत्व बहुत अधिक परिमाण में रहता है। लोहे की तादाद इसमें दूध की अपेक्षा दुगनी और अण्डे की अपेक्षा पाँच गुनी पाई जाती है। प्याज, मूली, शकरकंद, बैंगन, गाजर, गोभी, केला, शलगम, सेव, नारंगी, मोसम्बी, अंगूर, तरबूज, खरबूजा इत्यादि फलों की अपेक्षा इसमें लोहे का परिमाण डेढ़े से ज्यादा रहता है।

लाइम या चूना भी इस शाग में दूसरे फलों और शागों की अपेक्षा अधिक परिमाण में पाया जाता है। मांस की अपेक्षा यह पदार्थ इसमें तिगुने से भी अधिक पाया जाता है। इसलिए मांसभक्षियों को चाहिये कि मांस के बदले वे इसका ही सेवन करें। चूने का यह तत्व शरीर की हड्डियों को मजबूत करने वाला होता है। इसके अतिरिक्त इस वस्तु में प्रोटीन, पोटास, फास्फोरस, गंधक, क्लोरिन इत्यादि द्रव्य दूसरी तरकारियों की अपेक्षा अधिक तादाद में पाये जाते हैं। इसके अन्दर जो खट्टापन है कई लोग डसको आक्झेलिक एसिड मानते हैं मगर यह उन लोगों का भ्रम है। इसका खट्टापन सायट्रिक एसिड का है जो कि नीबू और नारंगियों में पाया जाता है।

शरीर पोषक सूक्ष्म द्रव्य जिनको अंग्रेजी में विटामिन्स कहते हैं टमाटर में बहुत अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं। इसके विटामिन A. B. C. तीनों ही काफी मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें पाये जाने वाले विटामिन्स में यह विशेषता है कि जहाँ दूसरे पदार्थों में पाये जाने वाले विटामिन्स जरा-सी आँच लगाने से ही नष्ट हो जाते हैं। वहाँ इसमें पाये जाने वाले विटामिन्स साधारण अग्नि से नष्ट नहीं होते। डाक्टर क्रिनसन ने यह सिद्ध किया है कि जो विटामिन्स ताजे टमाटर में होते हैं वे ही सूखे हुए तथा डिब्बों में बन्द और अचार, मुरब्बे या चटनी के रूप में सुरक्षित रखे हुए टमाटरों में भी पाये जाते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि यह एक बहुत ही लाभदायक तरकारी है, इसके सेवन से दस्त साफ होता है, रक्त विकार दूर होता है और बेरी-बेरी, गठिया और एक्जिमा की हालत में बहुत फायदा होता है। बच्चों के सूखा रोग में लाल टमाटर का रस देने से अच्छा लाभ होता है। लाल और पके हुए टमाटर को कच्चा ही खाना चाहिये। शाग बनाकर खाने से इसके गुण कुछ कम हो जाते हैं।

टमाटर को हमेशा बड़ी जाति का और सुडौल देखकर ही लेना चाहिये। छोटे-छोटे गोल टमाटर लाभदायक नहीं होते। वात प्रधान या वात पित्त प्रधान व्यक्ति के लिए इसका सेवन लाभदायक नहीं होता, ऐसे व्यक्तियों को यह खुजली पैदा करता है। विशेषकर उस हालत में जब कि वह इसे बेसन में मिलाकर, तेल में छौंक कर पकाकर खाते हैं। इसको वे हन और तेल के साथ नहीं खाना चाहिये।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

उपयोग—चर्मरोग—रक्त दोष के कारण जब त्वचा पर लाल चट्टे उठे हों, मुँह की हड्डियाँ सूज गई हों, दांतों से रक्त निकलता हो और स्कर्वी रोग का अन्देशा हो तब लाल टमाटर का दो-दो तोले रस दिन में ४ बार देने से अच्छा लाभ होता है।

दुर्बलता और कमजोरी—लाल टमाटर का रस पीने से दुर्बलता और कमजोरी मिटती है। थकावट दूर होती है, भूख बढ़ती है और पाण्डु रोग में लाभ होता है।

ज्वर—टमाटर का रस या क्वाथ बनाकर सेवन करने से ज्वर के प्रकोप की वजह से रक्त में जो हानिकर पदार्थों की वृद्धि होती है, वह शीघ्र ही दूर हो जाती है और रोगी को शान्ति मिलती है।

मधुमेह—मधुमेह ग्रस्त रोगियों के लिए टमाटर का सेवन विशेष लाभप्रद है। डाक्टर पी० जे० कैंब्रेज ने लंदन रिपोर्ट में लिखा है कि मधुमेही के लिए टमाटर से बढ़कर विशेष लाभदायक कोई खाद्य-पदार्थ नहीं है। इससे खून की कमी या रक्ताल्पता दूर होती है। मूत्र में शक्कर का परिमाण भी धीरे-धीरे कम होकर मधुमेह अनायास ही दूर हो जाता है।

नेत्र विकार—अल्पदृष्टि, रतौंधी इत्यादि जो नेत्र विकार, शरीर में विटामिन की कमी से होते हैं वे टमाटर के रस से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

जीभ का मैलापन—जीभ पर सफेदी छा गई हो तो उसे १ या २ टमाटर नित्य सेंधा नमक के साथ खाना चाहिये।

टरमेरा

नाम—संस्कृत—भूतघ्ना, बिबटा, ग्रहघ्न, दुर्वर्ष, कदम्ब, राजिका, कंतुभा, तुवेरिका, उग्रगंधा। हिन्दी—टरमेरा। अफगानिस्तान—मंदऊ। बङ्गाल—श्वेतशुरशा, सफेद शोरशा। कुमाऊँ—चर। सीमाप्रदेश—टरमेरा, शाहबन। फारसी—जम्बे। पंजाब—असु, जमनिया, तारा, ऊसन। लेटिन—Eruca Sativa [एरुका सेटिवा]।

वर्णन—हिन्दुस्तान के कई भागों में इस वनस्पति की खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से यह अग्नि प्रवर्द्धक, पित्त निस्सारक और कृमिनाशक है। यह कफ और वात को नष्ट करता है, खुजली और धवल रोग में लाभदायक है। बवासीर, प्रदाह, व्रण, विसर्प और दांतों की पीड़ा में यह उपकारी है। इसके प्रयोग से वमन करने की प्रवृत्ति रुक जाती है।

इसके बीज और यह सारी वनस्पति कामोद्दीपक मानी जाती है। यूरोप में इसके पत्ते अग्निवर्द्धक, मूत्रल और शीतादिरोग प्रतिशोधक माने जाते हैं। कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज चिड़चिड़े होते हैं। इनका गुण धर्म सरसों की तरह माना जाता है।

टरारा

नाम—हिन्दी—टरारा, रूँगरु, हेजा। पंजाब—हेजा, रूँगरू, तात्रा। कुमाऊँ—बकल पत्र, पत्र कोरई। नैपाल—हतोकनि। लेटिन—Kalanchoe Spathulata [केलेनचाई स्पेथुलेटा]।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय के गरम हिस्सों में और बरमा चीन तथा जावा में पैदा होती है। इसके पत्ते लम्ब गोल और चिकने तथा इसका फल फिसलना होता है। इसकी ऊँचाई ३ से लेकर १-२ मीटर तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—स्टेवर्ट के मतानुसार लाहौर में इसके पत्ते खास तौर से हैजे की बीमारी के उपयोग में लिए जाते हैं। कांगड़ा में इन पत्तों को जला कर फोड़ों पर लगाया जाता है। यह वनस्पति बकरियों के लिए जहर है।

टीण्डसी

नाम—संस्कृत—डिंडिश, रोमशफल। हिन्दी—टीण्डसी, टिण्डेका साग।

वर्णन—यह एक मशहूर तरकारी होती है। इसके फल गोल, टेढ़े-मेढ़े, टमाटर की तरह और रुँएदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से टीण्डसी रुचिकारक, भेदक, पित्त कफ नाशक, शीतल, वात कारक, रूक्ष, मूत्रल और पथरी को दूर करने वाली है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में सर्द और तर है। यह कामशक्तिवर्धक, पथरीनाशक, मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाने वाली, कफ, पित्त वर्धक तथा देर से हजम होने वाली होती है।

उपयोग—पथरी—टीण्डसी के ३ तोले रस में १ माशा जबाखार मिलाकर गरम करके ६-७ दिन तक पीने से पथरी निकल जाती है और पेशाब साफ होता है।

टेलाजुमिकी

नाम—तेलगू—टेलाजुमिकी। तामील—सिरुपुनइकलि। कनाड़ी—कुकिबालि। मलयालम—लंगबुल। लेटिन—Passifflora Foetida [पेसिफ्लोरा फोइटिडा]।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष में बहुत अधिक तादाद में बोई जाती हैं। यह एक पराश्रयी लता होती है। इसके पत्ते १.८ से ६.३ सेंटीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल हरे रहते हैं। इसका फल छोटे हरे बेर के तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—इसके पत्ते सिर के भारीपन और सिर दर्द में लगाने के काम में लिये जाते हैं। इसका काढ़ा पित्तनाशक और दमे में लाभदायक होता है। इसका फल वमनकारक होता है।

लौरियूनियन में इसके पत्ते ऋतुस्राव नियामक माने जाते हैं। ये हिस्टीरिया और गुल्म वायु के उपयोग में लिये जाते हैं।

ब्राझील में यह वनस्पति विसर्प रोग और प्रदाह युक्त चर्मरोगों पर पुल्टिस के रूप में लगाई जाती है।

डिकामारी

नाम—संस्कृत—नाड़ीहिंगु, पलाशाख्य, जन्तुका, वेणपत्रि, हिंगुनाड़िका, पिंडा, सुवीयां। हिन्दी—डिकामारी, विकामाली। बंगाल—हिंगुविशेष। काठियावाड़—मलन, मालाती। कच्छ—मालदी, भालन। तेलगू—बिक्की, गेरी बिक्की। तामील—कुंबे। लेटिन—Gardenia Gummifera [गारडोनिया गुमिफेरा] G. Lucida [गारडेनिया लूसिड़ा]।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। जो पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होता है। इसका वृक्ष अमरूद के वृक्ष की तरह दिखाई देता है। इसके पत्ते अमरूद के पत्तों के समान होते हैं। इसके फल भी अमरूद के समान ही दिखलाई देते हैं। इसके बीजकोष में बहुत बीज होते हैं। इसकी शाखाओं के मूल पर एक प्रकार का गोंद जमता है इसी गोंद को डिकामारी कहते हैं। इस गोंद का रंग कुछ हरापन लिये पीला होता है। इसमें पेशाव के समान दुर्गन्ध आती है। इस औषधि में मिलावट भी होती है। असली डिकामारी बहुत कठिनता से पीसी जाती है। औषधि प्रयोग में शुद्ध डिकामारी को ही लेना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से डिकामारी चरपरी, तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, संकोचक और कफ, वात, कब्जियत, वमन और वायुनलियों के प्रदाह में लाभदायक है।

इसका गोंद ऐसे अग्निमांद्य में जिसके साथ कब्जियत भी हो अत:प्रयोग में लिया जाता है। इस गोंद का उपयोग आमतौर से चर्म रोगों के ऊपर किया जाता है। इसको घाव के ऊपर लगाने से उस घाव में कीड़े नहीं पड़ते और मक्खियाँ वगैरह भी नहीं बैठती। यह वनस्पति आक्षेप निवारक लौर पेट के आफरे को दूर करने वाली है। वाह्य प्रयोग में लिये जाने पर यह अपना उत्तेजक और कृमिनाशक असर बतलाती है। यह गोल कृमियों को नष्ट करने के लिये बहुत सफल औषधि मानी जाती है।

इसका पिसा हुआ गोंद कफ निस्सारक और पसीना लानेवाला होता है। इसको उचित मात्रा में खिलाने से नारू की बीमारी में बहुत लाभ होता है।

दुष्ट व्रणों को दूर करने के लिये इसे संकोचक औषधि की तरह काम में लेतें हैं। इससे मसूड़ो की जलन भी मिटती है। बच्चों को दाँत निकलने के समय में जो दस्त लगते हैं उनमें भी यह औषवि लाभ पहुँचाती है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार डिकामारी संकोच विकास प्रतिबन्धक, कोष्ट वायुनाशक, कृमिघ्न मलेरिया ज्वर नाशक, पसीना लानेवाली, कफ निस्सारक और चर्म रोग नाशक है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आंतों के रोगों के ऊपर डिकामारी की क्रिया बहुत उत्तम होती है। आंतों में घुसी हुई वायु को यह निकाल देती है। पेट में पड़ने वाले जन्तुओं को नष्ट करने के लिये यह एक उत्तम औषधि है। अजीर्ण और पेट के फुलाव पर यह कड़वे और सुगन्धित पदार्थों के साथ में दी जाती है। बच्चों के दांत निकलने के समय में ज्वर, दस्त, वमन इत्यादि जितने भी उपद्रव होते हैं। उन सब में डिकामारी बहुत गुणकारी वस्तु है। बच्चों के ब्रोंकोनिमोनिया अथवा डिब्बे की बीमारी में डिकामारी और एलुए का लेप किया जाता है और पेट में भी खिलायी जाती है। इससे पेट का फुलाव तुरन्त उतर जाता है।

प्राचीन चर्म रोगों में भी डिकामारी को देने से अच्छा लाभ होता है। नारू की बीमारी में इसको ५ रत्ती की मात्रा में देने से नारू गल जाता है।

मात्रा—इसकी साधारण मात्रा एक रत्ती से दो रत्ती तक होती है। खजाइनुल अदविया के मत से इसकी मात्रा १ माशे से ३ माशे तक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह ज्वर, अग्निमांद्य और कृमि रोग में लाभदायक है।

डिगिवेंटिया

नाम—संथाल—डिगिवेंटिया। नेपाल—बुट्टी, लपसी। उड़ीसा—मोगई, बोजारा। लेटिन—Polyalthia Simiaram [पोलिएलथिया सिमिएरम]।

वर्णन—यह वनस्पति उड़ीसा, बरमा और पेगू में पैदा होती है। यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते लम्बगोल, फूल हरे और पीले और फल नारंगी रंग के तथा बेर के आकार के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—उड़ीसा के अन्दर इस वनस्पति की छाल बिच्छू के विष को दूर करने के काम में ली जाती है।

डिजीटेलिस

नाम—संस्कृत—घंटाबीणा, श्रगालगायन, तिलपुष्पी, धूम्रपुष्पी। अंग्रेजी—Fox Glone (फॉक्स ग्लोन)। लेटिन—Digitalis Purpurla [डिजिटेलिस परपूरिला]।

वर्णन—यह वृक्ष हिमालय के ऊपर पैदा होता है। कुमाऊं और नीलगिरी के ऊपर इसकी खेती की जाती है और भी ऊँचे पहाड़ों पर इसको लगाने से यह सब दूर पैदा हो सकता है। इसका झाड़ करीब ७।८ फीट ऊँचा होता है। इसके पत्ते तम्बाकू के पत्तों की तरह होते हैं। फूल तिल के फूलों की तरह मगर उनसे कुछ बड़े होते हैं। इसके पत्ते औषधि प्रयोग में काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—डिजिटेलिस की क्रिया हृदय, रक्तवाहिनी और रक्ताभिसरण के ऊपर विशेष रूप से होती है। रक्ताभिसरण के ऊपर क्रिया करने वाली औषधियों का एक स्वतन्त्र वर्ग है। इस वर्ग में डिजिटेलिस के सिवाय कनेर, पीली कनेर, कोली कांदा, कपूर, जीखार, ताम्बा, जस्ता, अरण्डी ककड़ी के पत्ते, मकई के भुट्टे के बाल, कंडु [Hellebore Nigrum] कॉफी, इत्यादि वस्तुएं सम्मिलित हैं। यह वर्ग हृदय को बल देने वाला, हृदय की शक्ति को बढ़ाने वाला और मूत्रल है। अधिक मात्रा में ये सब औषधियाँ विषैली हो जाती हैं। इसलिये इन औषधियों को अधिक मात्रा में कदापि नहीं लेना चाहिये।

डिजिटेलिस की क्रिया खास हृदय के ऊपर, हृदय में से जाने वाले मज्जा तन्तुओं के ऊपर और हृदय के केन्द्रस्थान पर होती है। छोटी धमनियों के ऊपर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होकर यह उनका संकोचन करता है। इससे हृदय को अधिक आराम मिलता है और उस आराम के समय में उसका अच्छा पोषण होता है। नाड़ी भरपूर और व्यवस्थित चलने लगती है और पेशाब की मात्रा भी बढ़ती है।

उपरोक्त गुणों की वजह से ज्वर में या किसी भी रोग में जिसमें हृदय की क्रिया शिथिल पड़ जाती है—डिजिटेलिस को देने से अच्छा लाभ होता है। इससे हृदय की गति स्पष्ट और नियमित हो जाती हैं और नाड़ी की गति भी सुधर जाती है। नाड़ी के अव्यवस्थित होने की हालत में डिजिटलिस का प्रयोग उपयोगी होता है।

हृदयोदर और सूत्रपिंडोदर में इस औषधि को देने से दो प्रकार के लाभ होते हैं। एक तो हृदय को ताकत मिलती है, दूसरे पेशाब की मात्रा बढ़कर पेट का सञ्चित जल निकल जाता है। इन दोनों प्रकार के उदर रोगों में डिजेटेलिस को

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

किसी मूत्रल, विरेचक पसीना लानेवाली औषधि के साथ देना चाहिये। इस औषधि को देते समय रोगी को बिस्तर पर से नहीं उठने देना चाहिये और पथ्य में उसको दूध, शक्कर, अनार इत्यादि पौष्टिक पदार्थ देना चाहिये।

रोग के ऊपर इस औषधि का प्रभाव होने के पश्चात् रोगी को शंखभस्म, कौड़ी भस्म अथवा मंडूर भस्म देने से अच्छा लाभ होता है।

दमा, खाँसी कफरोग, क्षय, फेफड़े से रक्त का बहना, फुफुस रोग इत्यादि में डिजिटेलिस का बहुत उपयोग किया जाता है। इन रोगों में हृदय के पर्दे शिथिल होकर फूलने लगते हैं। उस फुलाव को डिजिटेलिस दूर करता है।

हृदय के फूलाव को वजह से पैदा हुए अत्यधिक रजःस्राव में डिजिटेलिस को देने से बहुत लाभ होता है।

डिजीटेलिस के न मिलने की हालत में इस वर्ग की ऊपर लिखी हुई औषधियों में से किसी भी एक औषधि का व्यवहार किया जा सकता है।

यूनानी मत के अनुसार यह एक विषैला पदार्थ है। इसको अधिक मात्रा में लेने से सिर घूमना, जी मचलना, वमन, कमजोरी, पुतलियों का फिरना, ठण्डा पसीना, बेहोशी आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। यह उन जहरों में से हैं जो शरीर के अन्दर एकत्र होकर कुछ समय बाद अपना प्रभाव दिखलाते हैं।

सूक्ष्म मात्रा में लेने से यह शान्तिदायक, हृदय को बल देने वाला और रक्तावरोधक होता है। जलोदर में यह विशेष लाभदायक नहीं है फिर भी एक मूत्रल औषधि होने की वजह से यह उसमें लाभ पहुँचाता है।

हृदय की ऐसी बीमारियों में जब हृदय की गति शीघ्र गामी और बेकायदे होती है यह सारे हृदय को ताकत देकर उसकी गति को व्यवस्थित कर देता है। जब दिल पतला होकर फैल जाता है तब यह उसको ताकत पहुँचाता है। लेकिन दिल की शिराएं जब चर्बी में बदल जांय अथवा हृदय मोटा हो जाय और हृदय के छिद्र संकुचित हो जांय तब इस दवा के प्रयोग से उल्टी हांनि होती हैं।

ज्वर, नकसीर, फेफड़े और गर्भाशय से खून जाने की बीमारियों में भी यह एक उत्तम औषधि है।

इसकी मात्रा आधा ग्रेन से डेढ़ ग्रेन तक और इसके टिंचर की मात्रा १० बूंद से ३० बूंद तक है।

डोड़ी

नाम—संस्कृत—तिक्तजीवन्ती। हिन्दी—डोड़ी, डोरी। बम्बई—दोड़ीं, पनकुड़, रायदोड़ी, शिगुटी। कच्छ—खड़खोटी, डूडीवल। गुजरात—नानी डोडी। लेटिन—Leptadenia Reticulata [लेप्टाडेनियाँ रेटिक्यूलेटा]।

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी लता होती है। इसकी डंडी पर सफेद और भूरे रङ्ग की छाल होती है। इसके पत्ते चौड़े अणीदार, मोटे और चमकीले होते हैं। इसके फूल छोटे, पीलापन लिए हुए हरे रङ्ग के होते हैं, जो गुच्छों में लगते हैं। इसका फल ऊपर से चिकना होता है। इसमें बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—यह वनस्पति रोचक, ग्राही, कफ नाशक और सूजन को दूर करने वाली होती है। संग्रहणी, कफ और दमें के अन्दर भी यह उपयोगी है। इसकी कच्ची कलियों का साग बनाया जाता है।

ढाक (पलाश)

नाम—संस्कृत—पलाश, किंशुक, पर्ण, याज्ञिक, रक्तपुष्प, क्षारश्रेष्ट, ब्रह्मवृक्ष, कमलासन, कृमिघ्न, वक्रपुष्पक, सुपर्णी। हिन्दी—ढाक, टेसू, केसू, खाकरा, पलाश। बंगाल—पलाश गाछ। मराठी—पलास। गुजराती—खाकरा। तामिल—पलासु, कटुमुसक, किंजुल, किरूमिस्तरू, पुंगु इत्यादि। तेलगू—किंशुक, मोडुगा पलाश, मातुकाटेट्टु, तेल मोदुग, इत्यादि। उर्दू—पलास पापड़ा। लेटिन—Butea Frondosa ब्यूटिया फ्रांडोसा, B. Monosperma [ब्यूटिया मोनोस्परमा]।

वर्णन—ढाक या पलाश भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से एक दिव्य औषधि की तरह काम में लिया जाता है। इसके झाड़ ५ से लेकर १५।२० फुट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते तीन-तीन के थोक में लगते हैं। इसके फूल की फली तोते की चोंच की तरह निकलती है और खिलने पर लाल केसरिया रङ्ग के सुन्दर पतङ्ग की तरह दिखलाई देती है। इसकी

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

छाल आधे से १ इञ्च मोटी और खुरदरी होती है। इस वृक्ष के ऊपर एक प्रकार का गोंद लगता है, जिसको कमर कस, चुनियां गोंद या पलाश का गोंद कहते हैं। इसके फूलों में से पीला रङ्ग निकाला जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से ढाक अग्निदीपक, वीर्यवर्द्धक, सारक, गरम, कसेला, चरपरा, कड़वा, स्निग्ध, टूटी हड्डी को जोड़ने वाला तथा संग्रहणी, बवासीर, कृमि, व्रण और गुल्म को हरने वाला हैं। इसके फूल स्वादु-पाकी, कटु, तिक्त, कसेले, वातवर्धक, शीतल, मलरोधक और कफ, रक्त पित्त, मूत्र कृच्छ, वातरक्त, कुष्ठ, तृषा और दाह को दूर करने वाले होते हैं। पलास की जड़ का स्वरस नेत्र रोग, रतोंधी और नेत्र की फूली को नष्ट करता है। यह नेत्र की ज्योति को बढ़ाता है। ढाक का गोंद संग्रहणी, मुखरोग, खांसी और पसीने को दूर करता है। यह मलरोधक है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसके बीज सर्प-दंश के काम में उपयोगी होते हैं। इसकी कोमल शाखाओं की राख दूसरी वस्तुओं के साथ में विच्छू के विष को दूर करता है।

एन्सली के मतानुसार तामील के वैद्य इसके बीजों को कृमिनाशक वस्तु की तौर पर काम में लेते हैं। वे इनको १॥ चम्मच की मात्रा में दिन में दो बार देते हैं।

के० एल० डे के मतानुसार इसके बीज विरेचक और कृमिनाशक हैं। इसका गोंद एक तेज संकोचक पदार्थ हैं। इसे पुराने रक्तातिसार में देने के काम में लेते हैं। इसकी मात्रा ५ से लेकर २० ग्रेन तक की है।

दत्त के मतानुसार इसके बीज आंतों के कृमियों को नष्ट करते हैं। इसके फूल संकोचक, मुत्रल और कामोद्दीपक होते हैं। गर्भवती स्त्रियों के रक्तातिसार को दूर करने के लिए इन्हें दिया जाता है। इसके फूलों का पुल्टिस सूजन को दूर करने और मासिक धर्म के साफ करने के लिए बाह्योपचार के काम में लेते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह गरम और तर है। मुजरंबात अकबरी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि इसके बीज नपुंसकता चिकित्सा के लिए बहुत उत्तम औषधि है। इन बीजों को एक घण्टे तक पानी में भिगोना चाहिये। उसके बाद उनके ऊपर के पतले छिलके को दूर करके भीतर की मगज को सुखा लेना चाहिये। उसके बाद एक मिट्टी की हंडिया लेकर उसके पर्दे में एक छेद करके उस हंडिया में पलाश की मगज को भर करके ऊपर ढक्कन लगाकर कपड़ा मिट्टी कर देना चाहिये। फिर जमीन में एक आधा गज लम्बा, आधा गज चौड़ा और आधा गज गहरा खड्डा खोदकर उस खड्डे के अन्दर एक छोटा सा खड्डा और खोदना चाहिये। उस छोटे खड्डे में एक मिट्टी का अथवा कलई का प्याला रखकर उस प्याले के ऊपर उस मिट्टी की हंडिया को इस तरह से रखना चाहिये जिससे उसकी पेंदीवाला छेद उस प्याले के बीचोबीच में रहे। उसके बाद उस हांडी के आस पास बाकी बची हुई जगह में ऊपले कण्डे भरकर आग लगा देना चाहिये। जब आग बुझके ठंडी हो जाय तब सावधानी के साथ उन बर्तनों को निकालकर नीचे के प्याले में इकट्ठे हुए तेल को शीशी में भरकर रख लेना चाहिये। इस तेल की २।४ बूंद कामेन्द्रिय के ऊपर सीवन सुपारी छोड़कर मालिश करने से कुछ ही दिनों में सब प्रकार की नपुंसकता दूर होती है और प्रबल कामशक्ति जाग्रत होती है।

अगर इस विधि से यह तेल न निकाला जाय तो बालुका यन्त्र से अथवा पाताल यन्त्र से भी तेल निकाला जा सकता है और वह भी ऐसा ही काम देता है।

ढाक और नेत्र रोग—नेत्र रोगों के लिये भी ढाक एक बहुत उपयोगी वस्तु साबित हुई है। इसकी जड़ों से निकला हुआ अर्क आंखों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसको निकालने की विधि इस प्रकार है:—ढाक की ताजी जड़ों को लाकर उनके दो-दो इञ्च के टुकड़े कर लेना चाहिये। फिर उन टुकड़ों को कुचलकर मिट्टी के एक चिकने बरतन में तीन चौथाई हिस्से तक भर देना चाहिये। फिर उस हांड़ी के खाली हिस्से में एक चीनी मिट्टी का प्याला सीधा रख देना चाहिये। फिर हांड़ी के ऊपर मिट्टी के ढकना लगाकर उसकी दर्जों को गेहूँ के गूंधे हुए आटे से बन्द कर देना चाहिये। उस मिट्टी के ढक्कन में ठण्डा पानी भर कर उस बरतन को चूल्हे पर चढ़ा कर मध्यम आंच देना चाहिये। जब-जब उस ढकने का पानी गरम होता जाय तब-तब उस पानी को निकाल कर ठण्डा पानी भरते रहना चाहिये। ऐसा करने से उन जड़ों के अन्दर रहा हुआ रस भाप बनकर उस मिट्टी के ढकने पर लगेगा और वहां से पीछा टपक कर उस चीनी के प्याले में टपकेगा। यही पलाश का अर्क कहलाता है। इसको छानकर शीशी में भर लेना चाहिये। इस अर्क की एक दो बूंद आंखों में

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

डालते रहने से आँख की झाँक, खील, फूली, मोतियाबिन्द, रतौंधी इत्यादि सब प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं। इसी अर्क की ४-५ बूंद नागरबेल के पत्ते में रखकर खाने से भूख बढ़ती है, एनैछिक वीर्यस्राव रुकता है और कामशक्ति प्रबल होती है।

ढाक और कृमि रोग—ऊपर लिख आये हैं कि पलाश के बीज कृमि रोग के लिये महौषधि है। इनके बीजों को निसोत, किरमानी, अजवायन, कपीला, बायबिडङ्ग और गुड़ के साथ देने से सब प्रकार के कृमि नष्ट होते हैं।

जिस प्रकार इसके बीजों का अर्क पेट के अन्दर के कृमियों को नष्ट करता है उसी प्रकार इनका वाह्य प्रयोग बाहरी जन्तुओं को नष्ट करने की अद्भुत शक्ति रखता है। यही कारण है कि नारू के रोग में भी यह वनस्पति अच्छा लाभ बतलाती है। इसका उपयोग करने की विधि इस प्रकार है। पलाश के बीज, जहरी कुचले के बीज, रसकपूर, सादा कपूर और गूगल—इन सब औषधियों को लेकर बारीक पीसकर पानी के साथ खरल करके फिर एक पीपल के पत्ते पर उनका लेप करके उस पीपल के पत्ते के नारू के फोले के ऊपर बाँध देना चाहिये। इस पट्टी को ३ दिन तक नहीं खोलना चाहिये। इस प्रयोग से नारू का कीड़ा बहुत शीघ्र मर जाता है।

ढाक और सर्प विष—सर्प के विष पर भी यह वनस्पति एक उत्तम औषधि मानी जाती है। इसकी जड़ की छाल को पीसकर उसका ताजा रस निकाल कर रोगी के बलाबल के अनुसार ४ से १० तोले तक की मात्रा में देने से बिना दस्त उलटी हुए जहर उतर जाता है।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि मनुष्य को चित्रा नामक सर्प [चितावल] ने ६ महीने के पहिले काटा था, जिसकी वजह से उसके पैर पर सूजन हो गई थी। दिन प्रतिदिन उसका विष शरीर में फैलता गया और उसके सारे शरीर में बड़े-बड़े फोले होने लगे। ये फोले भरते थे और फिर फूट जाते थे। इस प्रकार उसके शरीर में विस्फोटक की तरह सब लक्षण नजर आने लगे। शरीर में असह्य जलन होती थी और काटी हुई जगह का मांस गल-गल करके टूटता जाता था। इस रोगी को शुरू-शुरू में प्रति तीसरे दिन अमलतास का जुलाब दिया गया और उसके पश्चात् नीचे लिखी औषधि का उसे सेवन कराया गया।

पलाश की जड़, पत्ते, फूल, छाल और बीज—ये पाँचो वस्तुएँ दो-दो सेर लेकर धूप में सुखाकर आग में जलाकर राख कर लेना चाहिए। फिर उस राख में १० सेर पानी डालकर अच्छी तरह मसलकर एक रात भर पड़ा रहने देना चाहिये। फिर उस पानी को निथार कर चूल्हे पर चढ़ाकर उबालना चाहिये। जब दो सेर पानी रह जाय तब उसमें बकरी का मूत्र, भेंड़ का मूत्र, गाय का मूत्र और मनुष्य का मूत्र दो सेर, आँकड़े का दूध आठ तोला, काली सरसी की अन्तरछाल, सरसी के फूल, स्वर्ण गेरू हल्दी, दारू हल्दी, तुलसी की मञ्जरी, मुलेठी की जड़, बेर की लाख, सेंधा नमक, जटामांसी, निर्गुण्डी के बीज, हींग, सूंठ, मिरच, पीपर, अमलतास का गूदा, बाझ कंकोड़े का सुखाया हुआ कन्द, कूकड़ बेल की जड़, पीपला मूल, मालकांगनी की जड़ और अनन्त मूल ये सब चीजें आठ-आठ तोला लेकर कूट पीसकर उसमें डालकर तांबे के बर्तन में हलकी आँच से उबालना चाहिये। जब गाढ़ा हो जाय तब उसको नीचे उतार कर थालियों में फैला देना चाहिये, ठण्डा होने पर उसका डेढ़ माशे की गोलियाँ बना लेना चाहिये।

इन गोलियों में से एक-एक गोली दो-दो रुपये भर गाय के घी के साथ मिलाकर उस रोगी को खिलाई जाती थी और ऊपर से आधा पाव गाय का दूध पिलाया जाता था। इसी प्रकार इसकी एक गोली को काली सिरसी के काढ़े में मिलाकर सारे शरीर पर लगा दी जाती थी। इस प्रकार १ महीने तक इसका प्रयोग करने से विष के सब उपद्रव नष्ट हो गये।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक का कथन है कि इस प्रयोग को चित्रासर्प के विष पर कई बार अनुभव में लिया गया है और हमेशा इसमें सफलता मिली है।

खजाइनुल अदविया के लेखक के मतानुसार इसके पत्ते भूख पैदा करते हैं। फोड़े-फुन्सी, बवासीर और पेट के कीड़ों को नष्ट करते हैं। इसकी लकड़ी राख पीने से तिल्ली की सूजन दूर होती है। ढाक की नरम कोपलें ७ तोला और पुराना गुड़ १ तोला, इन दोनों को पीसकर १४ गोलियाँ बना लें। इनमें से रोजाना १ गोली खाने से शीघ्रपतन का रोग दूर होता है। ढाक की जड़ों को कुचल कर औटा कर उनका घन सत्व निकाल कर पान में देने से मनुष्य की काम-शक्ति बढ़ती है। ढाक की जड़ों का रस निकाल कर उस रस में ३ दिन तक गेहूँ को भिगो दें। उसके बाद उन गेहुँओं को सुखाकर

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

पीस लें। इनका हलवा बनाकर खाने से प्रमेह, शीघ्रपतन और कामशक्ति की कमजोरी दूर होती है। इसकी जड़ को पानी में पीसकर नाक में टपकाने से मृगी का दौरा बन्द हो जाता है। पलाश की छाल और सोंठ का काढ़ा बनाकर पिलाने से सांप का जहर दूर होता है। इसके पत्तों को गरम करके बांधने से फोड़े-फुन्सी मिट जाते हैं। इसके पत्ते को औटाकर पिलाने से पेट का अफरा और उदरशूल दूर होता है। इसके बीज और इन बीजों का तेल कृमिनाशक है। ढाक के बीज, तणगछ के बीज, काली मिर्च और हींग इन सबको पीसकर खिलाने से पेट के कीड़े मर जाते हैं। पलाश के बीज १ तोला, शहद २ तोला और घी १ तोला इन सबको घोंटकर इसमें रूई को भिगोकर बत्ती बनाकर स्त्री-प्रसंग से तीन घण्टे पहले योनि-मार्ग में रखने से गर्भाधान होने नहीं पाता।

कुष्ठ रोग में पलाश के बीजों का तेल, चालमोगरा के तेल के समान ही गुणकारी सिद्ध हुआ है। इसका विधिवत् इन्जेक्शन कुष्ठ रोग में चाल मोगरा से अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है।

इसके बीजों को जलाकर उनमें आधी हींग मिलाकर पीसकर रख लें। इसको १॥ माशे से ३ माशे तक की मात्रा में मासिक-धर्म के बाद तक देने से स्त्री की गर्भधारण-शक्ति नष्ट हो जाती है मगर इस प्रयोग को ३ महीने तक हर मासिक धर्म पर करना चाहिये। इसकी जड़ का स्वरस अथवा इसकी जड़ों का भपके द्वारा निकला हुआ अर्क आंखों में डालने से आंख की फूली, रतौंधी, पानी का बहना, आंखों की लाली और प्रारम्भिक अवस्था का मोतियाबिन्द भी आराम हो जाता है। शोढ़ल निघंटु में भी चक्षु रोगों की उपयोगिता में इस वस्तु की बहुत प्रशंसा की गई है।

इसके पंचांग की राख १ तोला, २॥ तोले कुनकुने घी के साथ पिलाने से खूनी बवासीर में बहुत लाभ होता है। इसके कुछ दिन तक लगातार सेवन करने से मस्से सूख जाते हैं। इसके पंचांग की राख ५ तोला लेकर पाव भर पानी में मिलाकर रात भर रख दें। सवेरे भुने हुए चने छीलकर एक मुट्ठी खिलाने के बाद उसका निथरा हुआ जल ऊपर से पिला दें। इस प्रकार कुछ दिनों तक करने से यकृत के विकार शान्त होते हैं। इस रोग की यह एक सिद्ध औषधि है। पलाश की जड़ के रस में एक प्रकार की तांबे की भस्म तैयार की जाती है जो नेत्र रोग के लिए बहुत उपयोगी है। उसकी विधि इस प्रकार है।

तांबे के पत्रे लेकर उनके बराबर वजन की सोना मक्खी नामक उपधातु को लेकर ढाक की जड़ के रस में घोट लें। उस घुटी हुई सोना मक्खी को तांबे के पतरे के दोनों तरफ लेप कर दें और छाया में सुखा लें। सूख जाने पर ढाक की एक बड़ी जड़ को लेकर उसमें ऐसा खड्डा करें कि जिसमें ये सब पतरे समा जायें। उस खड्डे में इन पतरों को रखकर उस खड्डे का मुँह उसी के बुरादे से दबा-दबा कर भर देना चाहिये। उसके बाद उस पर कपड़ मिट्टी करके ५ सेर ऊपले कण्डों की आंच में फूंक देना चाहिये। इस प्रयोग से एक ही आंच में तांबे की भस्म हो जाती है। इस भस्म को आंखों में आंजने से आंखों के कई कठिन रोग आराम हो जाते हैं।

ढाक की एक जाति और होती है जो सफेद ढाक कहलाती है। इसके फूल सफेद आते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसके संसर्ग से सोना बनाने की रासायनिक क्रिया होती है। इसके योग से बनाई हुई हरताल, सिंगरफ और पारद की भस्में विशेष उपयोगी होती हैं। ऐसा कहा जाता है कि इसके सफेद फूलों का कल्प साधु सन्त सेवन करते हैं। इसके प्रभाव से उनका हृदय मंज जाता है और वे त्रिकालदर्शी हो जाते हैं। गर्भावस्था में यदि स्त्री को इसका सेवन कराया जाय तो उसकी सन्तान बड़ी प्रभावशाली और बुद्धिमान होती है। इन सब बातों में सचाई का कितना अंश है, यह कहा नहीं जा सकता।

उपयोग—सूत्रावरोध—पलाश के फूलों को उबाल कर गरम-गरम पेडू पर बांधने से रुका हुआ पेशाब, गुर्दे का शूल और सूजन दूर होती है।

रक्तस्राव—इसके फूलों को रात भर ठण्डे पानी में भिगोकर सुबह थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाने से नकसीर, गुर्दे का दर्द और पेशाब के साथ खून जाना बन्द हो जाता है।

अतिसार—ढाक का गोंद ५ रत्ती से १५ रत्ती तक कुछ दालचीनी और अफीम मिलाकर पिलाने से अतिसार तुरन्त बन्द हो जाता है।

फोड़े फुन्सी—फोड़े फुन्सी पर इसका ताजा रस लगाने से लाभ होता है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

आँतों की कृमि—इसके बीजों को पानी में भिगोकर छिलका उतार कर उनके मगज को सुखा कर, पीसकर १। माशे की मात्रा से सुबह-शाम और दुपहर ३ दिन तक देना चाहिये और चौथे दिन अारण्डी का तेल खिला देना चाहिये। इस प्रयोग से आँतों के लम्बे कीड़ निकल जाते हैं।

दाद और खुजली—ढाक के बीजों को नीबू के रस के साथ पीसकर लगाने से दाद और खुजली में लाभ होता है।

सूजन—इसके फूलों की पुल्टिस बनाकर बांधने से सूजन बिखर जाती है।

सर्प विष—इसकी छाल और सोंठ को औटा कर छानकर पिलाने से सर्प के विष में लाभ होता है।

बद गाँठ—इसके पत्तों का पुल्टिस बांधने से बदगांठ में लाभ होता है।

पित्त की सूजन—इसके गोंद को पानी में गला कर लेप करने से कष्टसाध्य पित्त की सूजन भी मिट जाती है।

बाजिकरण—इसकी जड़ जी अन्तरछाल को दूध के साथ पीने से पुरुषार्थ बढ़ता है।

मूत्राशय के रोग—इसके फूलों का पुल्टिस बनाकर बांधने से मूत्राशय के रोग मिटते हैं और अण्डकोष की सूजन भी बिखर जाती है।

मिरगी—इसकी जड़ को पानी में घिस कर नाक में टपकाने से मिरगी का वेग मिटता है।

मूत्रकृच्छ—ढाक की सूखी हुई कोंपलें, ढाक का गोंद, ढाक की छाल और ढांक के फूलों को मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये। जितना इस चूर्ण का वजन हो उतनी ही मिश्री इसमें मिला देना चाहिये। इसी में से ६ माशे चूर्ण दूध के साथ-साथ रोज लेने से मूत्रकृच्छ मिटता है।

अण्ड वृद्धि—इसकी छाल को पीसकर उसको ७ माशे की मात्रा में जल के साथ देने से अण्ड वृद्धि मिटती है।

ढोल समुद्र

नाम—संस्कृत—ढौलसमुद्रिका, समुद्रक। हिन्दी—ढोल समुद्र। मराठी—डिंडा। बम्बई—डिंडा। संथाल—हतकन लेटिन—Leea Macrophylla [लिअा मेक्रोफिला]।

वर्णन—यह एक झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इसकी पैदायस कुमाऊँ से बङ्गाल और आसाम तक तथा हिन्दुस्तान के गरम भागों में होती है। इसके पत्ते कटी हुई किनारों के, डालियाँ हरी, फूल सफेद और जड़ कन्दमय होती हैं। इसकी जड़ें रंगाई के काम में और पत्ते शाक बनाने के काम में आते हैं। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में आती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेद के मत से इसकी जड़ ग्राही, व्रणरोपक, वेदनानाशक और रक्तस्रावरोधक होती है। इसकी जड़ को पीसकर लेप करने से दाद मिटता है। नारू की सूजन उतारने के लिए इसकी जड़ को पीस गरम करके लेप करते हैं। इसके रस में बत्ती बनाकर नासूर में भरने से नासूर भर जाता है। शरीर के किसी अंग के दर्द को मिटाने के लिए इसकी जड़ को पीसकर गरम करके लेप करते हैं। इसकी जड़ का लेप करने से घाव में बहता हुआ खून बन्द हो जाता है।

तगर

नाम—संस्कृत—कालानुसार्य, तगर, कुटिल, लघुष, नत, चक्र, शठ, दीपन, इत्यादि। हिन्दी—तगर। बंगाल—तगर, पाटुका। मराठी—तगर। गुजराती—तगर गंठोड़ा। करनाटकी—तगर। तेलगु—गन्धि तरग कुचेट्टि। नेपाल—चम्मा। उड़ीसा—पाणी फलरा। अरबी—असारून। लेटिन—Valeriana walliehii (व्हेलिरियना वेलिची)।

वर्णन—तगर के वृक्ष हिमालय में काश्मीर से भूटान तक और खासिया पहाड़ियों पर पैदा होते हैं। इसके पत्ते ५ से लेकर १० सेन्टिमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसकी लकड़ी में एक प्रकार की गन्ध आती है। इसकी दो जातियाँ होती हैं। दूसरी जाति का संस्कृत में पिंडीतगर, दण्डहस्ती, लघुहर्षण, इत्यादि नाम हैं।

गुण दोष और प्रभाव—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के तगर गरम, स्वादिष्ट, हलके तथा विष, अपस्मार सिर दर्द, नेत्र रोग और त्रिदोष को दूर करते हैं।

भावप्रकाश में जहां इस वस्तु को गरम लिखा है, वहाँ निघण्टुरत्नाकर और राजनिघण्टु के कर्त्ता इसको शीतल मानते हैं। निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार तगर, शीतल, पथ्य, कड़वी, मधुर, हलकी, स्निग्ध, पाक में चरपरी, कसेली, विष विकार को दूर करने वाली तथा नेत्र रोग, रुधिरविकार, त्रिदोष, भूतोन्माद और मृगी को दूर करती है।

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

 Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

यूनानी मत—यूनानी मत से यह कड़वी, दुर्गन्धयुक्त, संकोचक, मृदुविरेचक, शान्तिदायक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, पार्यायिक ज्वर को नष्ट करने वाली, ऋतुस्राव नियामक और निद्राकारक है। यह आँखों और बालों की विकृति, जोड़ों के दर्द, यकृत, तिल्ली और गुर्दे के रोगों पर लाभदायक है। पुरातन प्रमेह में भी यह मुफीद है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार तगर वायुनाशक, संकोचक विकास प्रतिबन्धक, रक्ताभिसरण और मज्जातन्तु समूह को उत्तेजना देने वाला, पौष्टिक, चेतनाकारक और बाह्य प्रयोग से वेदनानाशक और व्रणरोपक होता है। इसको अधिक मात्रा में खाने से चक्कर आते हैं, हिचकी चलने लगती है और वमन होने लगते हैं। थोड़ी मात्रा में इसको देने से यह रक्ताभिसरण क्रिया को उत्तेजना देती है। इसकी फांट बनाकर देने से यह हृदय की शक्ति और नाड़ी की गति बढ़ाती है। मगर वह भी अधिक मात्रा में देने पर नाड़ी की गति कम हो जाती है और रक्तवाहिनियों का जोर भी घट जाती है।

तगर में रक्ताभिसरण क्रिया को उत्तेजना देने का धर्म बहुत महत्वपूर्ण है। इससे सारे शरीर में गर्मी पैदा होने लगती है और फिर पसीना छूटता है। रक्ताभिसरण के ऊपर इसकी क्रिया जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही महत्वपूर्ण क्रिया इसकी मज्जातन्तुओं के ऊपर होती है। दोनों प्रकार के मज्जातन्तुओं में से ज्ञानतन्तुओं के ऊपर इसकी मुख्य क्रिया होती है।

इसके लेने से ज्ञान तन्तुओं की ग्राह्यशक्ति कम होकर उनमें अवसन्नता पैदा होती है जिससे शरीर के अन्दर होने वाली किसी भी वेदना का कष्ट मनुष्य को अनुभव नहीं होता। इसीलिये इसका वेदनानाशक गुण महत्वपूर्ण माना जाता है।

सब प्रकार के मज्जा तन्तु और मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में तगर को अकेले अथवा जस्त भस्म के साथ देना चाहिये। इसको देने से कभी-कभी आलस्य और जम्भाइयाँ आने लगती हैं। मगर उससे नहीं डरना चाहिये। कम्परोग में भी इसका कभी-कभी उपयोग किया जाता है।

बहुत दिनों तक शरीर में ज्वर रहने से जब सारे शरीर में शिथिलता पैदा हो जाती है और वात, पित्त और कफ तीनों दोष प्रबल हो जाते हैं, ऐसे समय में तगर उत्तेजक और चेतनाकारक पदार्थ की तरह दिया जाता है। इससे रोग की प्रबलता कम होकर नाड़ी स्वाभाविक चलने लगती है। विषम ज्वर के अन्दर इस औषधि को देने से ज्वर के विष से पैदा हुई मस्तिष्क और शारीरिक थकावट कम हो जाता है। ऐसे ज्वर में तगर को जस्त भस्म, मेन्सिल भस्म अथवा अफीम के साथ नागरबेल के पान के रस में घोटकर गोली बनाकर देते हैं।

सूखी खाँसी और श्वास नलिका के संकोच विकास की वजह से पैदा हुए श्वास में तगर का उपयोग बहुत लाभप्रद होता है।

मस्तक और मज्जातन्तुओं की खराबी से पैदा हुए मधुमेह और बहुमूत्र में तगर को अफीम की थोड़ी मात्रा के साथ देने से लाभ होता है।

जखम, दुखदाई व्रण, हड्डी का टूटना और तीव्र आमवात में वेदना को कम करने के लिये तगर की फांट बहुत उपयोगी होती है। इसका यह वेदनानाशक धर्म वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण और ध्यान में रखने योग्य है।

वृन्द माधव, रस रत्नाकर और बापट के मतानुसार इसको जड़ को ठण्डे पानी में पीसकर साँप के जहर में उपयोग में लेते हैं।

कर्नल चोपरा का मत—कर्नल चोपरा के मत से तगर यह एक पुरानी औषधि है। यूनानी हकीम डिओसकोरिडस ने इसका वर्णन "फू" के नाम से किया है। मध्ययुग में यह औषधि जर्मनी, एशिया, यूनान और एशिया मायनर में सुगन्धित मसालों के काम में ली जाती थी।

आधुनिक समय में संसार के अन्दर इस औषधि की माँग बहुत अधिक बढ़ गई है। सन् १९१८ के महा युद्ध के बाद में इसकी कीमत करीब-करीब तिगुनी हो गई है। कुछ समय पहले यह औषधि सिर्फ गुल्म वायु और स्त्रियों के स्नायु-मण्डल के विकारों पर ही काम में ली जाती थी, पर अभी अनुसन्धानों से यह पता चला है कि मृगी और स्नायुशूल के ऊपर भी इस औषधि की उपयोगिता बहुत है। इसी कारण से इस औषधि का पूर्ण अध्ययन किया गया है।

इस औषधि की तारीफ इसमें पाये जाने वाले उड़नशील तेल की वजह से ही है। इसकी साधारण जाति के वृक्ष में ५ से लेकर ९ प्रतिशत तक उड़नशील तेल पाया जाता है। किन्तु तेल की यह मात्रा स्थान और उसको इकट्ठा करने की

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

मौसिम पर भी निर्भर है। वसन्त ऋतु में यदि इसकी ताजा जड़ें इकट्ठी की जायें तो इनमें २.१२ प्रतिशत उड़नशील तेल पाया जाता है।

भारतवर्ष में तगर की जो गठानें काम में ली जाती हैं, वे प्रायः अफगानिस्तान से आती हैं मगर भारतवर्ष में हिमालय के पहाड़ों पर भी इसकी दोनों जातियाँ पैदा होती हैं और परीक्षण से साबित हो चुका है कि उसमें भी बाहर से आने वाली तगर के बराबर ही तेल प्राप्त होता है।

के० एल० दे के मतानुसार यह वनस्पति मूत्र की रुकावट, मृगी, सिरदर्द, मूर्च्छा, आक्षेप, हिस्टीरिया, स्नायुमण्डल के विकार और विष के उपद्रवों पर लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण—सन्याल और घोष के मतानुसार इस औषधि के मुख्य गुण इसमें पाये जाने वाले उड़नशील तेल पर ही निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त इसमें व्हेलेरिक एसिड, साइट्रिक, टारटोरिक ग्लूकोज, एलब्यूमेनाइटस, स्टार्च और सेल्यूलेस भी रहते हैं।

उपयोग—वातपीड़ा—तगर को जस्त भस्म के साथ देने से गठिया, पक्षाघात, गले के रोग, सन्धिवात, इत्यादि रोग दूर होते हैं।

विषविकार—तगर को ६ रत्ती से १॥ माशे तक की मात्रा में लेने से विष, रक्तविकार, त्रिदोष, भूतोन्माद, अपस्मार और नेत्र तथा मस्तक के रोग मिटते हैं।

नेत्ररोग—इसके पत्तों का आंख पर लेप करने से नेत्र रोग मिटते हैं।

मात्रा—इसकी मात्रा ६ रत्ती से २ माशे तक की है। अधिक मात्रा में लेने में यह नुकसान करता है। इसलिए इसको अधिक मात्रा में नहीं लेना चाहिये।

000003

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

महत्त्वपूर्ण चिकित्सोपयोगी ग्रन्थ—

अभिनन्दनग्रन्थ (श्री सत्यनारायण शास्त्री जी का) १५—००
अभिनव विकृति विज्ञान—आचार्य त्रिवेदी २२—००
अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा १०—००
अष्टाङ्गसंग्रहः—'अर्थप्रकाशिका' हिन्दीटीका सूत्रस्थान ८—००
अष्टाङ्गहृदयम्—सविमर्श विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या १५—००
अष्टाङ्गहृदय—मूलमात्र ४—००
आयुर्वेद प्रदीप—डा० गंगासहाय पाण्डेय १२—००
आयुर्वेदप्रकाशः—संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या १२—५०
आयुर्वेदविज्ञानम्—विद्योतिनी हिन्दी टीका २—००
आसवारिष्टविज्ञान—आचार्य पक्षधर झा ३—००
एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर—शिवनाथ खन्ना ५—००
एलोपथिक मिक्श्चर्स—डा० राजकुमार द्विवेदी २—५०
औपसर्गिक रोग—(परिवर्धित संस्करण) डा० घाणेकर
प्रथम भाग १०—०० द्वितीय भाग १२—००
काकचण्डीश्वर कल्पतन्त्रम्—हिन्दी टीका २—००
कामकुञ्जलता—ढुण्ढिराज शास्त्री २०—००
हिन्दी कामसूत्रम्—(जयमंगला टीका सहित) १६—००
कायचिकित्सा—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय २५—००
कायचिकित्सा—श्रीरामरक्ष पाठक १-२ भाग २५—००
काश्यपसंहिता—विद्योतिनी हिन्दी टीका १६—००
कौमारभृत्य—आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ८—००
क्लिनिकल पैथोलोजी—डा० शिवनाथ खन्ना १२—००
सचित्र क्रियात्मक ओषधि परिचय विज्ञान—
विश्वनाथ द्विवेदी १२—००
गदनिग्रह—हिन्दी टीका सहित १-३ भाग ६५—००
गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन—डा० वर्मा ४—५०
चक्रदत्त—'भावार्थसन्दीपनी' हिन्दी टीका १०—००
चरकसंहिता—'सविमर्शविद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या ३६—००
चरक तथा काश्यप संहिता का निर्माणकाल—
रघुवीरशरण शर्मा २—००
चौखम्बा-चिकित्सा-विज्ञानकोश २०—००
द्रव्यगुणविज्ञान—श्री प्रियव्रत शर्मा १-३ भाग २३—००
त्रिदोषविज्ञानम्—उपेन्द्रनाथ दास हिन्दी टीका ४—००
नव्य-चिकित्सा-विज्ञान—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा
प्रथम भाग ८—००, द्वितीय भाग ८—००
निघण्टुआदर्श—वैद्य बापालाल हिन्दी प्रथम भाग ३५—००
पञ्चभूतविज्ञानम्—उपेन्द्रनाथ दास हिन्दी टीका ४—००
पञ्चविध कषाय कल्पना विज्ञान—डा० अग्निहोत्री १—५०
परिभाषा-प्रबन्ध—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल २—५०
पेटेण्ट प्रेस्क्राइबर—डा० रमानाथ द्विवेदी १०—००
प्रसूति विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी १२—००
प्रारम्भिक उद्भिद् शास्त्र—प्रो० बलवन्त सिंह ४—५०
प्रारम्भिक भौतिकी—श्री निहालकरण सेठी ५—५०
प्रारम्भिक रसायन—प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा ४—५०
बीसवीं शताब्दी की औषधियाँ—डा० वर्मा ८—००
भारतीय रसपद्धति—कविराज अत्रिदेव गुप्त १—५०
भावप्रकाशः—'विद्योतिनी' हिन्दी टीका २९—००
भावप्रकाश-ज्वराधिकारः—विद्योतिनी हिन्दी टीका ५—००
भावप्रकाशनिघण्टुः—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय १२—००
भिषक् कर्मसिद्धि—डा० रमानाथ द्विवेदी २०—००
भेलसंहिता—सटिप्पण शोधपूर्ण संस्करण १०—००
भैषज्यरत्नावली—विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या १६—००
भैषज्यकल्पनाविज्ञान—डा० अग्निहोत्री ५—००
मर्म-विज्ञान—(सचित्र) श्री रामरक्ष पाठक ३—५०
माधवनिदान—सर्वाङ्गसुन्दरी हिन्दी टीका ४—५०
माधवनिदानम्—'मधुकोष' संस्कृत टीका तथा 'विद्योतिनी'
हिन्दी व्याख्या, विमर्श सहित १४—००
माधवनिदानम्—मधुकोष मनोरमा सं० हिं० व्याख्या यन्त्रस्थ
यकृत के रोग और उनकी चिकित्सा २—००
योग-चिकित्सा—अत्रिदेव गुप्त ३—५०
योगरत्नाकर—मूलमात्र ६—००
योगरत्नाकर—विद्योतिनी हिन्दी टीका २०—००
रसकौमुदी—हिन्दी टीका सहित १—५०
रसचिकित्सा—कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय ६—००
रसरत्नसमुच्चयः—सुरत्नोज्वला हिन्दी टीका १२—००
रसरत्नसमुच्चय—मूलमात्र ३—००, ३—७५
रसादि परिज्ञान—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल २—५०
रसार्णवं नाम रसतन्त्रम्—भागीरथी टिप्पणी सहित ३—००
रसेन्द्रसारसंग्रहः—रसचन्द्रिका हिन्दी टीका ७—००
रसेन्द्रसारसंग्रहः—'गूढार्थसंदीपिका' संस्कृत व्याख्या ५—००
राजमार्तण्ड—हिन्दी टीका सहित २—५०
रोगनामावली कोष—वैद्य दलजीत सिंह ३—५०
रोग परिचय—डा० शिवनाथ खन्ना १५—००
रोगि-परीक्षा विधि—श्री प्रियव्रत शर्मा ६—००
रोगी परीक्षा—डा० शिवनाथ खन्ना ७—००
रोगी-रोगविमर्श—डा० रमानाथ द्विवेदी २—००
लोहसर्वस्व—हिन्दी टीका सहित २—००
वनौषधि चन्द्रोदय—(विशाल निघण्टु ग्रन्थ)
१-१० भाग। प्रत्येक भाग ५—००, संपूर्ण ४०—००
वाग्भटविवेचन—प्रियव्रत शर्मा २०—००
विषविज्ञान और अगदतन्त्र—रमानाथ द्विवेदी २—००
वैद्यक परिभाषाप्रदीप—प्रदीपिका हिन्दी टीका १—५०
वैद्यकीय सुभाषितावली—डा० प्राणजीवन मेहता २—००
वैद्यकीयसुभाषितसाहित्यम्—डा० घाणेकर २५—००
व्यवहारायुर्वेद-विषविज्ञान-अगदतन्त्र-डा० द्विवेदी ५—००
शल्यप्रदीपिका। मुकुन्दस्वरूप वर्मा १५—००
शार्ङ्गधरसंहिता—सुबोधिनी हिन्दी टीका ५—००
शालाक्यतन्त्र—डा० रमानाथ द्विवेदी १०—००
सचित्र-इन्जेक्शन—डा० शिवनाथ खन्ना ११—००
सामान्य रोगों की रोकथाम—डा० प्रियकुमार चौबे ३—५०
सिद्धभेषज संग्रह—डा० गङ्गासहाय पाण्डेय ७—००
सिद्धान्तनिदान। गणनाथ सेन। १-२ भाग १४—००
सुश्रुतसंहिता—आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका हिन्दी टीका २४—००
सुश्रुत-शारीर स्थान—'प्रभा'-'दर्पण' हिन्दी व्याख्या ४—००
सूचीवेध विज्ञान—डा० राजकुमार द्विवेदी २—५०
सौश्रुती—डा० रमानाथ द्विवेदी १०—००
स्त्रीरोग-विज्ञान—डा० रमानाथ द्विवेदी ३—५०
स्वास्थ्यविज्ञान—डा० घाणेकर ९—००
स्वास्थ्यसंहिता—हिन्दी टीका, नानकचन्द वैद्य २—५०
स्वास्थ्यशिक्षापाठावली—डा० घाणेकर ३—५०
हिन्दी प्रत्यक्षशारीर—गणनाथ सेन १-२ भाग २५—००

प्राप्तिस्थान—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, पो० बा० ८, वाराणसी-१

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

GOODWILL INDIA

CREDIT

CASH BOOK for ....

Receipt & Vr. No.	PARTICULARS	G. L. Folio	S. L. Folio	CASH Rs.	CASH P.	TOTAL Rs.

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection

Digitization by Agam Nigam Digital Preservation Trust, Chandigarh. Funding by IKS-MoE

CC-0. All India Ayurvedic Congress (A.I.A.C), Dhanwantri Bhawan New Delhi Collection